हिंदी के कवि और काव्य—२

हिंदी संतकाव्य-संग्रह

संपादक

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी

पंडित परशुराम चतुर्वेदी

द्वारा संशोधित तथा परिवर्द्धित

१९५२

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिंदी काव्यधारा की विशिष्ट परंपराओं को आधार मानते हुए कई भागों में हिंदी कविता के विस्तृत संकलन प्रकाशित करने की एक योजना हिंदुस्तानी एकेडेमी की थी। इस योजना के अंतर्गत 'हिंदी के कवि और काव्य' शीर्षक से तीन भागों में काव्य-संकलन प्रकाशित भी हुए थे। ये सभी संकलन स्वर्गीय श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी ने प्रस्तुत किए थे।

'हिंदी के कवि और काव्य', भाग २, में ज्ञानाश्रयी शाखा के हिंदी संतकवियों की बानियों से संकलन प्रस्तुत हुए थे। यह संग्रह १९३९ में प्रकाशित हुआ था और उस समय यह अपने ढंग का अकेला था। इसका स्वागत हुआ और कुछ ही वर्षों में इसका पहला संस्करण समाप्त हो गया।

पिछले १० वर्षों में हिंदी संत-साहित्य का अध्ययन पर्याप्त रूप से अग्रसर हुआ है। न केवल हमारे सामने नई सामग्री आई है वरन् इस समस्त सामग्री का नए और शास्त्रीय ढंग से परीक्षण हुआ है। अतएव पुस्तक के नए संस्करण के प्रकाशन के पूर्व इसका पुनः संपादन तथा संशोधन करा लेना आवश्यक था। हम पंडित परशुराम जी चतुर्वेदी का विशेष रूप से आभार मानते हैं कि इस कार्य का दायित्व उन्होंने सँभाला। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि वे इस विषय के अनन्य अधिकारी विद्वान् हैं और उनका ग्रंथ 'उत्तरी भारत की संत-परंपरा' उनके गहन अनुशीलन का परिचायक है।

विश्वास है कि यह नया संस्करण, जो 'हिंदी संतकाव्य-संग्रह' के शीर्षक से प्रकाशित हो रहा है, पहले से भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

धीरेन्द्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष
हिंदुस्तानी एकेडेमी

इलाहाबाद
१५-४-५२

द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना

हिंदी-साहित्य के इतिहास में संतकवियों की रचनाओं की एक अपनी विशेषता है। इन पर काव्य-शास्त्र की उन परंपराओं का प्रभाव बहुत कम दीखता है जिनके अनुसार सँभाल कर चलना अन्य कवि अपना कर्त्तव्य समझा करते हैं। इनमें भावों के प्रकाशन अथवा भाषा के प्रयोग संबंधी प्रायः सभी बातों में कुछ न कुछ विलक्षणता पायी जाती है। ये कवि न तो अपने पद्यों की भाषा को कोई काव्योचित रूप देने और उसे सुधारने का प्रयत्न करते हैं और न उनके छंदों के प्रचलित नियमों का यथावत् पालन ही करते हैं। इनकी भाषा का खिचड़ीपन और उसके शब्दों एवं वाक्यों के अनगढ़ रूप इनकी कृतियों को बहुत-कुछ विकृत बना देते हैं और इनकी मात्रा, यति एवं तुक विषयक असाव-धानता के कारण उनकी गति में वह प्रवाह और संगीत भी नहीं आने पाता जो एक सत्काव्य के लिए बहुधा अपेक्षित माना जाता है। इसके सिवाय इन रचनाओं के अंतर्गत साधारण काव्य-प्रेमियों के लिए कोई विषयगत आकर्षण भी नहीं रहा करता। इनमें न तो उन्हें किन्हीं नायकों के चरित्रों का विशद वर्णन मिलता है और न किसी कथावस्तु के विकास वा घटनाओं के सुंदर सामंजस्य का सफल प्रयास ही उपलब्ध होता है; इनमें वाह्य दृश्यों अथवा वस्तुओं का सजीव चित्रण तक नहीं पाया जाता। अतएव, काव्य-समीक्षा के लिए स्वीकृत मानदंडा-

नुसार इन रचनाओं की गणना बहुधा हिंदी के काव्य-साहित्य में नहीं की जाती।

परंतु संतकवियों की रचनाओं का न्यायोचित मूल्यांकन परंपरागत नियमों के आधार पर नहीं किया जा सकता। ये कविताएँ प्रत्यक्षतः भावप्रधान हैं और इनमें से प्रत्येक पर उसके रचयिता के व्यक्तित्व की छाप लगी हुई है। साधारण परिभाषा के अनुसार एक संतकवि को ठेठ कवियों की अपेक्षा साधकों की श्रेणी में रखना कहीं अधिक उपयुक्त कहा जा सकता है। इस कवि ने अपने जीवन का निर्माण स्वानुभूति एवं स्वतंत्र विचार-धारा के अनुसार किया है, जिस कारण यह न तो किसी विधि-निषेध का पाबंद है और न किसी प्रचलित कार्यपद्धति का अंधानुसरण करने के लिए ही बाध्य है। यह अपनी भावाभिव्यक्ति के प्रयास में कतिपय पद्यमयी पंक्तियाँ कह जाता है जो इसके हृदय से स्वतः निःसृत होती हैं। इनका संग्रह, इसीलिए, हमें उस वनराजि का स्मरण दिलाता है जिसके वृक्षों का सौंदर्य किसी औद्यानिक सुव्यवस्था की अपेक्षा नहीं करता, अपितु उनके नैसर्गिक विकास पर ही अवलम्बित रहा करता है। संतों की रचनाओं के अल्हड़पन में भी हमें इसी कारण एक प्रकार की विचित्र मनोरमता का अनुभव होता है। इन कवियों का सर्वप्रमुख उद्देश्य अपने सत्य-संबंधी अनुभवों का व्यक्तीकरण है जिसके साथ-साथ ये प्रसंगवश उसके प्रतिकूल जँचनेवाले विषयों की आलोचना भी करते चलते हैं। ये अपनी अनुभूत वस्तु को प्रायः राम, हरि, आदि की संज्ञा देते हैं और उसे अपनाने के लिए दूसरों से अनुरोध भी करते हैं। ये अपनी रहस्यमयी बातों को अपने निजी ढंग से प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं, जिसका परिणाम इनकी अटपटी

बानियों के रूप में हमारे सामने आ जाता है। इनके यहाँ भाव-सौंदर्य की महत्ता है, सुव्यवस्थित आकार-प्रकार की नहीं।

ये संतकवि अधिकतर अनपढ़ व्यक्ति भी रहते आए हैं जिन्हें काव्य-रचना का कभी अभ्यास नहीं था। इनमें से जो निपुण थे, उन्होंने अपनी रचनाओं के बाह्य सौंदर्य पर भी न्यूनाधिक ध्यान दिया है। इस प्रकार के एक कवि दादूपंथी सुंदरदास थे जिन्होंने संतों के आदर्श काव्य का लक्षण बतलाते हुए कहा है—

नख शिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीको लग्गै।
अंगहीन जो पढ़ै सुनत कविजन उठि भग्गै॥
अक्षर घटि बढ़ि होइ पुड़ावत नर ज्यौं चल्लै।
मात घटै बढ़ि कोइ मनौं मतवारौ हल्लै॥
औढेर काण सो तुक अमिल, अर्थहीन अंधो यथा।
कहि सुंदर हरिजस जीव है, हरिजस बिन मृतक कहि तथा॥२५॥

अर्थात् आदि से अंत तक नियमानुसार रची गई कविता पढ़ते समय भली जान पड़ती है और जिस कविता में किसी प्रकार की त्रुटि रहा करती है, उसे सुनते ही मर्मज्ञजन उठकर चल देते हैं। कविता में अक्षरों का न्यूनाधिक होना उसे लँगड़ी बना देता है। इसी प्रकार मात्राओं की घटती-बढ़ती के कारण वह मतवाले के समान डोलने लगती है। इसके सिवाय बेमेल तुकों की कविता विहंगे और काने व्यक्ति सी प्रतीत होती हैं और अर्थहीन कविता अंधी हो जाती है। किंतु सुंदरदास का कहना है कि कविता का प्राण उसमें 'हरिजस' के विषय का वर्त्तमान रहना है जिसके बिना वह मृतक तुल्य बन जाती है। उपर्युक्त कवियों

के रहते कविता चाहे जीवित कही भी जा सके किंतु 'हरिजस' के बिना तो उसका अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

प्रस्तुत पुस्तक संतकवियों की ही बानियों का संग्रह है जो 'हिंदी के कवि और काव्य' के द्वितीय भाग के रूप में, 'एकेडेमी' द्वारा सन् १९३९ ई० में प्रकाशित हुआ था और जिसका संपादन स्व० गणेशप्रसाद द्विवेदी ने किया था। उस समय तक ऐसे संग्रहों का प्रकाशन अभी लगभग २०-२५ वर्षों से ही आरंभ हुआ था, जब सर्वसाधारण का ध्यान इस विषय की ओर बहुत कम जाया करता था और जानकार विद्वान् तक इसे उपेक्षा की ही दृष्टि से देखते थे। जहाँ तक पता चलता है, विविध संतों की बानियों को पृथक्-पृथक् वा एक साथ सगृहीत करने का उल्लेखनीय प्रयास उस समय तक केवल बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, ने आरंभ किया था। किंतु उसका भी तब तक वैसा प्रचार न था। स्व० द्विवेदी जी ने अपने प्रस्तुत संग्रह को उसी प्रेस द्वारा प्रकाशित 'संतबानी-संग्रह' (दो भाग) के आधार पर तैयार किया था। कबीर जैसे एकाध की कतिपय बानियों को छोड़कर प्रायः सभी अन्य संतों की रचनाओं का पाठ, तथा बहुत-कुछ क्रम तक, उन्होंने उसी के अनुसार निर्धारित किया है और संतों के परिचय देते समय भी अधिकतर उसी से सहायता ली है। फिर भी अपनी 'भूमिका' द्वारा 'संतसाहित्य' की पृष्ठभूमि एवं 'संतमत' का दिग्दर्शन कराकर इसे उन्होंने उससे कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण भी बना दिया है।

इस संग्रह के प्रथम संस्करण का जिस समय प्रकाशन हुआ था तब से संतों और उनकी रचनाओं के विषय में कुछ अधिक जानकारी प्राप्त करने की ओर लोगों की प्रवृत्ति बढ़ती हुई जान पड़ती है। तब से

आज तक कुछ संतों की रचनाओं के पृथक्-पृथक् संग्रह निकल चुके हैं और उनकी चर्चा करते हुए कुछ आलोचनात्मक निबंध भी प्रकाशित हुए हैं। इधर कुछ प्रमुख विश्वविद्यालयों ने इस विषय को भी अपने यहाँ के खोजकार्य में स्थान दे दिया है जिससे संतों और उनकी कृतियों के वैज्ञानिक अध्ययन और अनुशीलन में अच्छी सहायता मिलने की आशा है। नयी खोज, नये प्रकाशन एवं नवीन अध्ययन-प्रणाली के आधार पर इस विषय का भी महत्त्व अब क्रमशः बढ़ता हुआ दीख पड़ता है। अतएव, संभव है कि जिन रचनाओं के प्रति विद्वानों की कभी उपेक्षा रहा करती थी वे उनके मनन की वस्तु बन जाँय। संतों की कृतियों के जो पाठ अभी तक बहुत कुछ सदोष और संदिग्ध थे वे क्रमशः सुधरते जा रहे हैं और उनके जीवन-संबंधी परिचयों पर जो आज तक किसी न किसी प्रकार की पौराणिकता की छाप लगी रहती थी वह धीरे-धीरे मिटने लगी है। प्रामाणिक बातों के प्रकाश में आ जाने पर यदि उचित मूल्यांकन हो सका तो इस विषय का महत्त्व और भी बढ़ सकता है। अभी तक इस विषय की अनेक बातों पर अंतिम निर्णय नहीं दिया जा सकता।

फिर भी संग्रह के इस द्वितीय संस्करण का संपादन करते समय प्रथम संस्करण की कतिपय त्रुटियों का संशोधन किया गया है। इनमें से कुछ का कारण प्रेस की असावधानी कही जा सकती है, किंतु अन्य बहुत सी ऐसी भी रही हैं जो उस समय भ्रम वा अज्ञान के कारण ही संभव थीं और जिनका मार्जन इस समय की उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर किया जा सकता है। प्रथम संस्करण की जिन बातों को संशोधित रूप देने की चेष्टा की गई है उनका निर्देश यथास्थान कर दिया गया है। उनमें से मुख्य-मुख्य ये हैं :—

(१) संत सदना, धर्मदास एवं धरनीदास के संबंध में उनके जीवन-काल विषयक टिप्पणी दे दी गई है।

(२) संत नामदेव के जन्म-स्थान का पता आजकल के स्वीकृत मत के अनुसार दे दिया गया है।

(३) गुरु नानक के परिचय के अनंतर जो रचनाएँ उनकी कहला कर संगृहीत थीं वे वस्तुतः गुरु तेगबहादुर तथा एकाध अन्य संतों की रचनाएँ थीं, उन्हें निकालकर गुरु नानक की रचनाएँ रख दी गई हैं। इस प्रकार का भ्रम संभवतः 'वेलवेडियर प्रेस' वाले 'संतबानी-सग्रह' के कारण था।

(४) प्रथम संस्करण में दरिया साहब (बिहारवाले) तथा दरिया साहब (मारवाड़वाले) दोनों का परिचय दिया गया था, किंतु रचनाएं केवल दरिया साहब (बिहारवाले) की ही संगृहीत थीं। इस संस्करण में दरिया साहब (मारवाड़वाले) की भी रचनाओं का समावेश कर दिया गया है।

(५) प्रथम संस्करण में संत बुल्लासाहब का परिचय देकर उसके अनंतर बुल्लेशाह की रचनाएं संगृहीत कर दी गई थीं। यह संभवतः इन दोनों संतों को पृथक्-पृथक् दो व्यक्ति न मानने के कारण था। इस द्वितीय संस्करण में संत बुल्ला साहब के परिचय के अनंतर उनकी रचनाएं पृथक् दे दी गई हैं और उनके पीछे संत बुल्लेशाह का एक परिचय जोड़ दिया गया है।

संतों अथवा उनकी रचनाओं का क्रम वही रहने दिया गया है जो पहले संस्करण में था। वह कालानुसार न होकर कदाचित् महत्त्वानुसार है।

बलिया
मार्गशीर्ष सुदी १५
सं० २००८

परशुराम चतुर्वेदी

विषय-सूची

संत–साहित्य

भूमिका

उत्तरकालीन हिंदी-साहित्य या दूसरे शब्दों में रीति-काल की कविता को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अलंकारों के बोझ से असल चीज़ दब गई, शब्दाडंबर ही सब कुछ हो गया। चमत्कार और अर्थगौरव की भी कमी नहीं है, बिहारी आदि कुछ रीतिकालीन कवियों में। साहित्य मात्र का एक उद्देश्य होता है 'सत्य' की खोज और पाठकों के सामने शब्दों द्वारा उस का व्यक्तीकरण। पर यह तो कबीर आदि संतों की वाणी में ही मिलता है। इन की बानियों में असल चीज़ बिना किसी मुलम्मे के, बिना किसी आडंबर के रक्खी हुई है। और फिर जो 'सत्य' है वही 'शिव' हो सकता है, और वही वास्तव में 'सुंदर' है। हम देखते हैं कि उत्तर-कालीन कवियों के काव्य में 'सौंदर्य क्या है' इस के बारे में बड़ी भ्रांत धारणायें हो गई थीं। 'रस-थ्योरी' के पीछे पड़ कर कविता-कामिनी को कुछ बाद के कवियों ने इतनी भद्दी बना डाला जिस का कुछ ठिकाना नहीं।

पर यहां इन सब बातों पर विचार करने का अवसर नहीं है। हमें संक्षेप से यह देखना है कि संतों की बानियों में कौन से संदेश भरे पड़े हैं, जीवन की व्याख्या क्या है, इन के अनुसार इन की कविता का मुख्य विषय क्या था, तथा इस की विशेषतायें क्या थीं, जो इस को अन्य काल की कविताओं से बिलकुल अलग कर देती हैं।

संत-साहित्य का मुख्य विषय परमार्थसाधन तो है ही, पर इन का मार्ग, इन के उपदेश, इन के समकालीन अथवा आस-पास के सूर, तुलसी आदि महात्माओं से कुछ भिन्न थे। साकार उपासना इन के मत से ठीक नहीं थी। परमार्थसाधन संबंधी इन के मार्ग और उपदेश अधिक विकसित और व्यापक थे।

हिंदी-साहित्य के मध्य-काल को साहित्य के इतिहास के अनुसार 'भक्ति'-काल या 'धार्मिक'-काल कहते हैं। इस का आरंभ वीरगाथा काल के प्रथम उत्थान के समाप्त होने पर अर्थात् चौदहवीं शताब्दी से आरंभ होता है। हिंदी का भक्ति-काव्य किस प्रकार की परिस्थितियों में उद्भूत हुआ यह भी संक्षिप्त रीति से जान लेना आवश्यक है, हम देखते हैं कि हमारे भक्ति-काव्य की उत्पत्ति मोटी तौर से देश में मुसलमानों के राज्य स्थापित हो जाने के बाद से ही आरंभ होती है, और ज्यों ज्यों यहाँ मुसलिम राज्य की नींव दृढ़ होती गई त्यों त्यों भक्ति-काव्य की विविध शाखायें भी प्रस्फुटित होती गईं। अकबर जहाँगीर काल में जब भारत में मुसलिम राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था वही समय हमारे वैष्णव-काव्य और संत-साहित्य की परम उन्नति का भी था। मुसलिम राज्य की अवनति के साथ ही श्रेष्ठ भक्ति-काव्य का प्रायः लोप, वीरगाथा का द्वितीय उत्थान तथा रीतिकाव्य की उन्नति आरंभ होती है।

यह मानी हुई बात है कि देश के साहित्य की उत्पत्ति, विकास तथा अवनति आदि पर तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता; अब हमें यह देखना है कि वीरगाथा के प्रथम उत्थान के अंत और साथ ही भक्ति-काव्य की उत्पत्ति से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का क्या संबंध है।

अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज के निधन के बाद और साथ ही जयचंद को अपनी करतूत का जो फल मिला उस से हिंदुओं का लड़ाई का जोश तो ठंडा हो ही गया, साथ ही देश में एकछत्र राष्ट्रीय भावना का भी लोप हो गया। हिंदू राष्ट्र छोटे छोटे इतने फिरकों में बँट गया था, आपस की फूट और गृहयुद्ध का इतना बोलबाला हो रहा था कि सारी हिंदू जाति ही निस्तेज और निष्प्राण हो रही थी; और किसी भी विदेशी विजेता के लिए यहां पर प्रभुत्व जमा लेना कोई कठिन बात न थी, और हुआ भी ऐसा ही।

पर साहित्य पर इस का क्या क्या प्रभाव पड़ा ? कड़खों और कड़-

खेतों की ज़रूरत नहीं थी। हिंदुओं का युद्धप्रेम, अपने देश और अपने राजा के लिए लड़ मरने का हौसला खतम हो चुका था। सब को अपनी व्यक्तिगत चिंता ही अधिक थी, ऐसी स्थिति में वीरकाव्य या 'जय'-काव्य की कहां गुंजाइश थी। स्पष्ट है कि अब रासो तथा उस ढंग के चारण-काव्य की आवश्यकता ही हिंदुओं को नहीं रह गई।

पर इस के बाद ही जब देश में विदेशी शासन भी जम कर बैठता दिखाई दिया तब हिंदुओं की आँख खुली। पर अब क्या हो सकता था? चिड़ियां खेत चुन चुकी थीं अब सिवा ख़ुदा की याद के दूसरा काम ही क्या रह गया? फलतः हिंदुओं का ध्यान ईश्वराराधन की ओर गया। तत्कालीन इतिहास हमें बताता है कि हिंदू जनता पर नवागत मुसलिम शासकों ने अनेक अमानुषिक अत्याचार किये। हिंदू प्रजा को रोटियों के लाले तो पड़ ही रहे थे साथ ही किसी प्रकार का नागरिक स्वत्व भी उन के पास न रह गया। बात बात पर अपमान, शारीरिक यंत्रणा की तो कोई बात ही नहीं, यहां तक कि हिंदुओं का साफ़ कपड़े पहनना, या घोड़े आदि की सवारी करना भी अपराध समझा जाने लगा और इस के दंड स्वरूप संपत्ति अपहरण, खाल खिंचवा कर भूसा भर देना, या कम से कम सर मुड़वा कर गधे पर सवार करा शहर में घुमाया जाना आदि बहुत साधारण बातें थीं।

जो हो, इतिहासों में कहे हुए इन अत्याचारों की तालिका देने का यह अवसर नहीं है। हमारे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि इस प्रकार की घोर राजनैतिक अशांति और देशव्यापी जातीय विपत्तिकाल में ही हिंदी के भक्ति-काल की नींव पड़ी। प्रारंभिक मुसलिम राजत्वकाल में हिंदू प्रजा को अपना जीवन भारभूत हो गया था और सब ओर उसे नैराश्य का घोर अंधकार ही दिखाई पड़ता था। शाहाबुद्दीन ग़ोरी के आक्रमण से लेकर तुग़लकों के समय तक का तो यह हाल रहा; फिर तैमूर के प्रलयकारी आक्रमण ने हिंदुओं की बची खुची आशाओं पर भी पानी फेर दिया।

घोर विपत्ति और निराशा में मनुष्य का विश्वास ईश्वर से भी उठ

जाता है। सोवियट रूस का ताजा उदाहरण हमारे सामने है। सब से अधिक धर्मप्राण या धर्मभीरु जाति विपत्ति के आघातों से ऊब कर किस प्रकार अनीश्वरता को अपना सकती है यह हम आधुनिक रूस से भली भाँति सीख सकते हैं। ठीक यही अवस्था उस समय भारत की हो रही थी, पर विधि का विधान कुछ और ही था इस देश के लिये।

उत्तरभारत के इस अवस्था में परिणत होने के कुछ पहले ही दक्षिण में कुछ ऐसे महात्माओं का आविर्भाव हो चुका था जिन्होंने एक अभूतपूर्व भक्ति का स्रोत सारे देश में प्रवाहित कर दिया। सब से पहले (१०७३)[१] स्वामी रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय पद्धति से भक्ति का उपदेश दिया और शिक्षित तथा सुसंस्कृत हिंदू जनता क्रमशः इन की ओर आकृष्ट होती आ रही थी। फिर गुजरात में (सं० १२५४-१३३३) स्वामी मध्वाचार्य का आविर्भाव हुआ। इन्होंने द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय की नींव डाली। इधर देश के उत्तरपूर्व भाग में जयदेव की कृष्ण-भक्ति का युग आया और इस के प्रधान अनुयायी हुए मैथिलकोकिल विद्यापति। 'अभिनव जयदेव' इन का नाम ही पड़ गया। परंतु इस भक्तिस्रोत के उत्तरभारत में प्रवाहित करने का श्रेय स्वामी रामानंद (१५ वीं शताब्दी) को मिला। यह स्वामी रामानुज की शिष्यपरंपरा में थे। इन्होंने विष्णु के अवतार राम की उपासना को प्रधानता दी। इन्हीं के शिष्य कबीर हुए जिन्होंने भक्ति को एक नया ही रूप दे दिया जिस पर आगे विचार करेंगे। इसी समय के आस पास स्वामी वल्लभाचार्य का आविर्भाव हुआ जिन्होंने साकार कृष्णभक्ति को विशेष रूप दिया। इन्हीं की शिष्यपरंपरा में सूरदास, नंददास जैसे रत्नों का आविर्भाव हुआ जिन की विभूतियों से हिंदी साहित्य को उचित गर्व है।

पर जैसे एक ओर प्राचीन सगुण उपासना का प्रचार हुआ और

---

[१] रामानुजाचार्य का समय सं० १०८४ से सं० ११९४ तक माना जाता है। प० च०

उस के अनुरूप तुलसी, सूर आदि कवियों की रचनाओं से हिंदीकाव्य फला फूला उसी प्रकार देश में मुसलमानों के जम कर बस जाने और उन के अत्याचारों के दिनों दिन बढ़ते जाने से एक ऐसे सामान्य-भक्तिमार्ग की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसे हिंदू, मुसलमान, छूत, अछूत, ऊँच, नीच सभी अपना सकें। यही आगे चल कर 'निर्गुणपंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस मार्ग का मुख्य उद्देश्य था जाति, पाँति, ऊँच-नीच आदि के मिथ्या भेद भाव को हटा कर मनुष्य मात्र को एक प्रेमसूत्र में बाँधना। बंगाल में सब से पहले चैतन्य महाप्रभु ने इस भाव की नींव डाली। इधर महाराष्ट्र और मध्य देश में नामदेव और रामानंद जी ने इसी भाव का सूत्रपात किया।

नामदेव जी यद्यपि स्वयं सगुणोपासक थे पर मुसलमानों के अत्याचारों से मर्माहित होकर हिंदू और मुसलमान को एक सूत्र में लाने का प्रथम प्रयास भी हम इन्हीं की वाणी में देखते हैं। एक स्थान पर ये कहते हैं—

पांडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी।
लै कर ठेंगा टेंगरी तोरी लंगत लंगत आती थी॥
पांडे तुम्हरा महादेव धौला वलद चढ़ा आवत देखा था।
पांडे तुम्हरा रामचंद सो भी आवत देखा था॥
रावन सेती सरबर होई, घर की जोय गँवाई थी।
हिंदू अंधा तुरकौ काना, दुहौ ते ज्ञानी सयाना॥
हिंदू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद।
नामा सोई सेविया, जहँ देहरा न मसीद॥

गुरु नानक ने ग्रंथसाहब में इन के इस आशय के कई पद उद्धृत किये हैं। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि नामदेव जी वास्तव में मूर्तिपूजक थे और शिव आदि रूपों में इन की उपासना के अनेक प्रमाण मिलते हैं। पर ये विलक्षण प्रतिभासंपन्न और बड़े दूरदर्शी रहे होंगे इस में कोई संदेह नहीं। इन्होंने बहुत पहले जान लिया था कि भारत में हिंदू-मुसलमान तथा छूत-अछूत सब को एकता के सूत्र में

बाँधने वाला यदि कोई सामान्य भक्तिमार्ग का प्रचार न किया जायगा तो या तो सारा देश नास्तिक हो जायगा या भयानक वर्ग-युद्ध में फँस कर सब एक दूसरे से लड़ मरेंगे। यही सोच कर इन्होंने एक ओर तो मंदिर मस्जिद की निःसारता घोषित करते हुए सर्वत्र ईश्वर की विद्यमानता का प्रचार किया तथा दूसरी ओर मूर्तिपूजा आदि को अनावश्यक बताते हुए 'राम-रहीम' की एकता का राग भी शुरू किया जैसे—

आपुन देव देहरा आपुहि आपु लगावै पूजा।
जलते तरँग तरँग ते है, जल कहन सुनन को दूजा॥
आपुहि गावै, आपुहि नाचै, आपु बजावै तूरा।
कहत नामदेव तू मेरो ठाकुर, जन ऊरा तू पूरा॥

इस प्रकार कबीर के प्रसिद्ध निर्गुण-पंथ का बीजारोपण करते हुए हम नामदेव जी को देखते हैं। पर इस के साथ ही इन का सगुणवाद किसी भी अवस्था में लोप नहीं हो पाया था। इस के प्रमाण भी इन के पदों में बराबर मिलते हैं जैसे—

दशरथ राय-नंद राजा मेरा रामचंद।
प्रणवै नामा तत्व रस अमृत पीजै॥

साथ ही आगे चल कर कबीर, दादू आदि ने जिस ज्ञान-तत्व का उपदेश दिया उस का बीजारोपण भी हम इन्हीं की रचना में पहले पहल पाते हैं जैसे—

माइ न होती बाप न होता, कर्म न होती काया।
हम नहिं होते तुम नहिं होते, कौन कहाँ ते आया॥
चंद न होता, सूर न होता, पानी पवन मिलाया।
शास्त्र न होता, वेद न होता, करम कहाँ ते आया॥ इत्यादि

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्गुण-पंथ की उत्पत्ति पहले ऐसे भक्तों की वाणियों से ही प्रगट हुई जो आरंभ में या वास्तव में, सूर, तुलसी आदि की भाँति सगुणोपासक भक्त ही थे! हम 'वास्तव' में इस लिये कहते हैं कि यद्यपि इन्होंने समय समय पर मूर्तिपूजा आदि की

निःसारता बताई पर इस देश की हिंदू जनता में सगुण उपासना का भाव इतना बद्धमूल हो गया था कि खुले आम इस का विरोध करने का साहस कबीर के पहले शायद किसी को नहीं हुआ। शंकर की अद्वैत फ़िलासफ़ी हिंदू जाति के जिस मज्जागत संस्कार को मेटने में सफल न हो सकी उस के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना हँसी खेल न था। नामदेव ने वह आवाज़ उठाई पर दबी ज़बान से। उन की रचनाओं में यह दोरंगी बातें साथ साथ देखने से उन की अनिश्चितता स्पष्ट हो जाती है।

पर इतिहास हमें बताता है कि कोई बड़ा आदमी जब एक बार किसी नये विचार को जन्म दे देता है तो वह दबता कभी नहीं। दूसरे प्रचारक शीघ्र ही प्रकाश में आकर उस को ले बढ़ते हैं। यहां भी ऐसा ही हुआ। 'निर्गुण-पंथ' या प्रथम 'ज्ञानाश्रयी शाखा' के प्रचारक अपनी दोरंगी रचनाओं से कुछ दुबिधा में पड़े दिखाई देते हैं। कहीं तो इन की वाणियों में भारतीय अद्वैतवाद और मायावाद का परिचय मिलता है, कहीं सूफ़ियों के प्रेमतत्व की झलक दिखाई देती है और कहीं पैग़बरी ख़ुदावाद की। फिर कहीं सूर, तुलसी आदि की भाँति राम-कृष्ण की बहुदेवोपासना का भी परिचय मिलता है तो साथ ही मुसलमानी जोश के साथ मूर्तिपूजा अवतार पूजा या बहुदेवोपासना का खंडन भी मिलता है। फिर इसी के साथ साथ क़ुरबानी, रोज़ा, नमाज़ आदि की निःसारता प्रगट करते हुए तत्वज्ञानियों की भाँति माया, जीव, अनहद नाद, सृष्टि, प्रलय आदि की भी चर्चा की गई है।

इन सब बातों पर ध्यान देने से यही स्पष्ट होता है कि इन संतों की धारणा यही थी कि ईश्वरोपासना की इतनी बहुसंख्यक विधिओं, आडंबरों, और उन के अलग अलग मत-मतांतरों तथा पृथक् विधि-विधानों के कारण ही देश में इतना पारस्परिक द्वेष, भेदभाव और फूट बढ़ रही थी। जाति को एक प्रेमसूत्र में बाँधने के लिये इन्होंने धार्मिक भेदभाव को दूर करना अनिवार्य समझा और इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिये इन्होंने धर्म और उपासना के सारे वाह्य आडंबर को

हटाकर विशुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया।

पर इन संत-कवियों को जितने प्रोत्साहन की आशा थी उतना न प्राप्त हो सका। भारत की संस्कृत और सुशिक्षित जनता अधिकतर इन की मतानुयायी न हो सकी। उच्चवर्ग के ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि यथासंभव अंत तक इन के प्रभाव से दूर ही रहे। संस्कृत के विद्वान पण्डित लोग हृदय में कबीर आदि महात्माओं की महत्ता को मानते हुए भी प्रगट रूप से बराबर इन का विरोध करना ही अपना धर्म समझते रहे। यहाँ तक कि हिंदी-कविता के सूर्य महात्मा तुलसी दास भी इन 'वेद-पुरान' के निंदकों तथा 'अलख' जगाने वाले 'नीचों' की निंदा किये बिना न रह सके। सारांश यह कि इन के अनुयायी अधिकतर दलित जातियों और शूद्रों में से ही हुए। और साथ साथ सूर, तुलसी आदि द्वारा सगुण-भक्ति का विकास भी कभी बंद न होकर समानांतर रूप से विकसित ही होता गया।

अब इस निर्गुण-पंथ में भी आरंभकाल से ही हम दो शाखाएँ देखते हैं। एक तो ज्ञानाश्रयी शाखा जिस का प्रथम और प्रधान प्रवर्तक कबीर को ही मानना चाहिये, क्योंकि इस विषय पर विस्तृत और स्पष्ट रचना सब से पहले कबीर ही की मिलती है। दूसरी शाखा हुई सूफ़ियों की विशुद्ध प्रेममार्गी-शाखा जिस के प्रधान कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए। इस शाखा के कवियों की शैली और विचार सब से निराले थे। इन्होंने कल्पित कहानियों (प्रेमगाथाओं) के माध्यम द्वारा प्रेमतत्व का निरूपण किया। इन की शैली थी लौकिक प्रेम के छल या बहाने से भगवत्प्रेम का वर्णन करना। समूची गाथा एक विशाल रूपक के रूप में होती थी। इन की कथाएं आमतौर से सभी प्रायः एक सी होती थीं जिस का नायक कोई राजकुमार होता था जो किसी 'सुवा' या अन्य पक्षी से किसी राजकुमारी के अनुपम रूप, गुण की प्रशंसा सुन उस के 'प्रेम की पीर' से व्याकुल हो, त्यागी का भेस धर निकल पड़ता था और वही पक्षी उस का मार्ग-प्रदर्शक हुआ करता था। वास्तव में राजकुमार को

साधक, राजकुमारी को ईश्वर, और तोते को गुरु समझना चाहिये। यही इन प्रेमगाथा-लेखकों की रीति थी। ये अधिकांश में पहुँचे हुए फ़क़ीर हुआ करते थे, पर इन का मार्ग ईरान के जलालुद्दीन रूमी आदि सूफ़ी फ़क़ीरों के दार्शनिक विचारों से पूर्णतः प्रभावित था। ईश्वर, मोक्ष-प्राप्ति या पारलौकिक उत्कर्ष के जितने उपाय उस समय देश में प्रचलित हो रहे थे उन सब में यह निराला था। इन्होंने प्रियतमा 'माशूक़' के रूप में ही ईश्वर से मिलने की राह को सब से सुगम समझा। राजयोग, हठयोग, साकार और निराकार भक्ति, पूजा-रोज़ा, नमाज़ आदि अनेकानेक उपायों और साधनों को छोड़ इन की राय में ईश्वर केवल प्रेम से मिलता है।

इन फ़क़ीरों ने अपना मत चलाने या अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। पर इन की रचनाएं हिंदी साहित्य में एक विशेष स्थान रखती हैं। अवधी भाषा में दोहा चौपाई छंदों में महाकाव्यों के ढंग की रचनाओं के चलन का श्रेय इन्हीं को है। महाकवि तुलसीदास को भी अपने रामचरित मानस की रचना के लिये किसी हद तक जायसी का ऋणी मानना पड़ेगा। और फिर इन का विरह वर्णन तो हिंदी-साहित्य क्या संसार के किसी भी साहित्य में शायद ही अपना सानी रखता हो। इन्होंने समूचा हृदय निकाल कर रख दिया है, यद्यपि भाषा ठेठ अवधी और कहीं कहीं कुछ गंवारूपन भी लिये हुये है।

परंतु इस जिल्द में कबीर आदि ज्ञानाश्रयी शाखा के संतों की रचना और विचारधारा का ही विशेष वर्णन करना है। इन की रचनायें यद्यपि विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से उतने मार्के की नहीं बन पड़ीं पर सत्य-निरूपण और तत्वकथन की दृष्टि से इन का स्थान कदाचित् सर्वोपरि मानना पड़ेगा। यों तो इन के पहले नाथ-संप्रदाय के योगियों की परंपरा मिलती है। पर कुछ तो इन की रचनाओं के अप्राप्य होने के कारण और कुछ जो मिलती भी हैं साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण न होने के कारण काव्यजगत् में इन की चर्चा नहीं के ही बराबर है। पर कबीर

आदि की ज्ञानाश्रयी शाखा इन की विचार-पद्धति से किसी हद तक प्रभावित अवश्य है और इस कारण इन का कुछ दिग्दर्शन कर लेना आवश्यक है।

बाबा गोरखनाथ एक ख्यातनामा योगी हो गए हैं। इन का समय विक्रम की ११ वीं शताब्दी माना जाता है। इन के गुरु प्रसिद्ध मछंदर नाथ (मत्स्येंद्र) थे। इन का मार्ग था हठ योग। योग के चौरासी आसनों तथा यम नियम प्राणायाम आदि द्वारा शरीर और मन को वश में कर लेना ही इन का मार्ग था। प्रसिद्ध 'मत्स्येंद्र' और 'अर्ध मत्स्येंद्र' आसन शायद गुरु मत्स्येंद्रनाथ (मछंदर नाथ) द्वारा ही आविष्कृत हुए थे। जो कुछ इन की वाणियां मिलती हैं उन में योगाभ्यास की श्रेष्ठता, आत्मज्ञान, सृष्टि, प्रलय, शरीर और जगत् की क्षणभंगुरता आदि के संबंध में लगभग वैसे ही प्रवचन मिलते हैं जैसा आगे चलकर कबीर, दादू आदि की वाणियों में। यह सत्य है कि इन के बाद के संतों ने हठयोग तथा भाँति भाँति की यातनाओं से शरीर को कष्ट देकर उसे वश में करने की विधि को प्रोत्साहन नहीं दिया पर तत्वज्ञान संबंधी अन्य विचार दोनों शाखाओं के बहुत कुछ मिलते जुलते हैं जैसा कि नीचे दिये हुए कुछ उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा। अभी हाल में लगभग चौबीस ऐसे ग्रंथों का पता चला है जिन के रचयिता गुरु गोरखनाथ कहे जाते हैं[१]। इन के सिवाय एक और प्राचीन संग्रहग्रंथ मिला है जिस में इसी ढंग के बीस योगियों की रचनाएं एकत्रित हैं[२]। इन में से कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं।

गोरखनाथ

पवन गोटिका रहणि अकास। महियल अंतरि गगनक विलास ॥
पयाल नीं डीबी सुन्नि चढ़ाई। कथत गोरखनाथ मछींद्र बताई ॥
सुन्नि मंडल तहँ नींझर झरिया। चंद सुरज ले उनमनि धरिया ॥

---

१ हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (पहला भाग) पृ० ३६

२ 'हिंदुस्तानी' भाग १, अंक ४ पृ० ४३९

वस्तीन सुन्यं सुन्यं न वस्ती, अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर में बालका बोलै, ताका नाँव धरहुगे कैसा ॥
छांटै तजौ गुरु छांटै तजौ, तजौ लोभ माया।
आत्मा परचै राखौ गुरुदेव, सुंदर काया ॥

जलंधरनाथ

यह संसार कुबुधि का खेत। जब लगि जीवै तब लगि चेत ॥
आँख्याँ देखै, कान सुणै। जैसा वाहै वैसा लुणै ॥

घोड़ाचोली

रावल ते जे चालै राह। उलटि लहरि समावै माँह ॥
पंच तत्त का जाणै भेव। ते तो रावल परिचय देव ॥

कान्हपाद

जे जे आइला ते ते गेला। अवना गमने काल विमन भइला ॥
हेरि से कान्ह जिन उर बटई। भणइ कान्ह मो हियहि न पइसइ ॥

कणेरीपाव

सगौ नहीं संसार, चितनहिं आवै बैरी।
नृभय होइ निसंक, हरिष में ह्र्स्यौ कणेरी ॥

चरपटनाथ

चरपट चीर चक्रमन कंथा। चित्त चमाऊँ करना ॥
ऐसी करनी करो रे अवधू। ज्यों बहुरि न होई मरना ॥

देवलनाथ

देवल भये दिसंतरी, सब जग देख्या जोइ।
नादी बेदी बहु मिलै, भेदी मिलै न कोइ ॥

धूंधलीमल

आईसजी आवो, बाबा आवत जात बहुत जग दीठा कछू न चढ़िया हाथं।
अब का आवणा सूफल फलिया, पाया निरंजन सिध का साथं ॥

गरीबनाथ

पाताल की मीडकी आकास यंत्र बावै।
चांद सूरज मिलै तहाँ, तहाँ गंग जमुन गीत गावै ॥

इन उद्धरणों में आये हुए विचारों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन के बहुत से आदर्शों को आगे चल कर संतकवियों ने अपनाया। ऊपर कहे हुए सब कवि कबीर से पहले के थे इस में संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि गुरु गोरखनाथ के समय में बहुत मतभेद है पर विद्वानों को जो कुछ सामग्रियाँ मिल सकी हैं उन से यह स्पष्ट है कि ईसा की बारहवीं शताब्दी के आगे किसी तरह भी इन का रचना-काल बढ़ाया नहीं जा सकता। फिर इन की परंपरा हम को बतलाती है कि चौरंगीनाथ और घोड़ाचोली गोरखनाथ के गुरु भाई थे। गुरु जलंधर नाथ मछींद्रनाथ के गुरुभाई थे और कणेरीपाव जलंधर नाथ के शिष्य थे। फिर चरपटनाथ गहनीनाथ के गुरु भाई थे और देवलनाथ का समय भी प्रायः वही था। इसी प्रकार धूँधलीमल और गरीबनाथ का समय क्रमशः ई० १३८५ और १३४३ कहा गया है।[१] इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सभी महात्माओं का आविर्भाव कबीर के पहले हो चुका था और इन के उपदेशों की छाप परवर्ती संत-साहित्य पर निश्चय रूप से पड़ी।

पर हम संतसाहित्य में दो बातें स्पष्ट देखते हैं। एक तो ज्ञान संबंधी आध्यात्मिक उपदेश और दूसरी भक्ति। अपने आप को जानना, संसार मिथ्या है तथा इसी प्रकार के अन्य सिद्धांत तो इन्होंने एक विशेष सीमा तक नाथपंथी साधुओं से लिये। पर संतवाणी में भक्ति का जो हम एक प्रबल स्रोत देखते हैं वह कहाँ से आया? नाथपंथियों में तो इस का अभाव था। इस के लिये हमें रामानुजाचार्य के तथा रामानंद तक उन की शिष्य परंपरा के उपदेशों का सारांश संक्षेपतः जान लेना होगा। यह शिष्यपरंपरा इस प्रकार है—

---

[१] नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग ११, अंक ४

रामानुज
|
देवाचार्य
|
हरिआनंद
|
राघवानंद
|
रामानंद

स्वामी रामानंद का जन्म सन् १२९९ में प्रयाग में एक ब्राह्मण कुल में हुआ कहा जाता है। इन्होंने संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया और विद्यार्थी अवस्था में ही काशी में संयोगवश इन का साक्षात्कार राघवानंद जी से हुआ और उन के व्यक्तित्व तथा भक्तिवाद से प्रभावित होकर इन्होंने उन का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। पर आगे चल कर किसी बात से गुरु से इन का मतभेद हो गया और इन्होंने अपना अलग संप्रदाय चलाया। जैसा पहले कह चुके हैं, इन्होंने रामानुज की नारायणी उपासना के स्थान पर विष्णु के अवतार राम की उपासना प्रचलित की, तथा शिष्यत्व संबंधी नियमों को बहुत व्यापक कर दिया। जाति, वर्ण तथा ऊँचनीच का भेदभाव बहुत कुछ दूर कर दिया गया तथा सांप्रदायिक कट्टरपन को भी स्वामी रामानंद ने यथासंभव शिथिल कर दिया। स्वामी रामानंद के दरबार में ही सब से पहले यह नियम चला कि ब्राह्मणेतर तथा शूद्रों को भी एक इन का शिष्यत्व ग्रहण कर सकने तथा अपना आध्यात्मिक सुधार करने का समान अधिकार है। उपासना-विधि के संबंध में यद्यपि यह रामानुज की वैष्णवी, साकार-उपासना के अनुयायी थे पर इन्होंने प्रधानता निराकार उपासना को ही दी जैसा कि निम्नलिखित पद से स्पष्ट हो जायगा—

कस जाइये रे घर लाग्यो रंग। मेरा चित न चलै मन भयो पंग ॥
एक दिवस मन भई उमंग। घसि चोआ चंदन बहु सुगंध ॥
पूजन चली ब्रह्म ठाँय। सो ब्रह्म बतायो गुरु मंत्रहि माँहि ॥
जहँ जाइये तहँ जल परवान। तू पूर रह्यो है सब समान ॥
वेद पुरान सब देखे जोय। उहाँ तो जाइये जो इहाँ न होय ॥
सतगुरु मैं बलिहारी तोर। जिन सफल निकल भ्रम काटे मोर ॥
रामानंद स्वामी रमत ब्रह्म। गुरु का सबद काटे कोटि करम ॥

यह पद सिखों के ग्रंथसाहब में दिया हुआ है। इस में स्पष्ट रूप से साकार उपासना की व्यर्थता का संकेत है और साथ ही ईश्वर की सर्वव्यापकता पर ज़ोर देते हुए गुरु के मंत्र को प्रधानता दी गई है। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, कुछ संतकवियों ने गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर रक्खा है, सो इस असामान्य गुरुभक्ति का सूत्रपात हम रामानंद के समय से ही देखते हैं।

स्वामी रामानंद के पद कुछ दो ही एक देखने को मिलते हैं, पर इन्हीं से इतना पता अवश्य चल जाता है कि संतसाहित्य और संतों के आध्यात्मिक विचार इन से प्रभावित अवश्य हुए। संतसाहित्य में नाथ संप्रदाय वाले महाकाव्यों द्वारा प्रचारित ज्ञानमार्ग के साथ साथ जो भक्ति का अपूर्व स्रोत मिला हुआ दिखता है उस का श्रेय स्वामी रामानंद तथा उन के कुछ संत शिष्यों को ही देना पड़ेगा। फिर इस के सिवा छोटे बड़े, ऊँच-नीच सब को समान रूप से अपनाना भी स्वामी रामानंद के समय से ही शुरू हुआ जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इस सिलसिले में स्वामी जी के शिष्यों में सदना और रैदास के नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं। सदना जाति के कसाई थे, और रैदास चमार थे। कसाई होते हुए भी ये जीवहत्या नहीं करते थे। केवल कटा हुआ मांस बेचा करते थे। इन की भक्ति अपूर्व थी। इतना विनय भाव कम ही देखने को मिलता है, जैसे—

एक बूँद जल कारनै, चातक दुख पावे।
प्रान गये सागर मिलै, पुनि काम न आवै ॥

प्रान जो थाके थिर नाहीं, कैसे विरमावो।
बूड़ि मुये नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो॥
मैं नाहीं कुछ हौं नाहीं, कछु आहि न मोरा।
औसर लज्जा राखि लेहु, सदना जन तोरा॥

अहंभाव का पूर्ण रूप से तिरोभाव, निपट दीनता, अपने आप को पूर्णतः 'उस के' हाथों सौंप देना; यह सब पराभक्ति के लक्षण हैं। ऊपर वाले पद में हम यह सभी बातें पाते हैं। रैदास की रचना में भी हम यही भाव पाते हैं। भक्ति की यह भावना आगे चल कर प्रायः सभी संतों ने अपनाई और इस का उपदेश दिया। ये दोनों महात्मा कबीर के सम-सामयिक थे[1]।

रामानंद के एक शिष्य पीपा जी का भी प्राथमिक संतों में एक विशेष स्थान है। ये एक राजा थे और कबीर से कुछ पहले के थे। इन का उल्लेख यहां पर इस लिये करना हम आवश्यक समझते हैं कि सब से पहले यथासंभव इन्हों ने ही स्पष्ट शब्दों में साकार उपासना को आडंबर और पूजा के लिये देवता, मंदिर तथा अन्य असंख्य वाह्य-उपचारों को व्यर्थ बताया। इन का पद देखिये —

काया देवल काया देवल, काया जंगम जाती।
काया धूप दीप नैवेदा, काया पूजों पाती॥
काया बहु खंडं खोजने, नव निद्धी पाई।
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो, राम की दुहाई॥
जो ब्रह्मंडे सोइ पिंडे, जो खोजे सो पावे।
पीपा प्रनवे परम तत्व ही, सतगुरु होय लखावे॥

इन के अनुसार अपने से बाहर किसी वस्तु को खोजने की आवश्यकता नहीं है। सब कुछ अपने ही अंदर है। ब्रह्म के सारे तत्व इसी

---

[1] सदना के कबीर के समसामयिक तथा रामानंद के शिष्य होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। ये कबीर के पूर्वकालीन संतों में गिने जाते हैं।

'पिंड' में मौजूद हैं, हाँ खोजने वाला और देखने वाला चाहिये, और यह सतगुरु की कृपा से ही संभव है। यह विचार जो आगे चलकर संतसाहित्य को प्राप्त हुआ, सब से पहले हम पीपा जी की वाणी में ही देखते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर के आविर्भाव काल के कुछ पहले तथा उन के समय में ही नाथपंथी योगियों और रामानंदी भक्तों की सम्मिलित विचार-धारा से एक नये मार्ग का क्षेत्र तैयार हो रहा था। तदनुसार आगे चल कर हम संतसाहित्य में ज्ञान और भक्ति दोनों का अपूर्व सामंजस्य पाते हैं।

पर ज्ञान और भक्ति से अलग संतबानी में हम एक तीसरी बात भी पाते हैं; और वह है 'रहस्यवाद'। यों तो भारत के दर्शन के इतिहास में 'रहस्यवाद' कोई नई चीज़ नहीं थी। वेदांत-दर्शन तथा शंकराचार्य की विचारधारा में रहस्यवाद प्रचुर परिमाण में है ही। पर कबीर तथा अन्य संतकवियों का रहस्यवाद कुछ दूसरे प्रकार का है। इस में ईरान के सूफ़ी फ़क़ीरों के रहस्यवाद की भी झलक मिलती है जिस को जायसी आदि प्रेमगाथा लेखकों ने भली भाँति निवाहा था। संतों के साहित्य में हम भारतीय एकेश्वरवाद तथा सूफ़ियों के प्रेमतत्व दोनों का मधुर संमिश्रण देखते हैं। इस रहस्यवाद की कुछ विस्तृत आलोचना हम आगे चल कर करेंगे।

पूर्वोक्त कथा से इतना स्पष्ट हो गया होगा कि नामदेव, रामानंद, सदना, पीपा तथा रैदास आदि ने किस प्रकार आगामी संतसाहित्य का क्षेत्र तैयार किया और किन किन विचारधाराओं के मेल से यह क्षेत्र तैयार हुआ तथा इन विभिन्न विचारधाराओं का आदि उद्यम क्या था और पहले पहल कौन किस विचारधारा को प्रकाश में लाया।

अब संतसाहित्य में है क्या यह देखना है। हमें शुरू में ही यह जान लेना चाहिये कि वास्तविक काव्यरचना की दृष्टि से इस साहित्य में अधिक आलोच्य विषय कुछ है नहीं। रस, भाषा, अलंकार, छंद तथा रचना सौंदर्य आदि की दृष्टि से संतसाहित्य में हमें कोई विशेष

आशा नहीं करनी चाहिये। बल्कि विद्वानों के अनुसार तो संतकाव्य साहित्य-कोटि में आता ही नहीं। इस धारणा का कारण यही है कि सुंदरदास आदि दो एक अपवादों को छोड़ कर अधिकांश संतकवि सुशिक्षित नहीं थे। भाषा, साहित्य, पिंगल आदि का ज्ञान इन को नाम मात्र का था। संस्कृत का ज्ञान तो शायद ही किसी को रहा हो। 'कवि' होने के लिये जो तीन बातें (शिक्षा, प्रतिभा, अभ्यास) हमारे यहां आवश्यक मानी गई हैं इन में पहले से तो बहुत कम संत कवियों से परिचय रहा होगा बल्कि बहुतेरे तो 'निरक्षर' भी कहे जाते हैं। सब से प्रधान संतकवि स्वयं कबीर ने 'मसि कागद' कभी हाथ से भी नहीं छुआ। पर इन में से बहुत से विलक्षण प्रतिभासंपन्न अवश्य थे। 'अभ्यास' से यदि वास्तविक काव्यकला के अभ्यास से मतलब है, तो वह भी कम ही संत कवियों के रहा होगा। पर सब से मुख्य बात यही है कि इन में से अधिकांश सचमुच तत्वज्ञानी और पहुँचे हुए साधक थे। यदि रस, अलंकार आदि की छटा तथा भाषासौष्ठव का इन की रचना में अभाव है तो इन्होंने जो 'बात अनूठी' कही है उस की भी अवहेलना या तिरस्कार कर दिया जाय यह इन के प्रति महान् अन्याय होगा। अगले पृष्ठों में हमें यही कहना है। ये लोग पंडित या विद्वान् नहीं थे। कृत्रिम तपस्या, इंद्रियनिग्रह और तीर्थाटन आदि के अभ्यासी भी नहीं थे ये। गुफ़ा में बैठ कर योगसाधन, दुखी लोगों को औषधि देकर तथा अन्य चमत्कारों से लोक को चमत्कृत करना भी इन की शैली नहीं थी। इन की वाणी, वेशभूषा तथा आचार, व्यवहार आदि में कोई असाधारणता नहीं थी। ये प्रायः सभी अपनी अपनी साँसारिक जीविका के लिये कोई न कोई 'पेशा' करते थे। कबीर ने अपना जोलाहे का काम उम्र भर नहीं छोड़ा। दादू धुनियां थे, या मतांतर से चमड़े के मोट बनाते थे। सदना मांस बेचते थे। रैदास जूते बनाते थे। सब को भरोसा एक मात्र भगवान् का था और सब अपने उद्यम से ही अपने और अपने कुटुंब का पालन करते थे। अधिकतर साधु-संतों की भाँति जीविका के लिए उद्यम को ईश चिंता में बाधक नहीं मानते थे और न इस का उपदेश ही देते थे। इन का पंथ 'सहज, था।

अधिकांश संत-कवियों ने प्रायः एक ही ढंग की बातें कही हैं। इन की वाणियों के शीर्षक भी बहुत कुछ एक से ही हैं। इस लिए इन के विविध अंगों पर विचार करने में सुविधा भी है। मुख्य मुख्य अंगों पर अलग अलग विचार कर लेने पर समष्टि रूप से इन की विचार-धारा स्पष्ट हो जायगी। उदाहरण हम अधिकतर कबीर और दादू से देंगे क्योंकि सब से अधिक प्रसिद्धि इन्हीं को मिल सकी। हम पहले भी संकेत कर चुके हैं कि साँसारिक कर्तव्य पालन करते हुए ही अपने आध्यात्मिक कल्याण-साधन की शिक्षा संतों ने दी। भगवान् के मिलने के लिये संसार छोड़ कर बन में जाकर हठयोग की क्रियाओं आदि द्वारा शरीर को सुखाना ये ज़रूरी नहीं समझते थे। असल चीज़ है मन को वश में करना। यदि घर में रहते हुए और सांसारिक सारे कर्त्तव्यों का पालन करते हुए मन पर राज्य न किया तो क्या किया। कबीर, दादू आदि के मत से पथ 'सहज' होना चाहिये। सौर-परिवार से एक दृष्टांत लेकर कह सकते हैं कि पृथिवी अपने केंद्र पर चक्राकार घूमती हुई ही सूर्य की परिक्रमा करती है। अपनी धुरी के चारों ओर घूमते रहने वाली उस की दैनिक गति ही उसे सूर्य के चारों ओर उस की वृहत् वार्षिक गति को संभव बनाती है। सूर्य की परिक्रमा के लिये यदि पृथिवी अपनी गति बंद कर दे तो उस की सारी गतिविधि समूल नष्ट न हो जायगी? इसी प्रकार इन संतों के अनुसार दैनिक जीवन ही मनुष्य को शाश्वत जीवन की ओर 'सहज' रूप से अग्रसर कर सकता है।

सहज पथ

दूसरा दृष्टांत नदी और उस के सागर सम्मिलन से दिया जा सकता है। नदी का प्रतिक्षण का उद्देश्य ही है अपने प्रियतम समुद्र में अपने को लीन करना। परंतु नदी अपने दोनों तटों से क्षण भर के लिये भी अलग हो कर सागर की ओर क्या अग्रसर हो सकती है? नहीं। अपने दोनों किनारों के असंख्य काम करती हुई ही वह अपने चरम उद्देश्य की ओर अग्रसर होती है। उस के प्रतिक्षण का जीवन उस के शाश्वत जीवन से इस अभिन्न और सहज योग से युक्त है। एक को छोड़ने

का अर्थ होगा दूसरे का असंभव या व्यर्थ हो जाना? इसी से कबीर ने कहा है कि संसार और गार्हस्थ्य जीवन से अलग होकर मैं साधना नहीं जानता। साधना में कोई 'ऐंचातानी' नहीं है। साधना में 'दैनिक' और 'नित्य' के बीच कोई विरोध नहीं है।

इस महान सत्य को कबीर और दादू ने भली भाँति समझा था और इसी से परम साधक होते हुए भी ये गृहस्थ थे। यही सहज पथ ही इन के अनुसार सत्य पथ है। इस आशय को इन संतों ने अनेक वाणियों द्वारा व्यक्त किया है। कबीर जी कहते हैं—

सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै विषया तजी, सहज कहीजै सोइ॥
सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्हें कोइ।
पाँचू राखै परस तो, सहज कहीजे सोइ॥
सहजैं सहजै सब गए, सुत वित कांमणि काम।
एक मेक ह्वै मिलि रह्या, दासि कबीरा राम॥
सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्हें कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलैं, सहज कहीजै सोइ॥

कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ४१

इसी आशय को भक्तप्रवर सुंदरदास जी ने और भी सुंदरता से प्रगट किया है। देखिये उन के 'सहज-आनंद' नामक ग्रंथ में—

सहजनिरंजन सब में सोई। सहजै संत मिलै सब कोई॥
सहजै शंकर लागै सेवा। सहजै सनकादिक शुकदेवा॥१६
सोजा पीपा सहजि समाना। सेना धना सहजै रस पाना॥
जन रैदास सहज को बंदा। गुरु दादू सहजै आनंदा॥२६

अब यह स्पष्ट है कि इस 'सहज-पथ' के पथिक के लिए जाति-पाँति का सांप्रदायिक भेदभाव कोई अर्थ नहीं रखता। सांप्रदायिक मतमतांतरों के कारण भाँति-भाँति के वेश और बाने बनाकर, अपने 'साधु' होने का विज्ञापन करना दादू आदि के अनुसार मिथ्या ढोंग

और आडंबर मात्र था। इस से इन को बड़ी चिढ़ थी। सच्ची साधना 'अहम्' को मिटाने के बाद ही संभव हो सकती है—

सब दिखलावहि आप को नाना भेष बनाइ।
आपा मेंटन हरि भजन तेहि दिसि कोइ नहिं जाइ॥

दादू, भेष को अंग, ११

जीविका के लिये उद्यम करना ईशचिंतन में बाधक नहीं होता। लोग उद्यम को भगवत्प्रेम का शत्रु इसी लिये समझते हैं कि मनुष्य सांसारिक माया-मोह और बंधन की चक्की में इतना लिप्त हो जाता है कि वह अपने को एक प्रकार की मशीन सा बना कर जड़वत हो जाता है। पर इस में उद्यम को दोष क्यों दिया जाय। वास्तविक उद्यम तो वही है जिस में आदमी अपनी चेतना को न भूले और अपने बनाने वाले को क्षण भर के लिये भी अपने से अलग न समझे। उद्यम वही है जो अपने स्वामी के साथ रह कर किया जाय—

उद्यम अवगुन को नहीं, जो करि जानइ कोय।
उद्यम में आनंद है, साईं सेती होय॥

दादू, विस्वास को अंग, १०

इसी से कुछ भक्तों ने उद्यम को छोड़ कर फ़क़ीरी करने को एक प्रकार की विलासता मानी है। इस सिलसिले में दादू के शिष्य रज्जब जी ने एक बड़ी जोरदार बात कही है—

एक जोग में भोग है, एक भोग में जोग।
एक बुड़हिं बैराग में, इक तरहिं सो गृही लोग॥

मुक्ति अंग, ४६

अर्थात् योग के अंदर भी एक प्रकार का भोग होता है, और भोग में भी योग संभव हो सकता है और गृहस्थजीवन वाला पार हो जाता है।

सहज-पथ के संबंध में दादू जी ने एक और ध्यान देने योग्य बात कही है। सहज-पथ का यात्री अपने मन को ग़ुलाम बना अपनी सफ़र को तय नहीं कर सकता। जो सचमुच इस मार्ग पर चल पड़ा है वह

स्वयं कभी नहीं जान सकता कि वह कितना रास्ता पार कर चुका। परमात्मा के बीच ग़ोता लगाने के बाद फिर उसे अपनी बात याद रखने की .फ़ुरसत कहाँ? सहज पथ के पथिक का लक्षण ही है अपने संबंध में अचेत रहना। जो कहता है 'मैं पहुँच चुका हूँ तुम सब मेरे पथ से चलो,' वह 'पथ' के बारे में कुछ नहीं जानता—

मानुष जब उड़ चालते, कहते मारग माहिं।
दादू पहुँचे पंथ चल, कहहिं सो मारग नाहिं॥
उपत् के अंग, १५

दादू को यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि लोग .खुद तो आत्मतत्व को समझे नहीं और दूसरों को उपदेश भी देने लग जाते हैं। सोता हुआ आदमी दूसरे को कैसे जगा सकता है? वास्तविक 'ज्ञान' तो हुआ नहीं और कुछ थोड़े से शब्द और साखी रच कर लोग समझने लगते हैं कि मैं ज्ञानी हो गया। यह कैसा पाखंड है! दादू के अनुसार ऐसे ही लोग जो अपने को कुछ समझने लगते हैं, पहले डूबते हैं—

सोधी नहीं शरीर को, औरों को उपदेश।
दादू अचरज देखिया, ये जाँगे किस देश॥
सोधी नहीं शरीर कों, कहहिं अगम की बात।
जात कहावहिं बापुरे, आवध लीये हाथ॥
गुरु को अंग, ११७-१८

दादू दो दो पद किये, साखी भी दो चार।
हम को अनुभव ऊपजी, हम ज्ञानी संसार॥
सुनि सुनि परचे ज्ञान के, साखी सबदा होइ।
तब हीं आपा उपजई, हम से और न कोइ॥

सहज, शून्य और गुरु

यों तो मध्यकालीन भक्ति की सगुण, निर्गुण, ज्ञानाश्रयी, प्रेमगाथा, नाथपंथी आदि सभी शाखाओं में गुरु, सद्गुरु या दीक्षा गुरु की आवश्यकता अनिवार्य मानी गई है, पर इसको ज्ञानाश्रयी शाखा के इन संतकवियों ने जितना महत्व, जितनी व्यापकता दी उतनी और किसी ने नहीं। यह

हम पहले भी एक बार कह चुके हैं कि इन महात्माओं के अनुसार गुरु का पद ईश्वर से भी ऊँचा होता है, और यह इस सहज तर्क के अनुसार कि गुरु न मिलता तो ईश्वर से मिलाता कौन? गुरु कैसा होना चाहिये? उस के लक्षण क्या हैं? इस संबंध में इन्होंने विस्तार से बहुत सी बातें कही हैं। उन लक्षणों पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु ही 'ब्रह्म' है, गुरु ही ईश्वर है—

गुरु गोबिंद तो एक हैं, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार॥
दादू अल्लह राम का, दोनों पथ से न्यारा।
रहिता गुन आकार का, सौं गुरू हमारा॥

दादू, मधि को अंग।

इन भक्तों ने प्रायः 'शून्य' के साथ गुरु की तुलना की है। इस जीवन के सहज विकास के लिये शून्य आकाश की भाँति मुक्त अवकाश अपेक्षित है। गुरु भी ठीक ऐसा ही होना चाहिये। इसी से रज्जब जी गुरु के अंग में कहते हैं—

'सत गुरू शून्य समान है'

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि चराचर सृष्टि के विकास के लिये शून्य आवश्यक है। साधारण से लेकर बड़े से बड़े अंकुर का स्वाभाविक विकास तभी हो सकता है जब उस के ऊपर मुक्त आकाश हो। ऊपर यदि शून्य आकाश न होकर किसी चीज़ से ढक दिया जाय तो कोई भी पौदा बढ़ नहीं सकता। इसी प्रकार गुरु अपने व्यक्तित्व से शिष्य को प्रभावित करना चाहे तब तो वह दब ही मरेगा आगे उस का विकास क्या होगा? इसी से गुरु को सहज शून्यवत् होना चाहिये।

'सहजिया संप्रदाय'

संतों की बानियों में 'सहज' और 'सुन्न' शब्द बारंबार आते हैं पर इन शब्दों के वास्तविक मर्म को लेकर आगे चल कर बड़ी छीछालेदर हुई है। संतों का 'सहज' 'सहजिया' संप्रदाय वालों के 'सहज' से बिलकुल भिन्न है, यह आरंभ में ही भली भाँति समझ लेना चाहिये। शुरू में सहजिया संप्र-

दाय वालों का जो कुछ भी सिद्धांत रहा हो पर आगे चल कर तो यह बहुत बदनाम हो गया। इसी सिद्धांत के कारण, ख़ास कर बंगाल में 'सहज' का यह अर्थ होने लगा कि मन और इंद्रियों को उन के सहज स्वाभाविक गति विधि के मार्ग पर छोड़ देना, अर्थात् जो मन और इंद्रियां मांगें वही करना। इस का परिणाम हुआ घोर नैतिक पतन और विषयपरायणता तथा इंद्रियलोलुपता। पर संतों का 'सहज' सिद्धांत, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, इस के बिलकुल विपरीत है। मन को वश में करना इन के ज्ञानतत्व की पहली सीढ़ी है।

संस्कृत के स्थान पर भाषा

रामानंद के बाद संत कवियों ने एक मत से उपदेश के लिये संस्कृत के स्थान पर देशभाषा को आश्रय दिया यह कुछ कम महत्व की बात नहीं थी। यदि अधिक से अधिक संख्या में अपने मंतव्य का सफल प्रचार करना है तो देशभाषा ही का आधार लेना होगा इसे स्वामी रामानंद ने भली भांति समझा था। सब से पहले तो इस सिद्धांत को समझने का श्रेय महात्मा बुद्ध को है जिन्हों ने संस्कृत के स्थान पर तत्कालीन देशभाषा पाली में अपने सिद्धांत प्रकाश करने का निश्चय किया। संस्कृत तो अर्से से पंडितों की भाषा हो रही थी और केवल विद्वान् ब्राह्मण मात्र ही उस से लाभ उठा सकते थे जिन की संख्या क्रमशः घटती ही जा रही थी। पर ग्रंथकारों और विद्वान् कवियों को संस्कृत में रचना किये बिना संतोष ही नहीं होता था। उन्हें सर्वसाधारण के हित की चिंता नहीं थी, उन्हें केवल पंडितमंडली में स्तुत्य होने की अभिलाषा थी। पर रामानंद आदि का दृष्टिकोण ही दूसरा था। इन्हें विद्वत्समाज की स्तुति निंदा से कोई सरोकार नहीं था। ये सर्वसाधारण के कल्याण की अभिलाषा रखते थे। इस के लिये इन्होंने सर्वसाधारण में प्रचलित कथित भाषा का प्रयोग ही ठीक माना, वह साहित्यिकों को भले ही गँवारू या असुंदर जँचे इस की उन्हें परवाह नहीं थी।

यहाँ पर कह सकते हैं कि रामानंद ने संस्कृत के विद्वान होते हुए भाषा को अपनाया यह उन की अग्रशोचिता का परिचायक तो हो सकता

है पर वही बात कबीर आदि के बारे में भी कही जा सकती है या नहीं? क्योंकि इन में से अनेक निरक्षर थे। सिवा बोलचाल की भाषा (परिमार्जित नागरिक भाषा भी नहीं) के इन की और गति ही क्या थी? पर नहीं, संतों ने संस्कृत के विपक्ष और भाषा के पक्ष में अपने विचार भी समय समय पर प्रगट किये हैं जिन से इन के दृष्टिकोण पर संदेह करने का कारण नहीं रह जाता। कबीर जी की यह उक्ति प्रसिद्ध है।

संस्कृत कूप जल कबीरा भाषा बहता नीर।
जब चाहौ तब ही डुबौ, सीतल होय शरीर॥

संप्रदाय की व्यर्थता

देश में फैले हुए नानाविध मतमतांतरों को इन संतों ने शुरू से ही सारे कलह, द्वेष की जड़ मानी है और देश से इस के समूल उच्छेदन में इन्होंने कोई बात उठा नहीं रक्खी, पर सखेद यह मानना पड़ेगा कि यह समस्या आज भी ज्यों की त्यों मौजूद है और शायद इस का लोप धर्म और मत के साथ ही होना संभव होगा। पर स्मरण रहे धर्म से यहां हमारा मतलब केवल 'रेलीजन' और 'रेलिजासिटी' से है, 'वर्चू' और 'स्पिरिचुआलिटी' से नहीं। संप्रदाय और मत एक प्रकार की दलबंदियां हैं। आरंभ में इन का जो कुछ भी उद्देश्य रहा हो, भला या बुरा, पर आगे चल कर इन का उद्देश्य ही हो गया अपने से भिन्न संप्रदाय और मतावलंबियों को सब प्रकार से नीचा दिखाने और उन के अनिष्ट साधन में अपनी सारी शक्ति ख़र्च कर डालना।

संतों के समय में हिंदूसमाज अनगिनित फ़िर्क़ों में बंटा हुआ था और सब के ऊपर शासन करता था सनातनी ब्राह्मण-वर्ग। अब्राह्मणों, और ख़ास कर शूद्रों की बड़ी शोचनीय अवस्था थी। हिंदू समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानना तो दूर की बात रही, हमारे पुरोहित श्रेणी के पंडित लोग इन्हें अस्पृश्य! जानवरों से भी गया बीता समझते थे। मंदिर में अगर कोई कुत्ता चला जाय तो उतना हर्ज नहीं है पर अगर कोई चमार दर्शनार्थ घुस पड़े तो उस की मौत ही समझिये! इन्हीं अत्याचारों का दंड तो अब भोगना पड़ रहा है हिंदुओं को।

जो हो, पर हमारे अग्रशोची संतों ने बहुत पहले हिंदूसमाज की यह भयंकर भूल समझी। उन्होंने इस के फलस्वरूप हिंदू समाज का सर्वनाश ही देखा। यद्यपि सनातनी विद्वान् पंडितों के बद्धमूल प्रभाव के कारण इन की चली नहीं पर यथाशक्ति उद्योग ये करते ही रहे, और कुछ शताब्दियों के लिये तो इन्होंने हिंदुओं को सर्वशेषी गृहयुद्ध और श्रेणीयुद्ध से बँचा ही लिया।

इन संतों का उद्‌देश्य केवल हिंदूमात्र को ही एक करने का नहीं था। इन का दृष्टि कोण बहुत व्यापक था। क्या हिंदू क्या मुसलमान, मनुष्य-मात्र को ये एकता के समानसूत्र में लाने की चेष्टा कर रहे थे। दादू जी एक एक स्थान पर कहते हैं, "हिंदू अपने मंदिर को लेकर व्यस्त है और मुसलमान मस्जिद को लेकर। मैं एक अलख में लग रहा हूँ और वहीं है निरंतर प्रीति—

दादू हिंदू लागै देहरै, मुसलमान मसीति।
हम लागे एक अलख सों, सदा निरंतर प्रीति॥
न तहाँ हिंदू देहरा, न तहँ तुरक मसीत।
दादू आये आप है, नहीं तहाँ रह रीति॥

मधि को अंग, ५२,५३

अब इसी आशय पर कबीर की उक्ति देखिये—

हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ में कहै न जाइ॥
काबा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम॥
कबीर दुविधा दूरि करि, एक अंग है लागि।
यहु सीतल बहु तपति है, दोऊ कहिये आगि॥

मधि को अंग, ७, १०२

इसी सिलसिले में मतवाद, शास्त्र, तीर्थ, व्रत, पूजा, नमाज़ आदि की

व्यर्थता पर भी बहुत कुछ कहा है इन महात्माओं ने।

बाह्य उपचारों तथा मतवाद की व्यर्थता

धर्म के इन दिखावटी व्यवहारों को असल वस्तु के प्राप्त करने में इन्होंने एक बहुत बड़ी बाधा समझी। इन से होता यह है कि लोग यहीं तक रह जाते हैं और धर्म का वास्तविक उद्देश्य ही आँख से ओझल हो जाता है। इन का कहना है कि जो वास्तविक सत्य की खोज में है उस को विविध मतवादों के पीछे पड़ने से कोई लाभ न होगा। दादू जी कहते हैं—

मैं पंथि एक अपार के, मन और न भावै।
सोई पंथ पावै पीर का, जिसे आप लखावै॥
को पंथि हिंदू तुरुक के, को काहूँ राता।
को पंथि सूफ़ी सेवड़े, को संन्यासी माता॥
को पंथि जोगी जंगमा, को सकति पंथि धारै।
को पंथि कमडे कापड़ी, को बहुत मनावै॥
को पंथि काहू के चलै, मैं और न जानौं।
दादू जिन जग सिरजिया, ताही को मानौं॥

दादू, रामकली, १६८

शास्त्र

श्रुति, स्मृति, पुराण तथा शास्त्रों आदि के पचड़े में पड़ने के संबंध में दादू जी कहते हैं कि जिस ने मूलाधार का आश्रय लिया वह तो वास्तविक आनंद को प्राप्त हो गया पर जो वेद, पुराण आदि के पीछे पड़ा वह डाल, पत्तों में ही भटकता रह गया अर्थात् असल चीज़ उसे नहीं मिल सकी—

दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचे कोइ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़े, प्रेम बिना क्या होइ॥

साँच को अंग, १०

कबीर कागद काढ़िया, तब लेखै वार न पार।
जब लग साँस समीर में, तब लग राम सँभार॥४॥

कबीर, साँच को अंग

इसी प्रकार मूतिपूजा को व्यर्थ बताते हुए कबीर जी कहते हैं—

पाहन कूं क्या पूजिये, जे जनम न देई जाब।
आँधा नर आसा मुखी, यौंही खोवै आब ॥३॥
हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुरु की कृपा भई, डारया सिर थैं बोझ ॥४॥
जेती देखौं आतमा, तेता सालिगराम।
साधू प्रतिषि देव हैं, नहिं पाथर सूं काम ॥५॥

भ्रम विधौंसण को अंग

फिर मूर्ति पूजा के साथ ही इसी अंग में तीर्थों की कटु आलोचना करते हुए कबीर जी कहते हैं—

तीरथ तो सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ।
कबीर मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाइ ॥६॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछाणि ॥१०॥
कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवांवण जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सौं ल्यौ लाइ ॥११॥

इसी प्रकार तीर्थ, रोज़ा, नमाज़ तथा मिथ्याचारों की तीव्र आलोचना से भी संत साहित्य भरा पड़ा है। दो एक बानियां तीर्थादिक की व्यर्थता इन प्रसंगों पर भी उदाहरण के तौर पर यहाँ दी जा रही हैं। दादू जी कहते हैं—

कोई दौड़े द्वारिका, कोई कासी जाँहि।
कोई मथुरा को चले, साहिब घट ही माँहि ॥

कस्तूरिया मृग अंग, ८

जिस के लिये इधर उधर भटकते फिरते हो वह तो तुम्हारे अंदर ही है, फिर क्यों सब जगह कस्तूरी मृग की भाँति मारे मारे फिरना। इसी अंग में कबीर जी की बानी देखिये—

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढ़े वन माँहि।
ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि ॥ १ ॥

कस्तूरी उस मृग को कहते हैं जिस की नाभि में कस्तूरी होती है। उस की सुगंध से मतवाला होकर वह सब जगह उसे खोजता फिरता है पर उसे पता नहीं होता कि वह उसी के अंदर है।

इसी प्रकार पूजा, नमाज़ आदि की निस्सारता के संबंध में दादू जी कहते हैं—

परचा के अंग में :—

आप अलेख इलाही आगे, तहँ सिजदा करैं सलाम। २२६

साधक का ईश्वर उस के घट में ही विराजमान है, उस की सलाम बंदगी वहीं होना चाहिये।

हाथ में माला तस्बीह लेकर राम, रहीम जपने से क्या होता है ? जप तो ऐसा होना चाहिये कि सारा शरीर और मन ही तुम्हारी माला हो—

सब तन तसवी कहैं करीम, ऐसा करले जाप। २३०

दिन में प्रातःसायं की संध्या पूजा या पांचों वक्त की नमाज़ से काम नहीं चलने का। इबादत तो वह है जो अनवरत रूप से आठों पहर चलती रहे और अंतिम घड़ी तक यही हाल रहे—

आठो पहर इबादती, जीवन मरन निबाहि। २३२

कबीर जी का मंदिर नींव-रहित है और उन के देवता के कोई शरीर नहीं है—

नींव विहूणा देहुरा, देह विहूणा देव।
कबीर तहां विलंबियो, करे अलष की सेव॥ ४१॥

अंत में दादू जी ने स्पष्ट शब्दों में एक साथ ही मंदिर, मूर्तिपूजा आदि को 'झूठा' कर दिया—

झूठे देवा झूठी सेवा, झूठी करै पसारा।
झूठी पूजा झूठी पाती, झूठा पूजन हारा॥

राग रामकली, १६७

पाहन की पूजा करै करि आतम घाता।

राग रामकली, १६६

संतों ने 'धर्म' को बड़ी व्यापक दृष्टि से देखा था। यह हिंदू धर्म है, यह इस्लाम है, यह मसीह का धर्म है तथा ऐसी ही अन्य बातों से इन को चिढ़ थी। धर्म तो एक है। इसे जाति या संप्रदायविशेषों के अनुसार खंडशः नहीं किया जा सकता और जो खंडशः किया जा सकता है वह धर्म नहीं, तथाकथित धर्म के नाम पर लड़ने का बहाना मात्र है। जो 'धर्म' है वह सब के लिये धर्म है वर्ना वह धर्म नहीं है। हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई ये नहीं जानते थे। ये जानते थे केवल मनुष्य और मनुष्य मात्र का साधारण धर्म, दूसरे शब्दों में जिस को 'विश्व धर्म, या 'कास्मापालिटन रेलिजन' कहते हैं इस के वास्तविक सिद्धांत का बीजारोपण सब से पहले इन्हीं महात्माओं ने किया था। दादू जी कहते हैं—

धार्मिक ऐक्य पर ज़ोर

हिंदू तुरुक न जानौं दोई।
साईं सबनि का साईं है रे, और न दूजा देखौं कोई॥

राग भैरों, ३६६

हिंदू तुरुक न होइब, साहिब से ती काम।
षट्दर्शन के संग न जाइब, निर्पख कहिबा राम॥

मधि को अंग, ४

सब हम देख्या सोधि करि दूजा नाहीं आन।
सब घट एकै आतमा, क्या हिंदू मुसलमान॥

दया निर्बैरता अंग, ५

अल्लह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिंदू तुरक भेद कुछ नाहीं देखौं दर्शन तोरा

राग तोड़ी, ६५

संतों के धार्मिक विचारों की आलोचना करते समय यह प्रश्न उठ सकता है कि 'अवतारवाद' के संबंध में इन का क्या मत था। यह तो सहज ही अनुमेय है कि जो साकार उपासना को व्यर्थ समझता है, मंदिर-मस्जिद जिस के

अवतार

लिये ढोंग है वह ईश्वर के अवतार में भी आस्था न कर सकेगा। ईश्वर तो अनादि, अनंत है फिर उस का जन्म, मरण या पुनर्जन्म या अवतार कैसा? अवतार रूप में ईश्वर कल्पना करना इन के अनुसार संकीर्णता थी। दादू जी कहते हैं—पीव पिछाण अंग में—

मरै न जीवै जगत गुरु, सब उपजि खपै उस मांहि ...
पूरण निहचल एकरस, जगति न नाचै आइ ॥

इसी संबंध में कबीर जी कहते हैं—

जाके मुह माया नहीं, नहीं रूपक रूप।
पुहुप बास थैं पतला, ऐसा तत अनूप ॥

मुख्य धर्म सेवा

तो फिर संतों क अनुसार वास्तविक धर्म है क्या? पूजा, जप, तप, मंदिर, मस्जिद, काशी, काबा, मूर्ति, अवतार, रोज़ा, नमाज़ यह सभी तो 'झूठा' है। फिर सच्चा क्या है?

सत्य क्या है

ये कहते हैं सत्य की खोज कैसी? वह तो स्वयं प्रकाशमान है, हाँ जो उसे देखने की सचमुच परवाह करता हो। सत्य तो इतना स्पष्ट है कि इस का छिपाया जाना या इस का न दिखाई पड़ना ही असंभव है। अपने चारों ओर जो कुछ हम देखते हैं वह सभी तो सत्य है। वेदांतियों की भाँति इन संतों की फ़िलासफ़ी में 'यह सब 'मिथ्या' अथवा 'स्वप्न' नहीं है। 'जगत्' को मिथ्या नहीं माना इन्हों ने। यदि 'ब्रह्म सत्य है तो जगत् मिथ्या कैसे?' जगत् भी तो ब्रह्म का ही एक प्रदर्शन विशेष है। जगत् को 'मिथ्या', 'माया', 'भ्रम', या 'स्वप्न' मानते हुए हम ब्रह्म को कैसे सत्य कहते हैं! हमारे सामने सब से पहले जगत् ही आता है और उसी को यदि मिथ्या मान लिया जाय तब तो सब ही कुछ मिथ्या हो जायगा। जो हो, यह बड़ा जटिल प्रश्न है और अनादि काल से तत्वचिंतकगण इस पर विचार-विवाद करते आ रहे हैं, और शायद महाप्रलय तक करते रहेंगे। पर निश्चित रूप से कोई बात कम से कम अभी तक तो तय नहीं पाई, आगे की परमात्मा जाने। यहां पर हमारा काम था इस प्रश्न पर संतकवियों के सिद्धांत का प्रतिपादन कर देना, सो हम ऊपर कर चुके।

दादू जी कहते हैं-'सुमिरन' अंग में-कि रसातल के अंत से लेकर आकाश के ध्रुवतारा तक जो कुछ हम देखते हैं सभी सत्य है। मन के जिस अंतस्तल में तुम ख़ुशी को छिपा कर रखते हो वहां तुम सत्य को थोड़े ही छिपा कर रख सकते हो। चाहे तुम कोटि जतन करो पर उस सत्य को नहीं छिपा सकते—

भावै तहाँ छिपाइये, सांच न छाना होइ।
सेस रसातल गगन धू परगट कहिये सोइ ॥११०॥
अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन।
दादू छाना क्यों रहै, जिस घट राम रतन ॥११५॥

हिंसा का त्याग

इस लिए मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है प्राणीमात्र की यथाशक्ति सेवा और सब प्रकार के हिंसा-द्वेष का त्याग। प्राणीमात्र पर सदय तो रहना ही चाहिये, पर इन संतों के अनुसार पेड़ पल्लव में भी जान होती है और 'साहिब' का वास चराचर सब के अंदर है अतः किसी को दुख न देना चाहिये—

दादू सूखा सहजै कीजिये, नीला भानै नाहिं।
काहे कौं दुख दीजिये, साहिब है सब माहिं ॥
दया निर्वैरता, २२

कर्म का उपदेश

हम प्रायः देखते हैं कि संत मलूकदास की एक वाणी को लेकर कुछ लोग प्रायः समूचे संतसाहित्य का मख़ौल उड़ाया करते हैं। वह वाणी यों है—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम ॥

इस में स्पष्ट रूप से सारे सांसारिक कर्मों से विरत होकर 'राम आसरे' अपने को छोड़ देने का उपदेश है। पर इसे हम एक अपवाद मात्र कह सकते हैं और एक अपवाद से सिद्धांत की पुष्टि ही होती है। यद्यपि इस दोहे का वास्तविक अर्थ कुछ विद्वानों के अनुसार यह नहीं है कि निश्चेष्ट होकर बराबर पड़े ही रहना और कुछ करना ही नहीं। इस का मर्म केवल यही है कि जो पूर्ण रूप से अपने को ईश्वर

के समर्पित कर देता है उस को रोटी की चिंता से विचलित न होना चाहिये, जीविका के लिये भटकते न रहना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं कि जिसके पास जो जीविका हो उस को भी छोड़ कर बैठ जाना और राम राम जपने लगना चाहिये। पर यह यदि न मानें तो भी क्या इस दोहे के कारण कबीर, दादू आदि सभी को इसी मत का पोषक मानना पड़ेगा ?

तथ्य तो यह है कि गीता के 'कर्म' की फ़िलासफ़ी और कर्मयोग का पूरा उपदेश हम संतों की वाणियों में पाते हैं। हम पहले उदाहरण दिखला चुके हैं कि मनुष्य के लौकिक धर्म पर कितना ज़ोर दिया है इन महात्माओं ने। गीता के प्रसिद्ध श्लोक—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" का अक्षरशः पालन ये करते थे, और इसी का उपदेश देते थे। फलकामना की व्यर्थता के संबंध में 'निहकरमी-पतिव्रता' के अंग में दादू जी साफ़ कहते हैं—

फल कारन सेवा करइ, जाँचइ त्रिभुवन राव।
दादू सो सेवक नहीं, खेलइ अपना दाव॥
तन मन सब लागा रहइ, दाता सिरजन हार।
दादू कुछ माँगइ नहीं, ते विरला संसार॥

फिर 'कर्म' की महत्ता के संबंध में कहते हैं—

करम करम काटइ नहीं, करमइ करम न जाय॥
करम करम छूटइ नहीं, करमइ करम बँधाइ॥

कर्म से छुटकारा नहीं है। योग, जप, तप, चाहे जो करो, सांसारिक कर्म से बरी कभी नहीं हो सकते।

संतकाव्य की भाषा और वाणी-विभाग

संत काव्य की विचारधारा के संबंध में समष्टि रूप से कुछ थोड़ी सी गवेषणा ऊपर की पंक्तियों में की गई। यह केवल इतनी ही है जिससे साधारण पाठक को संतसाहित्य की रूपरेखा से कुछ सामान्य परिचय हो जाय और उद्देश्य यह है कि वास्तविक संतसाहित्य के अध्ययन और मनन का शौक़ पैदा हो, बस।

अब यहां पर संतसाहित्य में कविता का कौन सा 'फ़ार्म' या वाह्य-प्रकार काम में लाया गया है, यह भी संकेत कर देना अनुचित न होगा। 'फ़ार्म' के अंदर मुख्य दो बातें हैं—भाषा और छंद।

भाषा के संबध में हम पहले संकेत कर चुके हैं कि इन्होंने भाषा या कविता के वाह्य को तो बिलकुल ही व्यर्थ की बात समझी। इस ओर इन का ध्यान ही न था और न ये अधिकांश में पढ़े लिखे ही थे। ये थे पहुँचे हुए विचारक और साधक। ये सीधी बात सीधे तरीक़े से कहने के क़ायल थे। और वसूलन ये कथित, या सर्वसाधारण के रोज़-मर्रा की बोलचाल की भाषा में ही अपना संदेश रखने के पक्षपाती थे। पर प्रांतीयता के प्रभाव से ये नहीं बच सके। जो संत जिस प्रांत के रहने वाले थे वहाँ का रंग उन की भाषा पर ख़ूब ही चढ़ा। उदाहरण के लिये नानक की वाणियों में पंजाबीपने और कबीर में बनारसीपने की भरमार की ओर इशारा कर देना काफ़ी होगा।

अब छंद के बारे में। केशव आदि पिंगल़-पारदर्शियों की भाँति छंद की जादूगरी से इन भोले संत लोगों का क्या वास्ता? इन के यहां तो बस एक दोहा है, और या तो फिर रागों में कहे हुए पद। पर विशेष भाग दोहा ही है, संत-साहित्य-समुद्र को पार करने के लिये पोत के समान। इन के पदों में सूर और मीरा आदि के पदों का इतना संगीत तो नहीं है पर कुछ है अवश्य। सूर और मीरा का जीवन ही संगीत-मय था, पर यही बात हम कबीर और दादू के बारे में नहीं कह सकते। कुछ पद कबीर के भी गाने लायक़ बन पड़े हैं पर चिमटा खंजड़ी वाले साधू गवैयों ने उन्हें ज़्यादा अपनाया बनिस्बत मार्गीय संगीतज्ञों के। इन के लिये तो सूर और मीरा के पद ही सब कुछ हैं। इस का कारण यही है कि संत कवि ज्ञान और साधना के ज़्यादा क़ायल थे और ये प्रेम और साकार भक्ति के। फलतः इन के पद साधारण व्यक्ति को ज़्यादा मधुर जँचेगे ही।

पर संत-साहित्य के वाह्य में सब से मार्के की चीज़ है इन का वाणी-विभाग, उपयुक्त शीर्षकों द्वारा। दूसरे शब्दों में इसे हम वाणी का

'अंगन्यास' कह सकते हैं। प्रत्येक संत की साखियाँ और 'शब्द' कुछ अंगों में विभाजित हैं और ये अधिकांश संतों में साधारण हैं, जैसे 'गुरु को अंग' 'सुमिरन को अंग' इत्यादि। ये अंग संख्या में लगभग चालीस के हैं :—

१—गुरु	को	अंग
२—सुमिरन	,,	,,
३—विरह	,,	,,
४—परचा	,,	,,
५—ज़रणा	,,	,,
६—हैरान	,,	,,
७—चेतावनी	,,	,,
८—निहकरमी पतिव्रता	,,	,,
९—लय	,,	,,
१०—माया	,,	,,
११—सूछम जनम	,,	,,
१२—मन	,,	,,
१३—साँच	,,	,,
१४—साधु	,,	,,
१५—भेख	,,	,,
१६—सत्य	,,	,,
१७—मध्य	,,	,,
१८—पीव पिछाण	,,	,,
१९—विचार	,,	,,
२०—विस्वास	,,	,,
२१—सारग्रही	,,	,,
२२—समरथ	,,	,,
२३—जीवितमृतक	,,	,,
२४—उपज	,,	,,

२५ – दयानिर्वैरता	को	अंग	
२६—सूरमा	,,	,,	
२७—बेली	,,	,,	
२८—कस्तूरिया मृग	,,	,,	
२९—उपज	,,	,,	
३०—परख	,,	,,	
३१—सजीवन	,,	,,	
३२—काल	,,	,,	
३३—सूरातन	,,	,,	
३४—सबद	,,	,,	
३५—बिनती	,,	,,	
३६—निंदा	,,	,,	
३७—निरगुन	,,	,,	
३८—सुंदरी	,,	,,	
३९—अबिहड़	,,	,,	
४०—सम्रथाई	,,	,,	इत्यादि

यों तो इन शीर्षकों का प्रयोग अधिकतर इन के साधारण अर्थों में ही हुआ है। पर कहीं कहीं कुछ विचित्रता भी है, सो उस का मर्म वास्तविक अध्ययन और मनन से ही समझ में आ सकता है। इन के ऊपर सम्यक् विचार करने के लिये एक पृथक ग्रंथ अपेक्षित है। खेद है कि किसी आलोचक ने अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया।

अब रह गया अगले पृष्ठों में दिए संग्रह के बारे में। हिंदी का संतकाव्य एक अगम समुद्र की भाँति है और इस में से अनमोल रत्नों को खोज लेना आसान काम नहीं है। बीस हज़ार छंद से नीचे तो किसी संत की रचना कही ही नहीं जाती। बहुतों की लाख सवालाख के ऊपर संख्या भक्तों ने कही है, और ये संत स्वयं भी बहुत से हैं। इस छोटे से संग्रह में कबीर, दादू, नानक आदि कुछ प्रसिद्ध संतों की रचना का ही समावेश हो सका है।

अंत में पाठ के संबंध में हमें केवल यही कहना है कि इस संबंध में हम निरुपाय हैं। संत-साहित्य के जो प्रकाशित ग्रंथ बाज़ार में लभ्य हैं उन्हीं पर हमें भरोसा करना पड़ा है। कबीर का तो एक संपादित विश्वसनीय संस्करण नागरीप्रचारिणि सभा से निकल चुका है। इसी प्रकार कुछ और सुसंपादित संतों की रचनाएं भी लभ्य हैं, पर अधिकांश में हमें वेलवेडियर प्रेस की 'संतबानी संग्रह' नाम की सीरीज़ पर ही निर्भर करना पड़ा है। इन पाठों में बड़ी गड़बड़ी है। इस का मुख्य कारण यही है कि अधिकांश संत कवि स्वयं अपनी रचना लिपिबद्ध नहीं कर गये हैं। इन के भक्तों ने इन्हें याद किया, और फिर लिखा, और बहुधा अपनी ओर से यथेष्ट संशोधन और परिमाजन कर के। भक्तों में भी दो क़िस्म के लोग थे। एक 'मगजिया,' और दूसरे 'कगदिया'। बहुत से भक्त भी ऐसे थे जो अपने गुरु देवों की भाँति लिखना पढ़ना नहीं जानते थे और वेदों की भाँति पुश्तहापुश्त बानियों को कंठस्थ रखते चले आ रहे थे और अपनी रचनाएं भी अपने गुरु का नाम देकर जोड़ते चले जा रहे थे! इस प्रकार गुरु की वास्तविक रचना के आकार और प्रकार दोनों ही में असाधारण वृद्धि और परिवर्तन होना अनिवार्य था। और हुआ भी ऐसा ही। ये कंठस्थ रखने वाले भक्त ही 'मगजिया' कहलाते थे। ये अब भी मिलते हैं ख़ास कर जयपुर और बनारस में। बानियों को तुरंत लिख डालने वाले भक्त 'कगजिया' कहलाते थे। इन के संस्करणों में मौलिक पाठ में रद्दोबदल कम ही हुआ, पर किस कवि की रचना हम को मगजियों से मिली है और किस की कगदियों से,' यह निर्णय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है।

विजया दशमी
सन् १९३८

गणेशप्रसाद द्विवेदी

कबीर

संस्कृत और हिंदी दोनों ही इस लिये प्रसिद्ध हैं कि इनके शायद ही किसी प्राचीन या मध्यकालीन कवि की जन्म या मरण तिथि निर्विवाद रूप से ज्ञात हो, और खेद से कहना पड़ता है कि कबीर भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। भिन्न-भिन्न अन्वेषकों ने भिन्न-भिन्न रूप से कबीर-संबंधी तिथियाँ स्थिर की हैं पर प्रश्न अभी ज्यों का त्यों है। सब के मतों का मिलान करने पर हम केवल इतना ही निश्चयपूर्वक समझ सकते हैं कि इनका आविर्भाव और रचनाकाल चौदहवीं से लेकर पंद्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी के बीच में रहा होगा। यहाँ संक्षेप से इनके तिथिसंबंधी विभिन्न मतों पर एक दृष्टि डालने से यह कथन स्पष्ट हो जायगा।

कबीर का समय

कुछ कबीरपंथियों के अनुसार कबीर ३०० वर्ष जीवित रहे। इनके अनुसार उनका जन्म सं० १२०५ और मृत्यु सं० १५०५ में हुई। परंतु इस कथन पर तो हम अधिक ध्यान दिए बिना ही कबीर को परमात्मा समझने वाले उनके अनुयायियों की कोरी कल्पना मात्र कह कर एक किनारे रख सकते हैं। डा० हंटर ने इनका जन्म सं० १४३७ में और विल्सन साहब ने इनकी मृत्यु सं० १५७५ में मानी है। रेवरेंड वेस्टकाट इनका जन्म सं० १४९७ और मृत्यु सं० १५७५ में स्थिर करते हैं। इन तिथियों के अतिरिक्त कबीर के जन्म के संबंध में नीचे दिया हुआ एक पद्य बहुत प्रसिद्ध है जो कि इनके प्रधान शिष्य और इनकी गद्दी के प्रथम उत्तराधिकारी धर्मदास का रचा हुआ कहा जाता है—

चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए॥

घन गरजे दामिनि दमके बूँदें बरषें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए॥[1]

इसके अनुसार कबीर का जन्म सं० १४५५ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के सोमवार को मानना चाहिए, परंतु अन्वेषकों की गणना से ज्ञात हुआ है कि सं० १४५५ के ज्येष्ठ की पूर्णिमा सोमवार को नहीं पड़ती। परंतु सं० १४५६ के ज्येष्ठ की पूर्णिमा सोमवार को पड़ती है, और उक्त पद्य की "चौदह सौ पचपन साल गए" वाली पंक्ति के आशय पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रचयिता का तात्पर्य सं० १४५५ वाले साल के बीत जाने के बाद आने वाले नए साल अर्थात् सं० १४५६ से ही रहा होगा, अन्यथा उक्त पंक्ति में आए हुए "गए" शब्द का कोई अर्थ नहीं हो सकता।

इसी प्रकार इनके स्वर्गवास की तिथि के संबंध में भी निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुत प्रचलित हैं—

(१) संवत् पंद्रह सौ औ पाँच मौं, मगहर कियो गमन।
अगहन सुदी एकादसी, मिले पवन में पवन॥
(२) संवत् पंद्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादसी, रलो पवन में पवन॥

इन में से प्रथम के अनुसार कबीर की मृत्यु सं० १५०५ में और दूसरे के अनुसार सं० १५७५ में सिद्ध होती है, पर बार न दिए होने के कारण गणना से दोनों तिथियों की जाँच करना असंभव है और फिर दोनों में अंतर भी ७० वर्ष का है। परंतु अब तक के प्राप्त प्रमाणों से ऐसा जान पड़ता है कि कबीर साहब सं० १५७५ तक जीवित रहे होंगे। कम से कम इतना तो हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि सं० १५०५ के बहुत दिनों बाद तक कबीर अवश्य जीवित रहे होंगे। इस धारणा का सब से मुख्य कारण यह है—यह बात लोकप्रसिद्ध है कि कबीर बादशाह सिकंदर लोदी के समकालीन थे और उसी के अत्याचार से

---

[1] कबीर कसौटी—ले० श्री बाबू लैहनासिंह (श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई) पृ० ७

तंग आकर उन्हें काशी छोड़कर मगहर चला जाना पड़ा था। परंतु सिकंदर लोदी का राजत्वकाल सं० १५७४ से १५८३ ई० (१५१७-२६) तक था। ऐसी अवस्था में कबीर की मृत्यु सं० १५०५ में मानना असंभव है, और साथ ही सं० १५७५ तक कबीर का जीवित रहना मानना भी असंगत नहीं जान पड़ता। फिर रेवरेंड वेस्टकाट का कहना है कि गुरु नानक जब २७ वर्ष के थे तब उनकी कबीर से मुलाक़ात हुई थी, और नानक की कविताओं पर कबीर की इतनी गहरी और स्पष्ट छाप देखते हुए इस कथन पर विश्वास करने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती। नानक का जन्म सं० १५२६ में हुआ था। सो इस प्रकार भी कबीर का कम से कम सं० १५५३ तक जीवित रहना तो निश्चय ही समझना चाहिए। 'भक्ति सुधाबिंदु स्वाद' के लेखक सीतारामशरण भगवान-प्रसाद ने कबीर का जन्म सं० १४५१ और मृत्यु सं० १५५२ में मानी है।[१] परन्तु इनके अनुसार कबीर की मृत्यु नानक से भेंट होने के एक साल पहले ही सिद्ध होती है। इनके मृत्यु संबंधी सब प्रमाणों की परीक्षा करने पर सं० १५७५ को ही इनकी निधनतिथि मानना ठीक जान पड़ता है। इसी तिथि के संबंध में ऊपर जो दोहा उद्धृत किया गया है उसकी पुष्टि 'कबीर कसौटी' से भी होती है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि 'माघ सुदी एकादशी, दिन बुधवार, सं० १५७५ को काशी को तजकर मगहर को चले।'[२] वेस्टकाट साहब भी इसी मरण तिथि को ठीक समझते हैं।[३] डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा अंडरहिल साहब भी इसी को प्रामाणिक तिथि समझते हैं।[४]

अंत में अब तक मिले हुए सब प्रमाणों की परीक्षा करने पर कबीर का जन्म सं० १४५६ और मृत्यु सं० १५७५ के लगभग मानना ही

---

१ 'भक्ति सुधाबिंदु स्वाद' (हितचिंतक प्रेस, बनारस) पृ० ७१४, ८४०

२ 'कबीर कसौटी' पृ० ५४

३ 'कबीर ऐंड दि कबीर पंथ'—रेवरेंड वेस्टकाट (क्राइस्ट चर्च मिशन प्रेस)

४ 'वन हंड्रेड पोएम्स आफ़ कबीर' (मैकमिलन कंपनी) भूमिका, पृ० १०६

युक्तिसंगत सिद्ध होता है। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि इन तिथियों में से कोई भी निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं है, पर इतना कहने में हम को कोई आपत्ति नहीं है कि कबीर की जीवन मरण संबंधी निकटतम तिथियाँ यही जान पड़ती हैं। पर इन तिथियों पर विश्वास करने में एक कठिनाई यह पड़ती है कि इनके अनुसार कबीर की आयु प्राय: १२० साल की ठहरती है और साधारणतया इतना दीर्घजीवी कोई विरला ही हुआ करता है। इसका समाधान लोग इस प्रकार करते हैं कि कबीर की जीवनयात्रा के नियम तथा उनकी रहन सहन के ढंग कुछ ऐसे थे कि उनका इतनी बड़ी आयु पाना कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। इस समय भी सरल जीवन बिताने वाले ऐसे बहुत से लोग मिलते हैं जिनकी आयु सवा सौ वर्ष से भी ऊपर हो चुकी है। फिर यह बात लोकप्रसिद्ध है कि कबीर एक पहुँचे हुए फ़क़ीर और योगी थे। हठ और राजयोग के प्रभाव से जरा और व्याधि के ऊपर विजय प्राप्त कर सकना अब एक वैज्ञानिक सत्य माना जाता है। पुराकाल के ऋषि मुनि तो योगाभ्यास के बल से मृत्यु को भी वश में रखते थे, और ऐसी अवस्था में कबीर का साधु और संयत जीवन बिताने के परिणाम स्वरूप १२० वर्ष जीना कोई अनहोनी बात न मानी जानी चाहिए।

कबीर का आविर्भाव

कबीर की जन्म-संबंधी कई कथाएं और किंवदंतियाँ प्रचलित हैं पर सब का उल्लेख यहां असंभव है। यद्यपि यह सभी कथाएँ रोचक हैं पर इन में से किस को हम प्रमाण मान सकते हैं यह निश्चय करना बहुत कठिन है।[१] इनमें से एक का, जो सब से अधिक प्रचलित है और जिस का प्रायः सभी जगह उल्लेख पाया जाता है, वर्णन किया जाता है—काशी में स्वामी रामानंद के शिष्य एक ब्राह्मण रहते थे। वे एक बार अपनी विधवा कन्या को लेकर स्वामी जी के पास दर्शनार्थ गए और प्रणाम

[१] बनारस गज़टियर के अनुसार कबीर का जन्म आज़मगढ़ ज़िले के बैलहटा नाम के गाँव में सं० १४५५ में (ई० १३९८) और मृत्यु सं० १५७५ में हुई थी। रेवरेंड वेस्टकाट साहब इस मृत्यु तिथि को ठीक समझते हैं।

करने पर उन्होंने उस लड़की को आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुझे एक बड़ा प्रतापी पुत्र होगा। परंतु उसके पिता ने चौंककर स्वामी जी से लड़की का वैधव्य बताया पर यह सुनकर भी स्वामी जी ने थोड़ी देर तक ध्यानमग्न रहकर कुछ खेद प्रगट करते हुए कहा कि यह आशीर्वाद अन्यथा नहीं हो सकेगा। अंत में उसे एक लड़का हुआ और अपनी लज्जा छिपाने के लिये वह उस नवजात शिशु को लहर तारा नाम के एक तालाब में डाल आई। पर सुयोग से थोड़ी ही देर बाद नीरू नाम का एक जुलाहा नीमा नाम की अपनी स्त्री के साथ उधर आ निकला। ये दोनों बिचारे संतान सुख के बिना लालायित रहा करते थे और इस अवसर पर ऐसी अवस्था में सुंदर मुखश्रीयुक्त उस होनहार शिशु को देखकर वे उसे अपना पोष्य पुत्र बनाने का निश्चय कर बड़े प्रेम से उसे उठा ले गए और उसका लालन-पालन करने लगे। यहां पर यह कह देना उचित जान पड़ता है कि उस विधवा ब्राह्मण कन्या के पुत्र होने की बात कोई असंभव घटना नहीं है। ऐसी घटनाएं प्रायः हुआ करती हैं, पर इस संबंध में रामानंद के आशीर्वाद वाली कथा शायद उस लड़की की लज्जा रखने और कबीर की उत्पत्ति को एक निराला रूप देने के लिये ही जोड़ी गई है। ऐसी कथाएँ प्रायः महापुरुषों की उत्पत्ति के संबंध में जोड़ी हुई मिलती हैं। मुसलमान घराने में लालित पालित होते हुए भी कबीर का हिंदू विचारों के साथ इतनी स्वाभाविक सहानुभूति रखना बलात् यह धारणा प्रबल करता है कि हो न हो इनकी उत्पत्ति किसी हिंदू कुल में ही हुई होगी। यद्यपि इन की रचनाओं से इन के जुलाहा होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं, पर साथ ही ऐसे पद्य भी मिलते हैं जिन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्हें अपने जुलाहा होने और किसी ब्राह्मण के कुल में न उत्पन्न होने पर कभी कभी बड़ा दुख होता था। दो एक पद्य नीचे दिए जाते हैं—

जाति जुलाहा मति को धीर। हरषि हरषि गुन रमै कबीर॥

मेरे राम की अभैपद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।

तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा।

उक्त पद्य में यह अपने को स्पष्ट रूप से जुलाहा कहते हैं और साथ ही नीचे दिए हुए पद्य में वह इसी विषय पर खेद प्रगट करते हुए दिखाई पड़ते हैं—

पूरब जनम हम ब्राह्मन होते ओछे करम तप हीना।
राम देव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना॥

यह इस पद्य में पूर्व जन्म में अपने को ब्राह्मण होना तथा इसी जन्म में किए हुए नीच कर्मों के प्रभाव से स्रष्टा द्वारा जुलाहा के घर में उत्पन्न किए जाने की बात कहते हैं। उनका विश्वास था कि उस जन्म में हरि सेवा नहीं बन पड़ी और इसी पाप से उद्धार पाने के लिये ही शायद उन्होंने निरंतर ईश गुण गान में मग्न रह कर अपनी पूर्वजन्म की भूल सुधारने की चेष्टा की थी।

उक्त कथन से कबीर का जन्म काशी में सिद्ध होता है पर कुछ समालोचक ग्रंथ साहब में दिए हुए कबीर के एक पद के आधार पर इनका जन्मस्थान मगहर मानते हैं। उस पद की एक पंक्ति यों है— "पहिले दरसन मगहर पायो पुनि काशी बसे आई।" इस पंक्ति के आधार पर कबीर के उस विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से काशी में प्रगट होने की बात निराधार सिद्ध होती है, और शायद इसी के आधार पर कुछ विद्वान् इन्हें नीरू और नीमा का औरस पुत्र मानना ही ठीक समझते हैं। परन्तु ग्रंथ साहब वाले उक्त पद के कबीर की रचना होने में कुछ लोग संदेह करते हैं, और संदेह होने का उचित कारण भी है। ग्रंथ साहब एक ऐसा संग्रह ग्रंथ है जिस में अनेक संतों की बानियों का संकलन है। इस का वर्तमान रूप कबीर के मरने के सैकड़ों वर्ष बाद हुआ है। और संकलनकर्त्तागण, जैसा कि स्वाभाविक है, संतों की महिमा बढ़ाने के लिये जो कोई भी पद जिस के नाम से मिला, मिलाते चले गए हैं। तात्पर्य यह है कि इस में कबीर के बहुत से ऐसे पदों का होना जिन्हें उन्होंने स्वयं कभी नहीं बनाया और जिन्हें उनके अनुयायी ने किसी खास पक्ष को दृढ़ करने या और ही किसी मतलब से रचा होगा, असंभव नहीं है। और इसी कारण से हम ग्रंथ साहब की

उक्त पंक्ति को कोई विशेष महत्व देने में असमर्थ हैं, और सो भी ख़ास कर ऐसी अवस्था में जब कि 'बीजक' आदि कबीर के अधिक प्रमाणित ग्रंथों में उनके काशी में जन्म लेने और अंतकाल में मगहर जाने के पक्ष में कई उक्तियाँ मिलती हैं। ग्रंथ साहब की उक्त पंक्ति पर विचार करते हुए बाबू श्यामसुंदरदास कहते हैं कि 'कदाचित् उनका बालकपन मगहर में बीता हो और वे पीछे से आकर काशी में बसे हों, जहाँ से अंतकाल के कुछ पूर्व उन्हें पुनः मगहर जाना पड़ा हो।'[1] सभी बातों पर विचार करते हुए बाबू साहब भी इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि 'कबीर ब्राह्मणी या किसी हिंदू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमान परिवार में लालित पालित हुए थे।[2]

नामकरण

कबीर के नाम के संबंध में भी दो एक कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि तालाब में पाए हुए उस बच्चे के नामकरण के लिये नीरू और नीमा उसे क़ाज़ी के पास ले गए। .कुरानशरीफ़ खोलते ही पहले उसकी निगाह 'कबीर' शब्द पर पड़ी पर उसे एक जुलाहे के लड़के का नाम 'कबीर' रखते हुए कुछ हिचक मालूम हुई। यह देखकर उसने और कई क़ाज़ियों से .कुरानशरीफ़ खुलवाया पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ जबकि सभों ने वही पृष्ट खोले और सभों की निगाह पहले 'कबीर' वाले शब्द पर ही पड़ी। यह देख क़ाज़ी का माथा ठनका और उसने यह कहते हुए उस लड़के का नाम 'कबीर' रक्खा कि हो न हो यह लड़का कोई बड़ा प्रतापी मनुष्य होगा। अरबी में कबीर शब्द के अर्थ होते हैं 'सबसे महान्'। 'अकबर' शब्द की उत्पत्ति भी उसी धातु से है। 'कबीर' और 'अकबर' यह दोनों ही शब्द ईश्वर के विशेषण हैं।

---

[1] कबीरग्रंथावली—बाबू श्यामसुंदरदास, काशी नागरीप्रचारिणी-सभा पृ० २४

[2] वही, पृ० २४

गुरु

कबीर के जीवन का सुसंबद्ध कोई वृत्तांत नहीं मिलता। जो कुछ अब तक जाना जा सका है वह किंवदंतियों के आधार पर इनके जीवन से संबंध रखने वाली कुछ मुख्य घटनाएँ हैं। इनमें से कुछ इनके विवाह, इनकी संतान, गुरु, मृत्यु तथा इनके द्वारा किए गए माने जाने वाले कुछ अलौकिक कृत्यों से संबंध रखती हैं।

इस प्रकार की कुछ कथाओं की पुष्टि तत्कालीन इतिहास से भी होती है और इस लिए इनमें से कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन यहाँ आवश्यक है। इनके गुरु कौन थे, इस विषय को लेकर काफ़ी मतभेद चला आ रहा है। कुछ लोगों की धारणा है कि कबीर ने कभी किसी को अपना गुरु न बनाया होगा। उनके इस कथन का आधार यह है, जैसा कि कबीर की रचनाओं से भी स्पष्ट है, कि कबीर ने यदि अपने जीवन में कुछ किया तो वह 'गुरुडम' आदि बुद्धिस्वातंत्र्य तथा विचारस्वातंत्र्य आदि में बाधा डालने वाली पुरानी प्रथाओं का विरोध तथा अंधविश्वास पर कुठाराघात ही है। ऐसा मनुष्य किसी को अपना गुरु बनावे यह ज़रा कुछ अस्वाभाविक जान पड़ता है। यह तर्क बहुत ठीक है पर इसमें जिस प्रकार के 'गुरु' या 'गुरुडम' की ओर संकेत किया गया है उसके अतिरिक्त और प्रकार के भी गुरु हो सकते हैं। आधुनिक समय में भी संसार के बड़े से बड़े स्वतन्त्र विचार वाले भी किसी न किसी को अपना मानसिक गुरु या पथप्रदर्शक मानते हैं, पर इस का मतलब यह न होना चाहिये कि जिसको पथप्रदर्शक माना वह जो कुछ भी कहता हो या कह गया हो वही आँख मूँद कर किया जाय। प्रत्येक प्रकार के कार्यक्षेत्र में कुछ महापुरुष ऐसे हो गए हैं जिनके कार्यकलाप को मनन करने, उनके कथनों पर विचार करने या उनके स्मरण मात्र से हमें अपने कर्त्तव्यपालन में एक लोकोत्तर उत्तेजना तथा उत्साह सा मिल जाता है, कठिन समस्याओं के सुलझाने की तरकीब मालूम हो जाती है और हम आगे बढ़ चलते हैं। इसी को अंग्रेज़ी में 'इन्स्पिरेशन' पाना कहते हैं। पर यह 'गुरुडम' से बिलकल भिन्न

है। कबीर ने अपनी रचनाओं में जहाँ एक ओर अंधविश्वास और 'गुरु-डम' के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई है वहीं दूसरी ओर उन्होंने बिना गुरु के 'चेताए' ईश्वर का मिलना भी कठिन बताया है, दोनों ही प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं। 'सद्गुरु' की आवश्यकता, उसके 'लक्षण' तथा परम पद की प्राप्ति के संबंध में एक उपयुक्त गुरु की अनिवार्यता पर एक स्वर से सभी संत कवियों ने बड़ा ज़ोर दिया है। पर खेद है कि कबीर जिस अर्थ में एक सद्गुरु होने की आवश्यकता का अनुभव करते थे, उसका महत्व इनके अनुयायी क्रमशः भूलने लगे और आगे चल कर वह सचमुच 'गुरुडम' में ही परिणत हो गया। इस विषय पर आगे यथा-स्थान प्रकाश डाला जायगा। जो हो, सब बातों पर समष्टि रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर भक्त के आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए एक विशेष सीमा तक गुरु का होना आवश्यक समझते थे और उन्होंने अपना गुरु स्वयं स्वामी रामानंद को बनाया था। इसके संबंध में एक विचित्र कथा प्रचलित है। कहते हैं कि लड़कपन में ही कबीर को लोगों को उपदेश देते फिरने की लत पड़ गई थी। मगर उस समय उपदेश देने का अधिकारी वही समझा जाता था जिसने स्वयं किसी योग्य गुरु से दीक्षा ली हो, पर कबीर ने किसी को गुरु नहीं बनाया था और इस लिये इन्हें 'निगुरा' कह कर लोग इनका मखौल उड़ाया करते थे। स्वतंत्र विचार के पक्षपाती कबीर को जनता के सम्मुख अपने विचार प्रगट करने के लिए गुरु की छाप लगा कर अपने को पेटेंट बनाने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ था। आगे चल कर इन्होंने स्वामी रामानंद के गुणों और विचारों पर मुग्ध होकर अथवा उपदेश देने का अधिकारी बनने भर के लिये स्वामी जी को जैसे हो अपना गुरु बनाने का निश्चय कर लिया। इसके सिवा कबीर स्वभाव से ही हिंदुओं में प्रचलित प्रथाओं के प्रेमी थे। जुलाहे के घर में लालित पालित होते हुए भी रामनाम जपने और धार्मिक उपदेश देने का इनको व्यसन तो हो ही गया था, कभी कभी ये गले में जनेऊ भी डाल लिया करते थे। इससे कट्टर और सनातनी हिंदू, विशेष कर

हिंदुओं के धर्मयाजक पंडित और पुरोहित लोग इनसे बहुत चिढ़ गए और अनधिकारी कह कर इन्हें बहुत तंग करने लगे। स्वामी रामानंद को उस समय सभी बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। कबीर को निश्चय था कि यदि वे मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर लेंगे तो सभों की ज़बान बंद हो जायगी। पर साथ ही साथ यह सोच कर कि एक जुलाहे को भला वे कब दीक्षा देने लगे, उन्होंने एक विचित्र रीति से उन्हें अपना गुरु बनाया। स्वामी रामानंद नित्य प्रातःकाल चार बजे गंगास्नान करने जाते थे; कबीर को यह बात मालूम थी। एक दिन उनके आने के समय से कुछ पहले जिन सीढ़ियों से उतर कर वह गंगा जी तक पहुँचते थे उनमें से किसी एक पर ये चुप चाप लेट रहे। स्वामी रामानंद बेखटके सीढ़ियां तय करते जा रहे थे कि यकायक उनकी खड़ाऊँ कबीर के सर से टकराया और वह रोने लगे। स्वामी जी को यह देख कर बड़ा दुख हुआ और वह उस रोते हुए लड़के के सर पर हाथ फेरते हुए उससे 'राम' 'राम' कहने का उपदेश देने लगे। कबीर ने रोना बंद कर कहा, "गुरु जी, क्या मैं 'राम' 'राम' कह सकता हूँ ?" स्वामी जी ने कहा, "हाँ, 'राम' 'राम' कह।" कबीर ने उसी समय 'राम' 'राम' कहना आरंभ किया। दूसरे ही दिन उन्होंने अपने को रामानंद का शिष्य घोषित कर दिया। हिंदू लोग इस पर बहुत बिगड़े और अंत में अपना संदेह दूर करने के लिये रामानंद के पास यह पूछने पहुँचे कि क्या आपने सचमुच एक मुसलमान बालक को अपना शिष्य बनाया है ? पर उन्होंने तुरत इस बात को झूठ बताया। इस पर कबीर ने वहाँ पहुँच कर उस रात की सारी बातें उन्हें बताईं और पूछा कि क्या आपने 'राम' 'राम' कहने की अनुमति नहीं दी थी ?" स्वामी जी इस पर निरुत्तर हो गये और उसी क्षण से उन्होंने प्रगट रूप से कबीर को अपना शिष्य स्वीकार किया। एक किंवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि कबीर रामानंद के शिष्य के रूप में उनके साथ बहुत दिन तक रहे भी थे और उनके सब शिष्यों में अग्रगण्य थे। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने बहुत से चमत्कार भी रामानंद को दिखाए थे और उन्हें कभी कभी उपदेश भी

देते थे। एक अवसर पर रामानंद ने अपने स्वर्गीय गुरु का श्राद्ध करते समय अपने शिष्यों को दूध लाने के लिए भेजा। इनके और शिष्य तो दूध के लिये ग्वालों के पास गए पर कबीर वहाँ पहुँचे जहाँ मरी हुई गैयों की हड्डियाँ पड़ी रहती थीं। वहाँ उन्होंने उन हड्डियों को इकट्ठा कर उनसे दूध माँगा। जब उनके गुरु जी ने इस अनोखे काम की कैफ़ियत माँगी तो उन्होंने कहा कि मरे हुए गुरु के लिए मरी गैयों का दूध ही उपयुक्त होगा।

परंतु इतिहास की कसौटी पर कसी जाने पर रामानंद और कबीर संबंधी उपर्युक्त किंवदंतियां बहुत कुछ निराधार सी जँचने लगती हैं। कबीर का जन्म सं० १४५६ माना गया है; और इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि रामानंद की मृत्यु सं० १४५२ या ५३ में ही हो गई थी। अधिक से अधिक सं० १४६७ के बाद कोई भी स्वामी रामानंद का जीवित रहना नहीं मानेगा। यदि रामानंद वास्तव में सं० १४५२ में ही मर गए थे तब तो कबीर से उनका साक्षात्कार भी असंभव माना जायगा, पर यदि सं० १४६७ में उनकी मृत्यु मानी जाय तो यह कहना पड़ेगा कि उस समय उनकी (कबीर की) अवस्था अधिक से अधिक ११ वर्ष की रही होगी। इस बात को स्मरण रखते हुए भी कि बहुत कम उमर में ही कबीर को उपदेश देने की आदत पड़ गई थी और इसके लिये उन्हें गुरु की आवश्यकता का अनुभव हुआ था, यह विश्वास करना ज़रा कठिन जान पड़ता है कि नौ या दस बरस की उमर में ही कबीर इतने मार्के के उपदेशक हो गये थे कि बड़े बड़े पंडितों का ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हुए और फलतः किसी योग्य गुरु के अभाव में कबीर को जिन्होंने इस उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य के लिये अनधिकारी क़रार देना ज़रूरी समझा। इस शंका का समाधान एक ही तर्क द्वारा कुछ अंशों तक हो सकता है। कबीर के जीवनसंबंधी प्रायः सभी बातों में थोड़ी बहुत अलौकिकता है। विलक्षणप्रतिभासम्पन्न तो ये थे ही, और ऐसी अवस्था में हो सकता है कि आरंभ से ही रामानंद के वातावरण में रहने के कारण बचपन से

ही उपदेशक या सुधारक बनने की उच्चाशा से प्रेरित हो यह उपदेशक बनने के प्रयत्न में प्रवृत्त हो गए हों।

कुछ लोगों की धारणा है कि कबीर ने लोई नाम की एक स्त्री को पत्नी रूप से ग्रहण किया था। इस धारणा का आधार यह कथा है—एक बार कबीर देशाटन करते हुए किसी तपोवन में एक साधु की कुटिया के पास पहुँचे। वहाँ उनका स्वागत बीस वर्ष की एक युवती कन्या ने किया।

कबीर का गार्हस्थ्य जीवन

कबीर की उमर उस समय लगभग तीस बरस के थी। उस युवती ने इनसे उनका नाम पूछा तो उन्होंने अपना नाम 'कबीर' बताया। क्रमशः उसने इनकी जाति, वर्ण, वेश और संप्रदाय आदि के बारे में भी पूछा, पर सभों के उत्तर में उन्होंने सिर्फ़, 'कबीर' कहा। इस पर उस कन्या ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि मैंने बहुत से साधु संतों के दर्शन किए हैं पर किसी ने मुझे ऐसा उत्तर नहीं दिया। कबीर ने कहा ठीक है, अन्य साधुओं की जाँति पाँति और संप्रदाय आदि हुआ करते हैं पर मेरे यह सब कुछ नहीं हैं। इसी बीच में वहाँ छै अभ्यागत साधु आ पहुँचे। उस कन्या ने सत्कार के लिये सभों के सामने एक एक प्याला दूध रक्खा। और सब तो अपना अपना हिस्सा पी गए पर कबीर ने अपना प्याला एक ओर अलग रख दिया और पूछने पर बताया कि यह मैंने एक और साधु के लिये रख छोड़ा है जो कि यहाँ आ रहे हैं और गंगा उस पार तक पहुँच गये हैं। थोड़ी ही देर में यह बात ठीक उतरी और सचमुच वह साधु वहाँ आ पहुँचे। उस कन्या की उत्पत्ति के संबंध में यह कथा प्रचलित है—उसी कुटी में जिसमें कबीर और लोई की मुलाक़ात हुई थी, पहले एक साधु रहा करते थे। उन्होंने गंगा जी में स्नान करते समय एक दिन देखा कि बीच दरिया में ऊनी कपड़ों में लपेटी हुई कोई चीज़ किनारे की ओर बहती चली आ रही है। पास आने पर उन्होंने उसे उठा लिया और खोलने पर उन्हें उसमें एक सद्यः प्रसूता कन्या मिली। वे इसे ईश्वरीय दान समझ बड़े प्रेम से कुटी में ले जाकर दूध से उसका पालन-पोषण करने लगे।

क्रमशः वह कन्या बड़ी हुई और उन्होंने उसका नाम भी लोई इसीलिए रक्खा था कि वह कपड़ों में लपेटी हुई मिली थी। मरते समय वह लोई से कह गए थे कि किसी दिन उसे एक संत के दर्शन होंगे जो कि भविष्य में उसके पथप्रदर्शक होंगे। अंत में यह हुआ कि लोई उसी दिन कबीर की शिष्या हो गई और उनके साथ काशी चली गई। मुसलमानी किंवदंतियों में लोई कबीर की पत्नी मानी गई है, पर हिंदुओं में प्रचलित किंवदंतियों के आधार पर अधिक से अधिक यह कबीर की शिष्या मात्र सिद्ध होती है। बहुत से वृत्तांतों में तो इसका नामोल्लेख भी नहीं किया गया है। सिखों में लोई और कबीर के संबंध की कई कथाएँ प्रचलित हैं। मि० मेकालिफ़ द्वारा संगृहीत सिखों की किंवदंतियों में कहा जाता है कि काशी आकर लोई ने भी जुलाहे का काम सीखा और घर में नीरू और नीमा की सहायता करने लगी। कबीर को साधु और अभ्यागतों के सत्कार का व्यसन था। जो आ जाता था सब काम छोड़ उसी की सेवा में तत्पर हो जाते थे और सब के लिये भोजन आदि लोई को ही बनाना पड़ता था। वह प्रायः कार्यभार से अधीर भी हो जाया करती थी, यहां तक कि एक बार उसने एक अतिथि साधु के लिये भोजन बनाने से इनकार भी कर दिया था और इस पर कबीर ने उसे अच्छी डाँट भी बताई थी। अंत में लोई ने इस अवज्ञा के लिए माफ़ी माँगी और भविष्य में कभी ऐसी धृष्टता न करने की प्रतिज्ञा की।

कबीर की संतति

कहा जाता है कबीर के 'कमाल' नामक एक पुत्र और 'कमाली' नामक पुत्री थी। कुछ लोग इन्हें कबीर की औरस संतान मानते हैं और कुछ लोगों के अनुसार यह केवल पोष्य पुत्र और कन्या थे। अधिकतर प्रमाण इनके पोष्य संतान होने के पक्ष में ही मिलते हैं। उनकी उत्पत्ति के संबंध में भी विचित्र कथाएँ प्रचलित हैं। एक बार जब कबीर गंगा तट पर शेख़ तक़ी के साथ टहल रहे थे, किसी बच्चे की लाश पानी में बहती हुई दिखाई पड़ी। शेख़ तक़ी ने कबीर को उसे ज़िंदा कर देने को

ललकारा। कबीर ने उसे जिला दिया और घर ले जाकर उसे अपना पोष्य पुत्र बनाया। कबीर के प्रताप से जब वह बच्चा जी उठा था तो तक़ी साहब ने कबीर की आध्यात्मिक शक्ति की तारीफ़ करते हुए कहा था कि आपको 'कमाल' हासिल है। इसी बात पर उस लड़के का नाम 'कमाल' रख दिया गया था। कमाली की उत्पत्ति के संबंध में भी कुछ इसी ढंग की एक कथा प्रचलित है। कहते हैं कि यह एक पड़ोसी की कन्या थी जिसे मर जाने के बाद कबीर ने ज़िंदा किया था। कुछ किंवदंतियों के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि यह और कोई नहीं शेख़ तक़ी की ही मृत कन्या थी जिसे आठ दिन क़ब्र में रहने के बाद कबीर ने ज़िंदा किया था।

कमाल और कमाली के संबंध में कोई और परिचय नहीं मिलता। कमाल के बारे में कहा जाता है कि वह कबीर के सिद्धांतों का विरोधी था और उनके खंडन में कविताएँ लिखा करता था। एक किंवदंती में यह भी कहा गया है कि वह कबीर का पुत्र नहीं बल्कि उनके प्रधान शिष्यों में से एक था जो कि आगे दादू का गुरु हुआ जिन्होंने 'दादूपंथी' नाम से एक नया पंथ चलाया। कुछ दंतकथाओं में यह भी कहा जाता है कि कमाल का शेख़ तक़ी से विशेष संबंध था और उन्होंने ही झूँसी से दस मील दूर जलालपुर नामक शहर में अपनी गद्दी स्थापित करने का आदेश किया था। जो हो सभी किंवदंतियों में इस बात का कुछ परिचय मिलता है कि कबीर और कमाल में मतभेद अवश्य था। इसी विषय को लेकर निम्नलिखित दोहा बहुत प्रचलित है—

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छांड़ि के, घर ले आया माल॥

हिंदू घराने में अब भी बहुधा लोग अपने लड़कों की भर्त्सना करते समय यह दोहा प्रायः पढ़ा करते हैं।

कमाली के संबंध में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण कहानी प्रसिद्ध है। एक बार वह किसी कुएँ पर पानी भर रही थी कि एक प्यासा ब्राह्मण उधर से आ निकला और उसने इस से पानी माँगा और इसने पानी पिला भी दिया। पर पीने पर जब उसे मालूम हुआ कि उसने तुर्किन के हाथ

का पानी पिया तो वह बिल्कुल घबड़ा गया और कहने लगा कि तूने मुझे जातिच्युत कर दिया। वह मर्माहत होकर कबीर के पास पहुँचा और उनसे अपने जातिभ्रष्ट होने की करुण कहानी कहते हुए कोई उपाय सुझाने को कहा। इस पर कबीर ने यह कहा—

"पाँड़े बूझि पियहु तुम पानी।
जिहि मटिया के घर महं बैठे, ता महं सिष्टि समानी।
छपन कोटि-जादव जहं भींजे, मुनिजन सहस-अठासी।
पैग पैग पैगंबर गाडे, सो सभ सरि भौ मांटी।
तेहि मटिया के भांड़े पांड़े, बूझि पियहु तुम पानी।
मच्छ कच्छ घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नरक बहि आवे, पसु मानुष सभ सरिया।
हाड़ झरी झरि गूद गरीगरि, दूध कहां ते आया।
सो लै पांड़े जेवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया।
बेद कितेब छांड़ि देहु पांड़े, ई सभ मत के भरमा।
कहंहिं कबीर सुनहु हो पांड़े, ई सभ तुमरे करमा।[1]

इस पद्य के विचारों पर ध्यान देने पर आश्चर्य होता है। कबीर ने इसमें छुवाछूत के प्रश्न को कितनी सरल और साथ ही अकाट्य युक्ति से हल कर दिया है। वेद और क़ुरान दोनों को एक साथ ही इसमें केवल मन का भ्रम मात्र बतलाया गया है। एक पंद्रहवीं शताब्दी के कवि के लिये इतनी दूर की सूझ, अपने समय से इतना आगे सोचना अवश्य एक बहुत बड़ी बात है। जो हो, कहा जाता है कबीर की इस युक्ति को सुनकर उस ब्राह्मण के, जो कमाली के हाथ का पानी पीने से अपने को धर्मभ्रष्ट और जाति भ्रष्ट समझकर शोकसागर में निमग्न हो गया था, सारे संदेह मिट गए और वह कबीर के पैरों पर गिर पड़ा और अपना शिष्य स्वीकार करने की भिक्षा माँगने लगा।

---

[1] बीजक, शब्द ४७

कबीर का अधिकांश समय साधुओं के सत्संग, उनकी सेवा तथा ज्ञान की खोज में कभी कभी विभिन्न प्रदेशों में घूमने

कबीर का गृह जीवन

में ही व्यतीत होता था। साधुओं के अतिरिक्त यह यथाशक्ति मनुष्य मात्र की सेवा में तत्पर रहा करते थे। इन कामों के अतिरिक्त ये अपने घर के काम—कपड़ा बुनने और कातने के लिये भी समय निकाल लेते थे, पर हरि भजन और संत सेवा में ये इतने निमग्न रहा करते थे कि इनके घर के लोगों को अक्सर यह शिकायत रहा करती थी कि यह अपने काम में मन नहीं लगाते। इनकी माता नीमा प्रायः इनके अल्हड़पने पर इन्हें कोसा करती थी। इनकी स्त्री या शिष्या लोई भी कभी कभी इन के अत्यधिक साधुप्रेम से घबरा जाती थी जैसा कि पहले कहा जा चुका है। पर यह सब होते हुए भी ये अपना जुलाहे का काम सदा कुछ न कुछ कर ही लेते थे। कभी कभी इस विषय पर साधुओं से इनका वादाविवाद भी हो जाता था। एक बार एक साधु ने कहा तुम यह नीच कर्म छोड़ क्यों नहीं देते? इस का उन्होंने जो मुहतोड़ जवाब दिया था वह ध्यान देने योग्य है—

जोलहा बीनहु हो हरिनामा, जाके सुर नर मुनि धरैं ध्याना ॥
ताना तनै को अहुँठा लीन्हो, चरखी चारिहुँ वेदा ॥
सर खूंटी एक राम नराएन, पूरन प्रगटे कामा ॥
भवसागर एक कठवत कीन्हों, तामहँ माँड़ी साना ॥
माँड़ी के तन माँड़ि रहा है, मांड़ी बिरले नाना ॥
चाँद सूरज दुइ गोड़ा कीन्हौं, मांझ-दीप कियो मांझा ॥
त्रिभुवन नाथ जो माँजन लागे, स्याम मुररिया दीन्हा ॥
पाई करि जब भरना लीन्हो, वै बाँधे को रामा ॥
वै भरा तिहुँ लोकहिं बांधै, कोइ न रहत उबाना ॥
तीनि लोक एक करिगह कीन्हौ, दिगभग कीन्हों ताना ॥
आदि पुरुष बैठावन बैठे, कबिरा जोति समाना ॥[१]

---

१ बीजक, शब्द ६४

इस बात के बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि कबीर नीरू और नीमा के साथ रहते और जुलाहे का काम किया करते थे पर वे अपना अधिकांश समय साधु-संतों के सत्संग में ही बिताते थे। इनके साधु मित्रों में से बहुतों ने इनसे यह पेशा छोड़ने का आग्रह किया पर उन्होंने हमेशा इस बात पर ज़ोर दिया कि अपना सांसारिक सब काम छोड़ कर केवल राम नाम रटना ही मनुष्य का एक मात्र कर्त्तव्य नहीं है। सचाई और ईमानदारी से अपना लौकिक कर्त्तव्य पालन करते हुए जीवन बिताना ही ईश्वर और सत्य को प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय है। ढोंगी और पाखंडी, या बने हुए साधुओं की यह बड़ी तीव्र आलोचना किया करते थे और सदा उन्हें अपने मुख्य कर्त्तव्य की याद दिलाया करते थे। पर उधर उनके घर के लोगों को, ख़ास कर इनकी माता नीमा को हमेशा यह शिकायत रहा करती थी कि यह अपने घर के काम में मन नहीं लगाते और अपना सब समय साधुओं की सेवा में ही लगा देते थे। इनकी स्त्री या शिष्या लोई भी प्रायः इनके अत्यधिक साधु सेवा से घबरा उठती थी। इनकी माता तो इतनी घबरा उठती थी कि वह अक्सर यह कहकर रोया करती थी कि इस कंठीधारी लड़के ने हमारा सब कारोबार ही चौपट कर दिया, यह मर क्यों नहीं गया, इत्यादि। पर जो हो इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि कबीर कपड़े बुनने और उन्हें बाजार में बेचने का काम करते थे। एक दफ़े की बात है कि कबीर अपना बनाया हुआ कोई कपड़ा बाज़ार में बेचने के लिये बैठे हुए थे। ये उसका दाम पाँच टका बता रहे थे पर कोई तीन टके से ज़्यादे देने पर तैयार नहीं होता था आख़ीरकार एक दलाल इनकी मदद करने को पहुँचा और उसने उस कपड़े का दाम जब बारह टके लगाया तो सात टके पर उसे ख़रीदने वाले गाहक मिल गए और आख़ीरकार उस दलाल ने सात टके पर वह कपड़ा बेंच भी दिया जिस में से दो तो उसने दलाली के तौर पर ख़ुद रख लिए और पाँच टके कबीर को दे दिए। जो हो इन दोरंगी कथाओं से सारांश यही निकलता है कि वह साधु-संतों के प्रेमी और सेवक तो स्वभाव से ही थे और हिंदुओं में प्रचलित

आचार-विचार को भी अधिकतर अपनाते थे, पर साथ ही इस के जुलाहे का काम भी कर्त्तव्य समझ कर किया करते थे जो कि उनकी नैसर्गिक प्रतिभा के योग्य नहीं था। शायद वह जनता के सम्मुख यह आदर्श उपस्थित करना चाहते हों कि हर हालत में मनुष्य को अपने पुश्तैनी पेशे से सहानुभूति रखना और यथाशक्ति उसे क़ायम रखना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए।

कबीर का देशाटन

किंवदंतियों के अनुसार कबीर ने देशाटन भी बहुत किया था। संत-समागम और हानि-लाभ के लिए ये बलख़ और बुख़ारा आदि दूरस्थित विदेशों में भी घूमे थे। इस के साथ ही इस बात के भी यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं कि इनके जीवन का अधिक भाग बनारस में ही बीता। बनारस के बाहर मगहर और प्रयाग के पास झूँसी नामक स्थान में ये प्रायः जाया करते थे। झूँसी और मगहर में इनके शिष्यों की गद्दियाँ अब तक चल रही हैं। इनकी यात्रा संबंधी अधिकतर किंवदंतियों में बहुत सी ऐसी क्रियाएँ वर्णित हैं जिनमें इनके कोई न कोई अमानुषिक कार्य करने की बात कही गई है। स्पष्टतः ऐसा इनके शिष्यों द्वारा इनका महत्त्व बढ़ाने के विचार से ही किया गया है। इस प्रकार की घटनाओं में ऐतिहासिक तत्त्व नहीं के बराबर है। कहा जाता है कि एक बार यह झूँसी के प्रसिद्ध फ़क़ीर शेख़ तक़ी के यहाँ गए थे और वहाँ किसी द्वेष भाव से शेख़ तक़ी ने उन्हें ऐसा खाना खिलाया जिससे इनको दस्त आने लगे, यहां तक कि छै महीने तक कबीर को दस्त आए। पुरानी झूँसी के नालों में से एक अभी तक कबीर का नाला कहलाता है। कुछ मुसलमान अनुयायी शेख़ तक़ी को ही कबीर का गुरु मानते हैं, पर यह धारणा अमूलक है। अधिकतर किंवदंतियों के आधार पर यही विश्वसनीय जान पडता है कि शेख़ तक़ी कबीर के पीर नहीं बल्कि ईर्ष्यावश उनके द्वेषी थे। कबीर के अनुयायियों और शिष्यों की संख्या इतनी बढ़ी कि तक़ी को जलन पैदा हो गई और वे सदा ऐसे अवसर की ताक में रहने लगे कि कबीर को नीचा दिखाया जा सके, पर साधारण मनुष्यों से लेकर तत्कालीन दिल्ली सम्राट् सिकंदर लोदी

के दरबार तक जब जब इन दोनों फ़क़ीरों का मुक़ाबला हुआ, तक़ी को ही नीचा देखना पड़ा। धार्मिक विषयों पर कबीर से तक़ी तथा बहुत से अन्य पीरों के साथ शास्त्रार्थ तथा वादविवाद भी प्रायः हो जाया करते थे। पर इस प्रकार के विचार के समय कबीर ग्रंथों और शास्त्रों की दुहाई न देकर विवेक, बुद्धि और कौशल से ही काम लिया करते थे और ऐसी युक्ति से प्रतिपक्षी को निरुत्तर कर देते थे कि उसे अपना सा मुँह लिए लौटते ही बनता था, और इसका प्रभाव दर्शकों और श्रोताओं पर भी बहुत गहरा पड़ता था। यहाँ उदाहरणार्थ एक किंवदंती उद्धृत करना असंगत न होगा। इनका बड़ा नाम सुन कर जहान् गश्त नामक एक प्रसिद्ध फ़क़ीर इनके आध्यात्मिक ज्ञान की परीक्षा करने के इरादे से मिलने आ रहे थे। कबीर ने उनके आने की ख़बर सुन उनके पहुँचने से कुछ पहले ही एक सुअर का बच्चा अपने दरवाजे पर बँधवा दिया था। जब उन्होंने दरवाज़े पर पहुँच कर वहाँ सुअर बँधा देखा तो अत्यंत घृणा और क्रोध के वशीभूत होकर वह कबीर से बिना मिले ही लौटने लगे। यह देख कर कबीर ने उन्हें बुलवाया और पास आने पर कहा—'मैंने नापाक को अपने दरवाजे पर बाँधा है पर तुमने नापाक को अपने हृदय से बाँधा है। क्रोध, अहंकार, लोभ आदि नापाक हैं। और यह सब तुम्हारे हृदय के अंदर हैं। जिसे तुम नापाक समझते हो वह नापाक नहीं है, पर क्रोध नापाक है।" इसका उस फ़क़ीर पर इतना असर हुआ कि वह अपना सारा ज्ञान भूल गया और उसकी आँख खुली और वहीं वह कबीर का शिष्य हो गया।

कबीर और नानक

कहा जाता है कि सिख संप्रदाय के निर्माता गुरु नानक का कबीर के साथ कुछ दिन तक सत्संग हुआ था। कुछ लोग इन्हें कबीर के प्रधान शिष्यों में से एक मानते हैं। इनके और कबीर के प्रथम साक्षात्कार के संबंध में भी एक ऐसी कथा प्रचलित है जिसका उद्देश्य शायद कबीर की अलौकिकता पर ज़ोर देना ही रहा होगा। कहा जाता है कि नानक जब कबीर के पास पहुँचे तो उन्हें दूध पीने की इच्छा हुई। उस समय कोई दुधार गाय न

थी। केवल एक पाँच बरस की बछिया बँधी थी। कबीर ने उसी को दुह कर नानक को दूध पिला कर और सभी उपस्थित संतों को चकित कर दिया।

इस प्रकार के अमानुषिक और अलौकिक कृत्यों से ज्यों ज्यों कबीर की ख्याति बढ़ने लगी त्यों त्यों दूर दूर से बहुत लोग इनके दर्शन करने आने लगे और इसका फल यह हुआ कि इनके हरि भजन में बहुत विघ्न पड़ने लगा। अब कबीर को किसी ऐसे उपाय की आवश्यकता पड़ी जिससे लोगों की श्रद्धा उन पर कम हो जाय। इस लिये वे अब अक्सर शाम को किसी वेश्या के गले में हाथ डाले मतवालों की तरह बनारस की सड़कों पर झूमते हुए नज़र आने लगे। इसका फल वही हुआ जो कबीर चाहते थे। लोगों में इनकी बदनामी फैल गई और फलतः दर्शनार्थ बहुत से लोगों का नित्य का जमघट कम हो गया।

धर्मदास

मध्य प्रांत में बांधवगढ़ के रहने वाले धर्मदास नाम के एक वैश्य (बनियाँ) कबीर के सर्वप्रधान शिष्य हुए, और उनके मरने के बाद यही इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी भी हुए थे। इनसे भी कबीर की पहली मुलाक़ात देश देशांतरों में घूमते समय ही हुई थी। कहा जाता है पहले वह मथुरा में कबीर से मिले थे। उस समय धर्मदास जी मूर्तिपूजा के बड़े क़ायल थे। न जाने कैसे कबीर का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट हुआ और मूर्तिपूजा में इनकी सच्ची तन्मयता देख कबीर ने सोचा कि इतना धुन का पक्का आदमी अगर धर्म और भक्ति के वास्तविक मर्म को समझ जाय तो इससे लोक का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। यह सोच कर उन्होंने धर्मदास के सामने भाँति भाँति की युक्तियों और दलीलों से पूर्तिपूजा का खंडन किया और यद्यपि घंटों बहस करने पर भी धमदास को संतोष न हुआ पर कबीर के व्यक्तित्व का इन पर अवश्य बड़ा प्रभाव पड़ा होगा क्योंकि आप किंवदंतियों के अनुसार कबीर के सिद्धांतों को सुनने समझने की चेष्टा करने के लिये बनारस गए। वहाँ फिर मूर्तिपूजा के संबंध में ही वाद विवाद छिड़ा और अंत में जिस मूर्ति को पूजने के

लिये धर्मदास सदा अपने पास रखते थे उसे कबीर ने उठा कर नदी में फेंक दिया।[1] पर इससे भी धर्मदास विचलित न हो कर कबीर के सिद्धांत को समझने की चेष्टा करते ही रहे। अंत में कहा जाता है कबीर स्वयं बांधवगढ़ इनके मकान पर पहुँचे और कुछ बातचीत के बाद उनसे कहा कि तुम उसी पत्थर की मूर्ति को पूजते हो जिसके तुम्हारे तौलने के बाट हैं। इसी एक बात का धर्मदास के हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि उनका सारा विचार बदल गया और वह कबीर के शिष्य हो गए।[2] कबीर की मृत्यु के बाद धर्मदास ने छत्तीसगढ़ में कबीर पंथ की शाखा चलाई और काशी की 'सुरत गोपाल' नाम की इस पंथ की प्रधान शाखा के उत्तराधिकारी भी हुए।

राजावीरसिंह

कबीर के शिष्यों के संबंध में प्रसिद्ध है कि इनके शिष्य अधिकतर निम्न श्रेणी के लोग ही होते थे। यह कथन बहुत कुछ सत्य भी है। इसका कारण यही है कि ब्राह्मण आदि उच्च श्रेणी के लोग तो इन्हें पाखंडी और अपने धर्म का द्रोही मानते थे। इन लोगों की सदा यही चेष्टा रहती थी कि कबीर को किसी तरह नीचा दिखाया जाय और जहाँ तक हो सके उनकी बदनामी फैलाई जाय, और इसके लिये वे कोई बात उठा नहीं रखते थे। पर कबीर का कुछ ऐसा सिक्का जम गया था कि इनकी सब चालें उल्टी पड़ती थीं और कबीर की कीर्ति दिन पर दिन फैलती ही जाती थी। अधिकतर निम्न श्रेणी के लोगों का कबीर पंथियों में शामिल होने का एक कारण यह भी था कि उच्चवर्ण के लोगों द्वारा यह बहुत

---

[1] एक किंवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि कबीर ने इनके सामने कुछ अलौकिक चमत्कार दिखलाए थे और इन्हीं कृत्यों का इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये कबीर के शिष्य हो गए।

[2] एक किंवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि एक बार इनकी धर्मदास की मुलाक़ात वृंदावन में हुई थी और वहीं पर इन्होंने इनके इष्टदेव की मूर्ति यमुना में डाल दी थी।

दलित और अपमानित होते थे। ब्राह्मण पुरोहितों और धर्मयाचकों के गुरुडम की छाया तले इन्हें अपने किसी भी प्रकार के उत्थान की आशा नहीं थी। कबीर के समदर्शी पंथ से इन्हें बहुत कुछ संतोष हुआ और ये बड़ी संख्या में इनके झंडे के नीचे आने लगे। यही कारण था जिससे ब्राह्मण लोग कबीर से इतने असंतुष्ट हो रहे थे। पर यह तो हुई निम्न श्रेणी के लोगों की बात। कबीर के व्यक्तित्व और उनके सिद्धांतों का बहुत से विद्वान् पंडितों, राजा महाराजों तथा नवाब रईसों आदि पर भी बड़ा प्रभाव था। स्वतंत्र विचार के सभी लोगों को इनके सिद्धांत और विचार युक्तिसंगत प्रतीत होते थे। ऐसे ही लोगों में जौनपुर के तत्कालीन राजा वीरसिंह भी थे। इनके और कबीर के साक्षात्कार के संबंध में भी एक कथा प्रचलित है। इन्होंने जौनपुर में एक बड़ा रम्य प्रासाद बनवाया था और एक फ़क़ीर को छोड़ जितने लोग इसे देखने आए सभों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की। उस फ़क़ीर से जब पूछा गया कि इसमें क्या कमी है तो उसने कहा कि इसमें दो त्रुटियाँ हैं, एक तो यह कि प्रासाद चिरस्थायी नहीं है, और दूसरे यह कि इसका निर्माता इसके भी पहले संसार से विदा हो जायगा। यह सुनकर राजा साहब पहले तो असंतुष्ट हुए पर जब उन्होंने जाना कि वह फ़क़ीर और कोई नहीं स्वयं महात्मा कबीर हैं, तो वह उनके पैरों पर गिर पड़े और उनको अपना गुरु मान लिया।

एक बार गुजरात के एक सोलंकी राजा ने अपनी रानी के साथ इनके पास जाकर पुत्र का आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। कबीर ने उस राजा को पुत्र का आशीर्वाद दिया भी और कहा कि उसका वंश बयालीस पीढ़ी तक राज्य करेगा। कहा जाता है कि कबीर ने स्वयं बांधवगढ़ में इस राजवंश को स्थापित किया और रीवाँ के वर्तमान महाराज उसी वंश के एक वंशधर हैं। यही बांधवगढ़ किसी समय उस प्रांत की राजधानी था जो कि अब रीवाँ राज्य कहलाता है और इसे सम्राट् अकबर ने ध्वंस किया था।

यह प्रसिद्ध है कि कबीर की मृत्यु मगहर में हुई थी। यहाँ का शासक नवाब बिजली खाँ भी कबीर का शिष्य था। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, कबीर के अंतिम संस्कार के संबंध में इनमें और राजा वीरसिंह में मुठभेड़ होते होते बच गई थी।

बिजली खाँ

कबीर संबंधी सभी किंवदंतियों में तत्कालीन भारतसम्राट् सिकंदर लोदी द्वारा उन पर किए गए अत्याचारों की विस्तृत कथा मिलती है। इन में से एक के अनुसार कबीर के द्रोही हिंदू और मुसलमान दोनों ही एक बार दिन दोपहर को जलती हुई मशालें लेकर बादशाह के दरबार में फ़रियाद लेकर पहुँचे। उनकी शिकायत यह थी कि कबीर मुसलमान होकर भी जनेऊ पहन और तिलक लगाकर 'राम' 'राम' कहता फिरता है और उसकी माया से सारे देश में अंधकार छा गया है, इत्यादि। शेख़ तक़ी ने जो कि बादशाह के पीर थे, इन उपालंभों का पूरा समर्थन किया। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, कबीर की दिन प्रति दिन बढ़ती हुई कीर्ति से यह बहुत जलते थे और हृदय से उनका अनिष्ट साधन करना चाहते थे। जो हो, यह सब सुनकर बादशाह ने कबीर को बुलवाया, पर वह दिन भर अपना काम कर शाम को वहाँ पहुँचे और पहुँच कर बादशाह को सलाम तक न किया। इस बेअदबी का कारण पूछे जाने पर कहा कि मैंने ईश्वर को छोड़ और के सामने सिर झुकाना नहीं सीखा है। फिर पूछा गया कि शाही हुक्म के तामील करने में इतनी देर क्यों हुई। इस पर उन्होंने कहा कि मैं एक तमाशा देखने में लगा हुआ था। जब पूछा गया कि वह तमाशा क्या था तो उन्होंने कहा कि मैंने एक ऐसा सूराख़ देखा जो कि है तो सुई से भी छोटा पर उसी में से मैंने हज़ारों ऊँट और हाथी निकलते हुए देखे। बादशाह ने कहा कि तुम इसका मतलब समझाओ नहीं तो मैं तुम्हें झूठा समझूँगा। कबीर ने शायद बादशाह को चकित करने के लिये एक उल्टबांसी कहा जिसका भावानुवाद नीचे दिया जाता है—

सिकंदर लोदी

एक नाव में पत्थर भर उसके साथ कबीर को लोहे की जंजीरों से जकड़ कर उन्हें दरिया में ठेल दिया। थोड़ी ही देर में उस नाव के साथ कबीर डूब गए जिससे उनके शत्रुओं को अपार हर्ष हुआ। पर क्षण भर बाद ही वह एक मृगछाले पर बैठे हुए नदी के स्रोत के विरुद्ध बहते हुए दिखाई पड़े। इस पर उनके शत्रुओं के आग्रह से बादशाह ने उन्हें पकड़ कर आग में झोंकवा दिया। सारी आग जल कर ठंढी भी हो गई पर कबीर का बाल तक बाँका नहीं हुआ। इस पर लोग बड़े चकराए और चिल्ला चिल्ला कर नास्तिक, जादूगर आदि शब्दों से उनकी भर्त्सना करने लगे। अंत में बादशाह को यह सलाह दी गई कि कबीर हाथी के पैरों तले कुचलवा दिए जायँ, और बादशाह ने इसका आयोजन भी किया। हाथ पाँव बाँध कर कबीर ज़मीन में डाल दिए गए और एक मतवाला हाथी उनके ऊपर छोड़ दिया गया, पर कबीर के पास आकर वह हाथी रुक जाता था और बहुत डरकर इधर उधर भागने लगता था। पूछने पर महावत ने कहा कि कबीर के सामने जाते ही एक भयानक सिंह हाथी का रास्ता रोक कर खड़ा हो जाता है जिसके डर से हाथी भाग खड़ा होता है। इस पर बादशाह ने झल्ला कर ख़ुद उस हाथी पर चढ़ उसे आगे बढ़ाया, मगर कबीर के पास जाते ही उन्होंने भी उस भयानक सिंह को हाथी की ओर लपकते देखा और हाथी फिर चिंघाड़ कर भाग खड़ा हुआ। अब बादशाह से न रहा गया। वह हाथी से कूद कर कबीर के पैरों पर गिर पड़े और क्षमा प्रार्थना करते हुए कहा जो आप चाहें वह दंड मुझे दें। इसके उत्तर में कबीर का कहा हुआ निम्न-लिखित दोहा प्रसिद्ध है—

> जो तोकूं कांटा बुए, ताहि बोय तू फूल,
> तोको फूल को फूल हैं, वाको हैं तिरसूल।

कुछ किंवदंतियों में कबीर और सिकन्दर लोदी संबंधी और भी विस्तृत वृतांत मिलता है। एक में इसी सिलसिले में स्वामी रामानंद भी घसीटे गए हैं और कबीर के द्रोहियों ने इन पर भी वही दोष लगाए जो कबीर पर लगाए गए थे। कहा जाता है कि बादशाह ने इनको मरवा

डाला पर बाद में कबीर ने इन्हें अपनी अलौकिक शक्ति से जीवित किया था। इसके सिवा कबीर ने और भी कई अलौकिक चमत्कार बादशाह के सामने दिखाए जिससे अंत में उसने इन्हें सचमुच एक महापुरुष समझ कर इनसे माफ़ी मांगी और इनके द्रोहियों को हताश होना पड़ा।

मृत्यु संबंधी किवदंतियां

किंवदंतियों के प्रमाण के अनुसार कबीर ११९ वर्ष, ५ महीने और २७ दिन जिए थे और उसका स्वर्गवास बस्ती जिले के अंतर्गत मगहर नामक स्थान में सं० १५७५ में हुआ था। कहा जाता है कि कबीर को जब अपना महाप्रस्थान काल समीप जान पड़ा तो उन्होंने मगहर जाकर शरीर छोड़ने की इच्छा प्रगट की और वहां के लिये रवाना भी हो गए। इनके भक्तों और प्रेमियों को इससे यह सोच कर और भी बड़ा क्षोभ होने लगा कि लोक में प्रसिद्ध है कि मगहर में मरने वाला अगले जन्म में गधा होता है और काशी में मरने वाले की मुक्ति होती है। सिर्फ़ मरने ही के लिए काशी ऐसे पवित्र स्थान को छोड़ कबीर को मगहर जाना देख सारा नगर शोक सागर में निमग्न हो गया। उन सब को सांत्वना देते हुए कबीर का कहा हुआ यह पद्य प्रसिद्ध है—

लोगा तुमहीं मति के भोरा।
जौं पानी पानी महं मिलि गौ, त्यौं धुरि मिलै कबीरा।
जो मैं थीको सांचा व्यास, तोर मरन हो मगहर पास।
मगहर मरै सो गदहा होय, भल परतीति राम सों खोय।
मगहर मरे मरन नहि पावे, अनते मरे तो राम लजावे।
का काशी का मगहर ऊसर, हृदय राम बस मोरा।
जो काशी तन तजइ कबीरा, रामहिं कवन निहोरा।[1]

अंत में, कबीर, सब लोगों के समझाने बुझाने पर भी मगहर चले गए और उनके साथ साथ प्रायः दस सहस्र शिष्य और भक्त भी साथ गए। जौनपुर के राजा वीरसिंह यह हाल सुन कर अपने दल बल के

---

[1] बीजक, शब्द १०३

साथ मगहर पहुँचे और वहाँ यह घोषित किया कि मैं कबीर के शव का अंतिम संस्कार काशी ले जाकर करूँगा। पर मगहर का नवाब बिजली ख़ाँ पठान भी कबीर का शिष्य था। उसने कहा कि मैं यह कभी नहीं होने दूंगा और कबीर की लाश मुसलमानी क्रिया के अनुसार यहीं दफ़नाई जायगी। कबीर मगहर पहुँच कर एक साधु की कुटिया में विश्राम कर रहे थे। उन्होंने कुछ कमल के फूल और दो चादरें मँगवाईं। उस समय उन्होंने सुना कि उनके अंतिम संस्कार को लेकर वीरसिंह और बिजली ख़ाँ की सेनाओं में रक्तपात होने वाला है। यह सुन कर उन्होंने दोनों को बुलाकर समझा बुझा कर शांत किया और इसके बाद दोनों चादरें तान कर लेट रहे और सब को बाहर से द्वार भेड़ कर बाहर चले जाने को कहा। सब किसी के बाहर चले जाने के थोड़ी देर बाद भीतर से एक शब्द हुआ और तब लोग द्वार खोल कर भीतर गए पर वहाँ कबीर के शरीर का कहीं पता नहीं था। केवल कमल के फूलों से भरी हुई वही दोनों चादरें थीं। सब को बड़ा आश्चर्य हुआ और अंत में फूलों से भरी हुई एक चादर राजा वीरसिंह काशी ले गए और वहीं हिंदू धर्मशास्त्र की विधि से इनका दाह कर्म हुआ और भस्मावशेष वहीं के कबीर चौरा नामक स्थान में सुरक्षित किया। इधर बिजली ख़ाँ ने भी फूलों से भरी दूसरी चादर को मगहर में दफ़नाया और वहाँ कबीर की एक समाधि भी बनवाई जो अब तक विद्यमान है।

कबीर संबंधी ऐतिहासिक तथ्य

कबीर के जीवन संबंधी ज्ञातव्य बातों का ऐतिहासिक तथ्यातथ्य निर्णय करने के लिये हमारे पास केवल दो साधन हैं—किंवदंती और कबीर की रचनाएँ। यह सत्य है कि प्रमाण के लिये किंवदंतियों या दंतकथाओं को ज्यों की त्यों मान लेना बड़ी भूल है। यहाँ तक कि विद्वान् समालोचक और जीवनी - लेखक इन पर एक क्षण भी विचार करना व्यर्थ समझते हैं। पर सभी किंवदंतियाँ एक सी नहीं होतीं। जिन किंवदं-तियों का एक ही रूप में या कुछ साधारण भिन्नता के साथ कई स्थानों

पर उल्लेख मिलता हो उनके मूल में अवश्य ऐतिहासिक तथ्य रहता है और कोई भी समालोचक उनकी पूर्ण रूप से अवहेलना नहीं कर सकता। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, तथा साहित्यिक परिस्थितियों को बराबर ध्यान में रखते हुए और अनावश्यक विस्तार की काट-छाँट करते हुए इन किंवदंतियों का मूलस्थित सत्य निर्धारित करना पड़ता है। कबीर के संबंध में जितनी किंवदंतियाँ प्रचलित हैं उतनी शायद हिंदी के किसी भी कवि के संबंध में नहीं। इनकी चर्चा पहले हो चुकी है, अब केवल यह देखना है कि इनमें ग्राह्य तथ्य कितना है। इसकी जाँच तत्कालीन इतिहास और कबीर की रचनाओं के प्रमाण के आधार पर हो सकती है। पर इतिहास से जो सहायता मिलती है वह नहीं के ही बराबर है।

इस संबंध में हमें अधिक सहायता कबीर की रचनाओं से मिल सकती है। इनसे स्थान स्थान पर प्रायः इनके जीवन की कुछ मुख्य मुख्य घटनाओं पर कुछ प्रकाश पड़ता है। परंतु इन पर भी पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि कबीर के नाम से प्रचलित काव्य में उनके भक्तों या शिष्यों के रचे हुए बहुत से पद जोड़ दिए गए हैं जो कि बाद में उनके महत्व को बढ़ाने के लिये मिलाए गए हैं। यही बात हिंदी और संस्कृत के कई महाकवियों के संबंध में कही जा सकती है, पर कबीर की रचना के साथ जितनी मिलावट हुई उतनी शायद और किसी के साथ नहीं। इसके भी कई कारण हैं। एक तो यह कि कबीर शायद पढ़े लिखे बिलकुल नहीं थे। कुछ लोग तो उन्हें कोरा निरक्षर मानते हैं। जो हो, पर इतना निश्चय है कि कबीर यदि बिलकुल निरक्षर नहीं तो अधिक पढ़े लिखे भी नहीं थे। इनका सारा ज्ञान सत्संग और अपनी निजी प्रतिभा, कल्पना और अनुभूति का प्रसार था। देशाटन और देशकाल के अध्ययन से भी इनका बहुत कुछ मानसिक विकास हुआ था। इस प्रकार प्राप्त अपने अनुभव और विचारों को ये प्रायः कविता के रूप में जिज्ञासुओं को सुना दिया करते थे और वे उन्हें, प्राय अपना नमक मर्च लगाकर लिपिबद्ध कर दिया करते थे। दूसरे यह कि

ये एक मतप्रचारक भी थे। जितने मत या पंथ चलाने वाले आज तक हो गए हैं, सभों की रचना के साथ समय-समय पर अनुयायियों की इच्छानुसार मिलावट होती रही है। इनके किसी भी पद के बारे में हम निर्भ्रांत रूप से नहीं कह सकते कि यह उन्हीं का है। और फिर, इन बातों के सिवाय कबीर की रचना को किसी भी प्रकार के कालक्रम के अनुसार सिलसिलेवार करके जाँचना भी संभव नहीं है। यदि यह संभव होता तो कम से कम कबीर के मस्तिष्क का विकास और उनकी सत्य की खोज के अध्ययन में बहुत कुछ सुविधा हो सकती थी। कबीर के पदों, शब्दों तथा उलटवासियों आदि के अर्थ बहुधा दुरूह तथा एक से अधिक अर्थ रखने वाले होते हैं। इससे और उलझन पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में बहुधा इनका वास्तविक मंतव्य जानना कठिन हो जाता है।

उत्पत्ति

इनकी जन्म और मरण तिथि के संबंध में तो पहले ही पर्याप्त विचार किया जा चुका है। हिंदू विधवा के गर्भ से इनकी उत्पति के संबंध में जितनी किंवदंतियाँ हैं उनका एक मात्र उद्देश्य यही जान पड़ता है कि किसी प्रकार कबीर हिंदू भक्तों के लिये अधिक से अधिक ग्राह्य बनाए जा सकें! इस बात को तो सभी कबीरपंथी और समालोचक सत्य मानते हैं कि कबीर मुसलमान परिवार में पालित हुए थे, और उनका नाम भी मुसलमानी था। ऐसी अवस्था में ब्राह्मणी से उनकी उत्पत्ति सो भी स्वाभाविक परिस्थिति में नहीं, केवल गोसाईं अष्टानंद के आशीर्वाद मात्र से, और वह भी माता के गर्भ से नहीं बल्कि उसकी हथेली से बताने का प्रयास, देखते ही कल्पित जान पड़ता है। और इसी कल्पना को थोड़ा और आगे बढ़ाकर कुछ हिंदू भक्तों ने उनके नाम 'कबीर' को भी इसी प्रसिद्धि के अनुसार 'कबीर' ('कर' अर्थात् हाथ से पैदा होने वाला 'वीर') का अपभ्रंश कहना प्रारंभ किया। परंतु उनके इस प्रकार की कल्पनाओं के ढंग से ही इन किंवदंतियों की निस्सारता स्पष्ट है। कबीर ने स्वयं बार बार अपने को जुलाहा कहा है। ऐसी अवस्था में कबीर को नीमा का औरस पुत्र

मानना ही अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। कबीर के हिंदू संतान होने का सब से बड़ा कारण बताया जाता है उनका आरंभ से ही हिंदू धर्म के संस्कारों और भावों से व्याप्त रहना। शैशवकाल में ही कबीर प्रायः जनेऊ पहन कर राम-नाम का उपदेश देते फिरते थे। ऐसा वह करते तो अवश्य रहे होंगे, पर यह हिंदू कुल में उत्पन्न होने के कारण नहीं। यह बात सभी जानते हैं कि जुलाहे या इस वर्ग के अन्य उद्योग-धंधों की जीविका करने वाले अपने बच्चों की धार्मिक शिक्षा आदि का कोई प्रबंध नहीं करते। उन्हें आरंभ से ही हर तरह से अपने खान्दानी पेशे की ही शिक्षा मिलती है, वे ऐसे वातावरण में ही रक्खे जाते हैं। पर कबीर एक असाधारण प्रतिभासंपन्न बालक तो था ही, साथ ही आरंभ से ही इसका रिझान धर्मसंबंधी विषयों की ओर था। फिर काशी ऐसी धर्मप्राणा नगरी में इन्हें रहने का अवसर प्राप्त था। यहाँ आज भी तुमुल ध्वनि से धर्म के कम से कम वाह्य रूप का अपूर्व दिग्दर्शन होता रहता है। चारों ओर गली गली में राम नाम के उपदेशक घूमते फिरते थे और इनमें सब से प्रधान स्वामी रामानंद जी थे। कबीर के भावुक हृदय पर इन सब बातों का प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता था। यह प्रायः रामानंद के उपदेशों को सुनता और उनके भक्तों को उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करते देखता रहा होगा। धीरे धीरे इन बातों ने कबीर के हृदय पर पूरा अधिकार जमा लिया और आगे चलकर इनके हिंदू अनुयायियों को यह कहने का अवसर दिया कि हो न हो हिंदू उत्पत्ति के कारण ही कबीर हिंदू भावों से ओतप्रोत थे। परंतु दोष इसमें हिंदू उत्पत्ति का नहीं बल्कि कबीर के सारग्राही हृदय और तत्कालीन काशिस्थ धर्मप्रचार के प्राधान्य का है।

गुरु

कबीर के रामानंद के शिष्य होने में किसी प्रकार का संदेह न होना चाहिए। एक तो इसके संबंध की जनश्रुतियाँ बहुत प्रबल और बहुसंख्यक हैं, दूसरे स्वयं कबीर की रचनाओं में एक से अधिक बार इसकी ओर स्पष्ट संकेत है। यह तो सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि स्वामी रामा-

नंद के एक मुसलमान लड़के को शिष्य रूप से ग्रहण करने पर ख़ासी हलचल मच गई होगी। कबीर की रचनाओं में ही अनेक स्थलों पर ऐसी उक्तियाँ प्रायः मिलती हैं जिन से स्पष्ट हो जाता है कि धार्मिक विषयों और संतसेवा की ओर अधिक तत्परता दिखाने के कारण कबीर के घर के लोग उनसे बहुधा असंतुष्ट रहते थे। आदिग्रंथ में कई पद ऐसे[1] मिलते हैं जिनमें इनकी माता ने इन्हें अपने पेशे की ओर ध्यान न देने और साधुसंतों की गोष्ठी में समय नष्ट करने के कारण भला बुरा कहा है, और कबीर ने उनका उत्तर भी दिया है। इन पदों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि कबीर के माता पिता और लोई नाम की स्त्री भी थी। कबीर ने एक पद में अपनी माता की मृत्यु का उल्लेख भी किया है। लोई को कुछ लोग, विशेषतः इनके हिन्दू भक्त, इनकी स्त्री नहीं केवल शिष्या मानते हैं, और इस मत को दृढ़ करने के लिये उन्हें कबीर के पुत्र कमाल और पुत्री कमाली के संबंध में कुछ अनोखी किंवदंतियाँ गढ़नी पड़ी हैं। मुसलमान सूफ़ी फ़क़ीर गृहस्थ हुआ करते हैं, और इसलिये मुसलमान अनुयायियों को सस्त्रीक कबीर में कोई अनौचित्य नहीं देख पड़ता, पर हिन्दुओं का आदर्श गुरु वही होता है जो बालब्रह्मचारी हो, और कबीर में यही बालब्रह्मचर्य दिखलाने के लिये ही लोई, कमाल, तथा कमाली के संबंध में पूर्वोक्त विचित्र किंवदंतियाँ प्रचलित की गई जान पड़ती हैं। इस मत की पुष्टि उन्हीं किंवदंतियों से ही हो जाती है। लोई के विषय में एक पद है जिसमें लिखा है कि उसने कबीर की साधु-सेवा से तंग आकर एक बार कबीर के कहने पर भी एक अभ्यागत के लिये भोजन बनाने से इनकार कर दिया था। फिर अन्यत्र[2] यह भी वर्णन मिलते हैं कि लोई भी कबीर की अत्यधिक धर्मचर्चा और सत्संग की प्रायः तीव्र आलोचना किया करती थी। पर

परिवार

क्या कबीर विवाहित थे?

[1]आदिग्रंथ, गूजरी। [2]वही, गौड़ ६

किंवदंतियों ही के अनुसार लोई ने कबीर का शिष्यत्व ग्रहण उनके असाधारण साधुपरायणता पर ही रीझ कर किया था। यदि सचमुच वह इस प्रकार की केवल शिष्या मात्र होती तो इस प्रकार उसके कबीर की साधु-सेवा से खीझने और उन्हें इससे विरत कर अपने घर के काम में मन लगाने की चेष्टा करने का प्रयास उसके शिष्यत्व की सीमा के बाहर का काम था। यह काम स्त्री, माता, या ऐसे ही किसी अन्य आत्मीय का ही हो सकता है। एक पद[१] में तो कबीर के द्वितीय विवाह का संकेत मिलता है। यदि इसे केवल अन्योक्ति ही मान लें तो भी काम नहीं चलता। एक पद में[२] कबीर की माँ इस बात पर रुष्ट हो रही है कि ये घुटे सर वाले कबीर के साथी मेरी पतोहू 'धनियां' को 'रामजनियां' क्यों कहते हैं। इससे इतना क्रोध उसे इस लिये आता था कि 'रामजनियां' नाम उन देवदासियों का भी होता था जो कि मंदिरों में सेवा के लिये समर्पित कर दी जाती थीं। अब प्रश्न यह है कि यह 'धनियां' या रामजनियाँ लोई के ही नामांतर थे या यह उनकी दूसरी स्त्री के नाम थे। जो हो, इतना तो स्पष्ट है कि कबीर का विवाह अवश्य हुआ होगा और कमाल तथा कमाली उनकी संतान थे। कबीर के पिता के संबंध की बहुत कम चर्चा इनके पदों में मिलती है। एक पद जो मिलता है उसमें उन्होंने पितृशोक व्यक्त किया है। कबीर द्वारा किए गए पिता या माता के वियोगवर्णन को लोग अधिकतर अन्योक्ति रूप में लेते हैं। पर इस प्रकार की पारिवारिक दुर्घटना को लेकर ही अन्योक्ति कहने का क्या तात्पर्य ? अन्योक्तियों का आधार सदा कोई न कोई लौकिक घटना हुआ करती है।

कबीर की पारिवारिक स्थिति उनकी आभ्यंतरिक प्रवृत्ति के लिये नितांत असुविधाजनक थी। अनेक पदों में उन्होंने इस प्रतिकूल कौटुंबिक वातावरण से बड़ा करुण असंतोष प्रकट किया है।

जहाँ तक पता चला है, कबीर के शिक्षित होने के कोई विश्वसनीय

---

[१]आदि ग्रंथ, आसा ३९ [२]वही, आसा ३३

क्या कबीर अशिक्षित थे?

प्रमाण नहीं मिलते। उन्होंने अपने पदों में इस विषय को निर्भ्रांत रूप से स्पष्ट कर दिया है। बीजक में वह यों कहते हैं—

मसि कागद छूयो नहीं, कलम नहीं गही हात।
चारिहु जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात॥[1]

आदि ग्रंथ में भी एक जगह[2] उन्होंने साफ़ कह दिया है कि मैं पोथी की विद्या नहीं जानता और न मैं मतभेद ही समझता हूँ। इसके अतिरिक्त कबीर की पारिवारिक स्थिति तथा जुलाहे के घर में उनके पालन-पोषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें लिखने पढ़ने की प्रारंभिक शिक्षा नहीं मिल सकती थी। उन्होंने जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया वह सत्संग और अपनी प्रतिभा से। अपनी भाषा के बारे में भी वह एक जगह साफ़ कह देते हैं कि मेरी बोली ठेठ पूर्बी है और धुर पूरब का रहने वाला ही उसे समझ सकता है—

बोली हमरी पुरुब की, हमैं लखै नहिं कोय।
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय।[3]

कबीर की उद्दंडता

कबीर की रचनाओं में विचार-स्वातंत्र्य की मात्रा बहुत है। यह बात दूसरी है कि उनके विचारों को अर्थशून्य अथवा चिमटा खँजड़ी के सुर में ज्ञान गूदड़ी गाने वाले बैरागड़ों की बहक कह कर टाल दिया जाय, पर यदि उनकी रचनाओं में कुछ भी विचार है और उनसे यदि कबीर की किसी प्रकार की मनोवृत्ति का पता चलता है, तो वह यही कि वह हिंदू मुसलमानों में प्रचलित परंपरागत अंधविश्वासों तथा अर्थशून्य रूढ़ियों के तीव्र विरोधी थे और अपने स्वतंत्र विचार से जिस निष्कर्ष पर वह पहुँचते थे उसका बड़ी निर्भीकता और प्राय: बड़ी उद्दंडता से प्रतिपादन करते थे। इसी संबंध में वह हिंदू और मुसलमान दोनों ही

---

[1]बीजक, साखी १८७ [2]आदिग्रंथ, विलावल २ [3]बीजक, साखी, १९४

के धर्मशास्त्रों की भी कटु आलोचना कर डालते थे। यही कारण था कि सनातनी रूढ़ियों के संरक्षक समझे जाने वाले ब्राह्मण और मुल्ला दोनों ही कबीर के कट्टर विरोधी हो गए। महाकवि तुलसीदास जी को भी कबीर की यह उद्दंडता खटकी थी। कबीर के निम्नलिखित पद से ही क्षुब्ध होकर शायद तुलसीदास जी ने वेद और पुराण की बेसमझे-बूझे निंदा करने वाले अशिक्षित कबीर या कबीर पंथियों के प्रति कुछ तीव्र आक्षेप किए हैं—

रमैनी[१]—

पंडित भूले पढ़ि गुनि बेदा, आपु अपन पौ जानु न भेदा।
संझा तरपन औ खटकरमा, ई बहु रूप करहिं अस धरमा।
गाइत्री जुग चारि पढ़ाई, पुछहु जाय मुकुति किन पाई।
अवर के छिए लेत हौ सींचा, तुम ते कहहु कवन है नीचा।
ई गुन गरब करौ अधिकाई, अधिक गरब न होय भलाई।
जासु नाम है गरब-प्रहारी, सो कस गरवहि सकै सहारी।

साखी—

कुल-मरजादा खोय के, खोजिनि पद निरबान।
अंकुर बीज नसाय के, भए विदेही थान॥

इसी प्रकार तीव्र आलोचना प्रायः इनकी रचनाओं में मिलती है और इन्हें देखते हुए इस में संदेह करने का कोई स्थान नहीं रह जाता कि उन्होंने अवश्य अपने को तत्कालीन अधिकांश सनातनी पंडित समाज में नितांत अप्रिय बना लिया होगा। यही बात मौलवियों और इस्लाम के कट्टर अनुयायियों के बारे में भी सत्य है। वह इस्लाम की भी समय-समय पर बुरी तरह से खिल्ली उड़ाते थे। एक उदाहरण देखिए, इसमें पंडित और मुल्ला दोनों की एक साथ खबर ली गई है—

संतो राह दुनो हम डीठा।
हिंदू तुरुक हटा नहिं मानैं, स्वाद सभन्हि को मीठा।

---

[१] बीजक, रमैनी ३५

हिंदू बरत एकादसि साधैं, दूध सिँघारा सेती।
अन को त्यागैं मन को न हटकैं, पारन करैं सगोती।
तुरुक रोजा नीमाज गुजारैं, बिसमिल बाँग पुकारैं।
इनकी भिस्त कहांते होइहै, साँझै मुरगी मारैं।
हिंदु को दया मेहर तुरुकन की, दोनौं घटसों त्यागी।
वे हलाल वैं झटके मारैं, आगि दुनौं घर लागी।
हिंदू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, राम न कहेउ खुदाई।[१]

'नाथ' संप्रदाय वालों का उपहास

बात यहीं तक नहीं थी। कबीर ने अपने समय के प्रायः सभी संप्रदाय वालों में प्रचलित कुरीतियों और अंधविश्वासों का उपहास तथा कहीं कहीं निंदा भी की है। इन के समय में नाथ संप्रदाय वालों की संख्या काफ़ी बढ़ चुकी थी। किंवदंतियों में तो गोरखनाथ और कबीर का साक्षात्कार होना भी प्रसिद्ध है परंतु वास्तव में यह अभी तक संभव सिद्ध नहीं हो सका है। अभी थोड़े दिनों तक तो गुरु गोरखनाथ के ऐतिहासिक पुरुष होने में भी संदेह था, पर अभी हाल में इनके कुछ ग्रंथ मिले हैं और इनका रचनाकाल कबीर से लगभग एक शताब्दी पहले था। कबीर ने अपने कुछ पदों को किसी गोरखनाथ को संबोधन करते हुए कहा है। इनको मछंदरनाथ का शिष्य और 'कनफटे' योगियों के नाथसंप्रदाय का प्रवर्त्तक गोरखनाथ मानने में स्पष्ट बाधाएँ हैं। हो सकता है कि कबीर ने जिनका उल्लेख किया है वह कोई दूसरे गोरखनाथ रहे होंगे। पर उन पदों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह दूसरे गोरखनाथ भी किसी मार्ग के प्रवर्त्तक या उसके तत्कालीन कर्णधार रहे होंगे और वह संप्रदाय कबीरपंथ का बड़ा विरोधी था। हठयोगियों के संप्रदाय में बहुत सी ऐसी प्रथाएँ प्रचलित थीं जिनका कोई भी विचारवान् मनुष्य बिना

---

[१] बीजक, शब्द १०

प्रतिवाद किए न रहेगा। इन्हीं अविचारपूर्ण रस्मों के प्रतिवाद-स्वरूप कबीर की एक रमैनी देखिए—

ऐसा जोग न देखा भाई, भूला फिरै लिए गफिलाई।
महादेव को पंथ चलावे, ऐसो बड़ो महंत कहावै।
ठाट बजारे लावैं तारी, कच्चे सिद्धन माया प्यारी।
कब दत्ते माबासी तोरी, कब सुखदेव तोपची जोरी।
नारद कब बंदूक चलाया, व्यासदेव कब बंब बजाया।
करहिं लराई मति के मंदा, ई अनीत की तरकस बंदा।
भए बिरक्त लोभ मन ठाना, सोना पहिरि लजावैं बाना।
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा, गाँव पाय जस चलैं करोरा।
साखी— (तिय) सुंदरि का सोहई, सनकादिक के साथ।
कबहुँक दाग लगावई, कारी हांड़ी हाथ॥[1]

एक स्थान पर वह गोरखनाथ से यों कहते हैं—

काटे आम न मौरसी, फाटे जुटे न कान।
गोरख पारस परस बिनु, कवने को नुकसान॥[2]

इसी प्रकार उस समय प्रचलित प्रायः सभी मतों और संप्रदायों में जो कुछ बुराइयां इन्हें देख पड़ीं उनकी इन्होंने निःशंक होकर, पर यथेष्ट उद्दंडतापूर्वक तीव्र समालोचना की है। सब से अधिक तो शायद इन्होंने इस्लाम मत के मर्म को उल्टा पल्टा समझाने वाले मुल्लाओं की ही ख़बर ली है। इस संबंध का एक उदाहरण और ध्यान देने योग्य है—

बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ैं कितेब कुराना।
कै मुरीद ततबीर बतावैं, उनिमहं उहै जो ज्ञाना॥

× × ×

---

[1]बीजक, रमैनी ६९ [2]वही, साखी ५६

हिंदु कहै मोहि राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना।
आपुस महं दोउ लरि लरि मूए, मरम काहु नहिं जाना ॥[१]

कबीर की रचनाओं में कई ऐसे पद मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि शेख़ तक़ी नामक एक फ़क़ीर से इनका कुछ सत्संग हुआ था। परंतु इतिहास से इसी नाम के दो फ़क़ीरों का पता चलता है—एक कड़ेमानिकपुर वाले जो चिश्ती संप्रदाय के सूफ़ी फ़क़ीर थे और बादशाह सिकंदर लोधी के पीर माने जाते हैं। दूसरे झूँसी के शेख़ तक़ी जो कि सुहरवर्दी संप्रदाय के थे। किंवदंतियों से यह स्पष्ट नहीं होता कि कौन से तक़ी से कबीर का संपर्क था। पर जहाँ तक जान पड़ता है कड़ेमानिकपुर वाले तक़ी से ही कबीर का साक्षात्कार हुआ होगा, क्योंकि झूँसी वाले तक़ी की मृत्यु सं० १४८६ में और कड़े वाले की सं० १६०२ में मानी गई है। 'खज़ीनतुल आसफ़िया' के अनुसार तक़ी की मृत्यु सं० १६४१ में कही गई है। यह कड़ेमानिकपुर वाले तक़ी ही हो सकते हैं। इस में यह भी लिखा है कि पीर शेख़ तक़ी की मृत्यु के बाद इनकी गद्दी का उत्तराधिकारी शेख़ कबीर जुलाहा हुआ। झूँसी वाले तक़ी से कबीर का साक्षात्कार मानने से तिथियाँ ठीक नहीं बैठतीं। झूँसी में यह तक़ी के किसी शिष्य से ही मिले होंगे। अब रही तक़ी के कबीर के पीर या गुरु होने की बात। इस विषय पर परस्पर विरुद्ध किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं में जहाँ जहाँ तक़ी का उल्लेख किया है उससे कहीं भी यह व्यक्त नहीं होता कि तक़ी उनके गुरु रहे होंगे। प्रतिद्वंदिता का भाव अवश्य झलकता है। सब बातों के मिलान करने पर यही युक्तिसंगत जान पड़ता है कि कबीर ने आदि में स्वामी रामानंद को तो अवश्य ही गुरु स्वीकार किया था और हो सकता है कि बादशाह के पीर तक़ी का बड़ा नाम सुनकर उसके ज्ञान से लाभ उठाने की अभिलाषा से उसके समीप गए हों और वहां से निराश होकर लौटे

कबीर और शेख़ तक़ी

---

[१] बीजक, शब्द ४

हों। क्योंकि बहुत सी किंवदंतियों से यह स्पष्ट है कि तक़ी कबीर का जानी दुश्मन हो गया था और बादशाह से उन के बध तक कराने का दुराग्रह किया था। राजगुरु तक़ी के इतने रोष का सिवाय इसके और कोई कारण नहीं हो सकता कि उन्होंने इनकी (तक़ी की) शिष्यता स्वीकार नहीं की।

हो न हो, जीवन के अंतिम दिनों कबीर को काशी छोड़कर मगहर जाने पर बाध्य होना, तक़ी की कुचेष्टा का ही परिणाम रहा हो। यह तो हम समझ सकते हैं कि कबीर स्वेच्छा से ही अपना चिरप्रिय काशिस्थ वासस्थान छोड़ यकायक मगहर के प्रेम में पड़कर वहाँ चले गए हों। 'जो कबिरा काशी मरै तो रामहिं कवन निहोरा' वाले वचन में कुछ भी तत्त्व नहीं है। अब दो ही बातें ऐसी रह जाती हैं जिनकी वजह से विवश होकर कबीर को काशी छोड़ कर चला जाना पड़ा हो। एक तो जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि तक़ी आदि उनके द्वेषियों के कुचक्र और कुमंत्रणा से बादशाह ने इन्हें काशी छोड़ कर चले जाने की आज्ञा दे दी हो। दूसरा कारण यह हो सकता है कि काशी के पंडितों और मुल्लाओं आदि ने ही इनको इतना तंग करना शुरू कर दिया हो कि इन्होंने विवश होकर अन्यत्र चले जाने का ही निश्चय किया हो। यह एक तथ्य है कि कबीर के अंतिम दिन मगहर में ही बीते और इसके उपर्युक्त दोनों ही कारण या उनमें से कोई एक हो सकता है।

मगहर प्रस्थान

कबीर का साहित्य

यह तो कबीर स्वयं कह चुके हैं कि मैंने 'मसि' और 'कागद' कभी हाथ से भी नहीं छुआ था और 'चारो जुग का महातम' मैंने मुँह से कह के ही जनाया है। इस से यह तो स्पष्ट ही है कि इन्होंने स्वयं अपनी कोई भी रचना लिपिबद्ध नहीं की थी। तो भी इनके नाम से प्रसिद्ध रचना परिमाण में बहुत अधिक मिलती है। 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (प्रथम भाग) नामक काशी-नागरी-प्रचारिणी

द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में इनके रचित ग्रंथों की सूची में साठ से ऊपर ग्रंथ गिनाए गए हैं। मिश्रबंधुओं की 'हिंदी-नवरत्न' नामक पुस्तक में इनके ग्रंथों की एक सूची दी गई है और इसमें इनके ग्रंथों की संख्या सत्तर से भी ऊपर पहुँच गई है। ऐसी अवस्था में यह तो स्पष्ट ही है कि इनके मुख से निकले हुए पदों को इनके शिष्य भर-सक कंठस्थ कर लेते थे। बाद में ये पद 'बीजक' और सिखों के छठवें गुरु अर्जुन द्वारा संपादित 'आदिग्रंथ' में सगृहीत किए गए। परंतु ऐसी अवस्था में पाठों में अत्यधिक भ्रष्टता, हेर-फेर तथा रद्दो-बदल होना स्वाभाविक ही है। यह तो निश्चय है कि इनके शिष्यों ने संग्रह को लिपिबद्ध या संपादित करते समय भूले हुए पद्यों या पद्यांशों को अपनी निजी सूझ-बूझ के अनुसार जोड़ दिया होगा, साथ ही यह भी निश्चय है कि ये काफ़ी बड़ी संख्या में कबीर के विचार और शैली के ढंग पर बहुत से स्वरचित पद भी उनकी रचना के साथ यत्र-तत्र मिलाते चले गए। कबीर के नाम से जितनी रचना इस समय उपलब्ध है उसका एक काफ़ी बड़ा भाग इनके शिष्यों की रचना है और समूची रचना में से कबीर के पदों को छाँट कर अलग करना असंभव है।

बीजक

कबीर के उपलब्ध संग्रहों में सबसे अधिक प्रसिद्ध 'बीजक' है। कहा जाता है कि बनारस के आस-पास के कुछ लोगों में धन सुरक्षित रखने की एक अनोखी प्रथा है। ये लोग धन को किसी गुप्त स्थान में छिपा देते हैं और याददाश्त के लिये एक संकेतपत्र या नक़शा या बीजक बनाते हैं जिसको समझने वाला ही उस स्थान का पता लगा सकता है। इसी शब्द के अनुसार कबीर के संग्रहकर्त्ताओं ने इनके संग्रह का नाम 'बीजक' रक्खा होगा। आशय यह है कि इसको ठीक ठीक समझने वाला ही कबीर के ज्ञानकोश से परिचित हो सकता है।

इस समय बीजक के कई संस्करण उपलब्ध हैं पर इनमें कई बातों में एक दूसरे से बड़ा अंतर है। पाठ, पदसंख्या, विषयक्रम तथा साधारण

व्यवस्था आदि सब ही भिन्न-भिन्न प्रकार से हैं। निम्नलिखित संस्करण हमारे सामने हैं—

(१) बुढ़ानपुर निवासी श्री पूरनदास की टीकायुक्त, सन् १९०५ में प्रयाग में मुद्रित संस्करण।

(२) कानपुर के रेवरेंड अहमदशाह का सन् १९११ का संस्करण। इसका संपादन रीवाँनरेश महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा संकलित 'बीजक' के अनुसार ही किया हुआ कहा जाता है। विश्वनाथ सिंह जी ने बीजक की टीका भी की है और इनका संस्करण सन् १८६८ में काशी में छपा था, पर अभाग्यवश संप्रति अप्राप्य होने के कारण यह हमारे देखने में नहीं आया।

(३) अभी हाल में (सन् १९२८) में प्रयाग के लाला रामनरायन लाल ने श्री विचारदास की टीका का एक सुलभ संस्करण प्रकाशित किया है।

सन् १८९० में कलकत्ते में रेवरेंड प्रेमचंद नामक मुंगेर के एक मिशनरी सज्जन ने भी बीजक का एक संस्करण निकाला था, पर यह भी अब बाज़ार में अलभ्य हो गया है।

बीजक की रचनाएँ साधारणतः इन शीर्षकों में विभाजित हैं—

रमैनी (पद-संख्या ८४); शब्द (११५); ज्ञान चौंतीसा (१); विप्रमतीसो (१); कहरा (१२); बसत (१२) चाँचर (२); बेली (२); बिरहुली (१); हिंडोला (३); साखी (३५३)

आदिग्रंथ

कबीर की कविताओं का दूसरा बड़ा संग्रह 'आदिग्रंथ' में हुआ है। इस वृहत् धर्मग्रंथ का संकलन सिखों के छठवें गुरु अर्जुन ने सं० १६६१ में कराया था। इसमें प्रथम गुरु नानक से लेकर गुरु अर्जुन तक छहों गुरुओं की रचनाएं संगृहीत हैं। बाद में गुरु तेग़बहादुर और अंतिम गुरु गोविंदसिंह की रचनाएं भी इसमें जोड़ दी गई हैं। इन गुरुओं के अतिरिक्त इसमें नामदेव तथा कबीर आदि कुछ प्रमुख भक्तों की बानियां भी संगृहीत हैं। इस महद्ग्रंथ में मि० पिनकाट की गणना के अनुसार कबीर के १,१४६

पद्य हैं, जिनमें २४४ तो साखियाँ हैं और शेष विभिन्न राग-रागिनियों में गेय पदों के रूप में हैं। अधिकांश समालोचकों की राय में ग्रंथ के अधिकतर पद कबीर के रचे हुए नहीं हैं पर उनमें विचार उन्हीं के हैं। कबीरपंथी इनका पाठ कभी नहीं करते। और फिर बहुत थोड़े पद ऐसे हैं जो बीजक और इसमें दोनों में समान हों, और जो समान हैं भी, उनमें पाठांतर बहुत हैं।

अभी थोड़े दिन हुए काशी नागरीप्रचारिणी सभा से बाबू श्याम-सुंदरदास जी ने 'कबीर ग्रंथावली' नाम से कबीर की रचनाओं का अति सुचारु रीति से संपादित एक संस्करण निकाला है। सभा को हस्तलिखित पुस्तकों की खोज में कबीर के ग्रंथों की दो प्रतियां मिली थीं, एक सं० १५६१, अर्थात् कबीर के जीवन काल की ही लिखी हुई, और दूसरी सं० १८८१ की। कहा जाता है कि पहली प्रति बाबा मलूकदास जी की लिखी हुई है। दोनों प्रतियों तथा आदिग्रंथ को मिला कर बाबू साहब ने इस संग्रह का संपादन किया है। जो दोहे और पद मूल अंश में नहीं आए उन्हें आपने अलग कर परिशिष्ट में डाल दिया है। सर्वसम्मति से यह इस समय कबीर का सबसे प्रामाणिक संग्रह माना जाता है। प्रस्तुत संग्रह के अधिकांश पद इसी ग्रंथावली से लिए गए हैं।

कबीर की कविता

कवि के लिये हमारे प्राचीन आचार्यों ने जो तीन बातें आवश्यक मानी हैं उन में दो—'शिक्षा' और 'अभ्यास'—से तो कबीर साहब शून्य थे। रह गई 'प्रतिभा', सो अब कुछ विद्वानों को कबीर के प्रतिभान्वित होने में भी संदेह होने लगा है। यह एक तथ्य अवश्य है कि साधू-संतों, और वैरागियों की एक ऐसी शाखा बाबा गोरखनाथ के समय से ही चली आ रही है जिस के अनुयायियों को ज्ञानोपदेश और वेद, पुराण, वर्णाश्रम धर्म आदि की उद्दंड समालोचना का रोग सा होता है। दलित जातियों तथा अशिक्षितों की सहानुभूति पाने की लालसा से द्विजातियों के धर्म तथा कर्मकांड आदि की तीव्र निंदा करते हुए एक विचित्र रूप

से एकेश्वरवाद का मंत्र देते फिरते हैं। इनके ज्ञानभंडार में कुछ चलते हुए दार्शनिक शब्दों तथा वाक्यों के सिवा और कुछ नहीं होता। धूनी लक्कड़ सुलगा कर गाँजे और चरस की दम तैयार हुई नहीं कि मूर्ख-मंडली एकत्रित होकर इन के ज्ञान और चिलम दोनों से लाभ उठाने लगती है। फिर खँजड़ी के ताल और चिमटे के सुर में ज्ञान-स्रोतस्विनी में ये भक्त गोते लगाने लग जाते हैं। इन्हीं परिस्थितियों में कहे हुए शब्द आगे चल कर 'बानी' नाम से अभिहित होकर मायावाद और रहस्यवाद आदि बड़े शब्दों से अलंकृत होते हैं। इस प्रकार कहे हुए बहुत से पद अर्थशून्य वाग्जाल मात्र हैं, पर इन के रहस्यपूर्ण या उल्ट-वाँसी आदि शब्दों से पुरस्कृत होने का एकमात्र कारण है इन की अर्थ-शून्यता। इस कथन से मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि कबीर के सभी पद ऐसे ही हैं। पर इतना कहने में कुछ हानि नहीं प्रतीत होती कि लाख कोशिश करने पर भी विद्वानों की समझ में न आने वाले बहुत से पद कोई ख़ास मानी नहीं रखते। उन्हें किसी आध्यात्मिक तत्त्व से पूर्ण मानना भ्रम है। हम यह भी कहने का साहस कर सकते हैं कि हो न हो ऐसे पद विशेष कर कबीर के अनुयायियों के रचे हुए होंगे जो कालांतर में कबीर की रचना में मिला दिए गए। इस अनुमान का आधार यही है कि कबीर ऐसा स्पष्टवादी कभी ऐसी उक्ति कहने का पक्षपाती न रहा होगा जिस का आशय जनसाधारण की समझ में न आवे। और एक बात यह भी है कि कबीर के ही बहुत से पद और दोहे बहुत मनोरम और सहल सुंदर भी बन पड़े हैं। इन में काव्याडंबर तो कुछ भी नहीं है पर भाव बड़े सुंदर और ऊँचे हैं। क्या यह संभव है कि एक ही कवि एक साथ ही नितांत दुरूह और अति स्पष्ट हो? कबीर का हिंदी साहित्य में जो स्थान है वह इन्हीं स्पष्ट और बोधगम्य पदों के प्रभाव से। उन के ईश्वरसंबंधी तथ्य कथन अधिकतर स्पष्ट रूप से ही हुए हैं। जहाँ जहाँ उन्होंने हिंदू मुसलमान दोनों ही के धार्मिक ढोंग, पाखंड, तथा समाजसंबंधी परंपरागत दुर्बल विश्वास, स्वतंत्र-विचार के अभाव आदि की आलोचना की वहां उन के पदों से व्यंग

तथा कहीं क्रूर परिहास की मात्रा अवश्य आ गई है पर वे भी अधिकांश में भलीभाँति बोधगम्य हैं। अबोधगम्य अधिकतर वही हैं जिन में माया, ब्रह्म, अज्ञान आदि संबंधी तात्त्विक सिद्धांतों का समावेश सा प्रतीत होता है। ऐसे पदों में सूफ़ी फ़क़ीरों तथा अद्वैतवाद के सिद्धांतों का एक निराला सम्मिश्रण सा जान पड़ता है। मेरे विचार से इस प्रकार के पदों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है। पर ऐसा कहते समय कबीर के तात्त्विक सिद्धांतों के प्रतिपादन करने वाले तथा आचार और समान नीति से संबंध रखने वाले पदों के पार्थक्य को भलीभाँति मन में रखना होगा। तात्त्विक सिद्धांतों से संबंध रखने वाले कबीर के जितने पद मिलते हैं उन पर समष्टि रूप से विचार करने के बाद कोई सुनिश्चित अपना स्पष्ट दार्शनिक सिद्धांत स्थापित नहीं होता। यहां पर उनके तात्त्विक सिद्धांतों के विश्लेषण का अवसर नहीं है, संक्षेप से केवल यही कहा जा सकता है कि इन के पदों में कहीं निर्गुण ब्रह्म की महिमा गाई है तो कहीं इस्लामी एकेश्वरवाद की। कहीं इन्होंने जीवात्मा, परमात्मा, तथा जड़ जगत् की अलग-अलग सत्ता स्वीकार की है तो कहीं एक ही परमात्मा (नूर) से सब की सृष्टि और उसी में सब का लय दिखलाया है। कोई भी एक मत स्थिर नहीं हो पाता। आध्यात्मिक सिद्धांतों के निरूपण के लिये शब्दों के प्रयोग में जो स्पष्टता तथा सावधानी तथा एकरूपता की आवश्यकता है वह कबीर से कोसों दूर है। ईश्वर या ब्रह्म के लिये जो शब्द इन्हें सूझा उसी का इन्होंने प्रयोग किया। राम, रहीम, अल्ला, हरि, गोविंद, आप, साहिब, नाम, शब्द, सत्य आदि अनेक शब्दों से इन्होंने काम लिया है। फिर सभों की महिमा भिन्न-भिन्न रूपों से गाई गई है। इस का परिणाम यह हुआ है कि इन के पदों को पढ़ने पर पाठक कुछ अव्यवस्थित सा हो जाता है और कोई भी समालोचक इन की रचना के दार्शनिक पहलू पर कोई सम्मति नहीं स्थिर कर सकता। इन का अच्छा से अच्छा समर्थक केवल यही कह कर संतोष कर लेता है कि तत्त्वज्ञान का विषय जिस प्रकार गहन और जटिल है कबीर की कविताएँ भी

वैसी ही हैं। उन का कहना है कि कबीर का काव्य अनुभव की वस्तु है, वह गूँगे का गुड़ है। अध्यात्मज्ञान की भाँति उस का केवल अनुभव संभव है, शब्दों द्वारा उस की व्याख्या नहीं। कबीर पहुँचे हुए फ़क़ीर थे, उन्होंने अपनी अनुभूति को शब्दों में व्यक्त करने की चेष्टा की है। पर जब वह विषय, जिसे व्यक्त करना उन्हें अभीष्ट था, अतींद्रिय है तो उन की रचना कैसे इंद्रियग्राह्य हो सकती है। अतएव इस प्रकार की रचना का मर्म वही समझ सकता है जो स्वयं कबीर की भाँति पहुँचा हुआ हो, अतींद्रिय ज्ञाननिधि हो चुका हो। यही एक तर्क कबीर के दुरूह पदों के समर्थन में पेश किया जा सकता है। पर इसका प्रत्युत्तर या प्रतिवाद करने की चेष्टा व्यर्थ है।

जो हो, इन कठिनाइयों के होते हुए भी कबीर को हिंदी साहित्य का एक उज्ज्वल रत्न मानना पड़ेगा। उन की अनूठी उक्तियां, चाहे वह कभी-कभी समझ में न भी आवें, हिंदी साहित्य में अनुपम हैं, और चाहे कुछ हो या न हो, उन में भक्ति और शांति का एक ऐसा नीरव संगीत प्रवाहित है जो हिंदी क्या, संसार के किसी भी साहित्य में शायद ही प्राप्य हो। इन के पदों, शब्दों और वाक्यों में न कलाकार की खराद है, न छंदों, पंक्तियों या मात्राओं आदि पर ही कोई विशेष ध्यान रक्खा गया है। ये उनके 'हृदयोद्गार' मात्र हैं जो कि परवर्ती कविता में इतने दुर्लभ हो गए, और इसी से इन का इतना मूल्य है।

दुलहनी गावहु मंगलचार,हम घरि आए हो राजाराम भरतार ॥टेक॥
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती।
रामदेव मोरै पाहुनैं आये, मैं जोबन मैं माती ॥
सरीर-सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उच्चार।
रामदेव संग भांवरि लैहूँ, धनि धनि भाग हमारा ॥
सुर तेंतीसू कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी।
कहैं कबीर हम व्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी ॥

अब मैं पाइबौ रे पाइबौ ब्रह्मगियान ।
सहज समाधें सुख मैं रहिबौ, कोटि कलप विश्राम ॥टेक॥
गुर कृपाल कृपा जब कीन्हीं, हिरदै कँवल बिगासा ।
भागा भ्रम दसौं दिसि सूझ्या, परम जोति प्रकासा ॥
मृतक उठ्या धनक कर लीयैं, काल अहेड़ी भागा ।
उदया सूर निस किया पयाना, सोवत थैं जब जागा ॥
अविगत अकल अनूपम देख्या, कहता कह्या न जाई ।
सैन करै मनहीं मन रहसै, गूँगै जानि मिठाई ॥
पहुप बिना एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया ।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया ॥
देखत कांच भया तन कंचन, बिन बानी मन माना ।
उड़्या विहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलहि समाना ॥
पूज्या देव बहुरि नहीं पूजौं, न्हाये उदिक न नाऊं ।
भागा भ्रम ये कही कहंता, आये बहुरि न आऊं ॥
आपै मैं तब आपा निरष्या, अपन पैं आपा सूझ्या ।
आपै कहत सुनत पुनि अपना, अपन पैं आपा बूझ्या ॥
अपनैं परचै लागी तारी, अपन पैं आप समाना ।
कहै कबीर जे आप बिचारै, मिटि गया आवन जाना ॥

इहि यत राम जपहु रे प्रानी, बूझौ अकथ कहाणी ।
हरि कर भाव होइ जा ऊपरि, जागति रैनि बिहानी ॥टेक॥
डाइन डारै सुनहां डोरै, स्यंघ रहैं बन घेरै ।
पंच कुटुम्ब मिलि झूझन लागे, बाजत सबद संघेरै ॥
रोहै मृग ससा बन घेरै, पारधी बाण न मेलै ।
सायर जलै सकल बन दाझै, मंछ अहेरा खेलै ॥
सोई पंडित सो तत ग्याता, जो इहि पदहि बिचारै ।
कहै कबीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोहिं तारै ॥

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई ॥टेक॥
पहलै पूत पीछैं भई माइ, चेला कै गुर लागै पाइ ॥

जल की मछरी तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई।
बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई॥
तलि करि साखा ऊपरि करि मूल, बहुत भांति जड़ लागे फूल।
कहै कबीर या पद कौं बूझै, ताकूं तीन्यूं त्रिभुवन सूझै॥

संतो भाई आई ग्यांन की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडाणीं, माया रहै न बाँधी॥टेक॥
हिति चित की द्वै थूनी गिरानी, मोह बलींडा तूटा।
त्रिस्नां छांनि परी धर ऊपरि, कुबधि का भांडा फूटा॥
जोग जुगति करि संतौं बाँधी, निरचू चुवै न पाणी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जांणी॥
आंधी पीछै जो जल बूटा, प्रेम हरी जन भीना।
कहै कबीर भान के प्रगटे, उदित भया तम षीना॥

हिंडोला तहां झूलै आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतन कौ विश्राम॥टेक॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।
झूलैं पंच पियारियां, तहां झूलै जीय मोर॥
द्वादस गम के अंतरा, तहां अमृत कौ ग्रास।
जिनि यहु अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास॥
सहज सुंनि को नेहरौ, गगन मंडल सिरि मौर।
दोऊ कुल हम आगरी, जौ हम झूलैं हिंडोल॥
अरध उरध की गंगा जमुनां, मूल कवल कौ घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट॥
नाद व्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुंण गाइ ले, गुर गंमि उतरौ पार॥

मैं बुनि करि सिराना हो राम, नालि करम नहिं ऊबरे॥टेक॥
दखिन कूंट जब सुनहां भूंका, तब हम सगुन बिचारा।
लरके परके सब जागत हैं, हम घरि चोर पसारा हो राम॥

ताना लीन्हा बाना लीन्हा, लीन्हें गोड के पऊवा।
इत उत चितवत कठवन लीन्हा मांड चलवना डऊबा हो राम ॥
एक पग दोइ पग त्रेपग, संधे संधि मिलाई।
करि परपंच मोट बंधि आयो, किल किल सबै मिटाई हो राम ॥
ताना तनि करि बाना बुनि करि, छाक परी मोहि ध्यान।
कहै कबीर मैं बुंनि सिराना, जानत है भगवाना हो राम ॥

मन रे जागत रहिये भाई।
गाफिल होइ बसत मति खोवै, चोर मुसै घर जाई ॥टेक॥
षट चक्र की कनक कोठड़ी, बस्त भाव है सोई।
ताला कूँची कुलक के लागे, उघड़त बार न होई ॥
पंच पहरवा सोइ गए हैं, बसतैं जागण लागी।
जुरा मरण व्यापै कुछ नाहीं, गगन मंडल लै लागी ॥
करत विचार मन ही मन उपजी, ना कहीं गया न आया।
कहै कबीर संसा सब छूटा, राम रतन धन पाया ॥

चलन चलन सब को कहत हैं, ना जानौं बैकुंठ कहां है ॥टेक॥
जोजन एक प्रमिति नहीं जानैं, बातनि हीं बैकुंठ बखानै।
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नहिं हरि चरन निवासा ॥
कहें सुनें कैसे पतिअइये, जब लग तहां आप नहीं जइये।
कहै कबीर यहु कहिये काहि, साध संगति बैकुंठहि आहि ॥

अपनै मैं रंगि आपनपौ जानूँ, जिहि रँगि जानि ताही कूं मानूं ॥टेक॥
अभि अंतरि मन रंग समाना, लोग कहैं कबीर बौराना।
रंग न चीन्हैं मूरिख लोई, जिहि रँगि रँग रह्या सब कोई ॥
जे रंग कबहूं न आवै न जाई, कहै कबीर तिहिं रह्या समाई।

झगरा एक नबेरौ राम, जे तुम्ह अपनै जन सूँ काम ॥टेक॥
ब्रह्मा बड़ा कि जिनि रु उपाया बेद बड़ा कि जहां थैं आया।
यहु मन बड़ा कि जहां मन मानैं, राम बड़ा कि रामहिं जानैं ॥
कहै कबीर हूं खरा उदास, तीरथ बड़े कि हरि के दास।

दास रामहिं जानि है रे, और न जानैं कोइ ॥टेक॥
काजल देइ सबै कोई, चषि चाहन मांहि बिनान।
जिनि लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परवान॥
बहुत भगति भौ सागरा, नाना बिधि नाना भाव।
जिहि हिरदै श्री हरि भेटिया, सो भेद कहूँ कहूँ ठाउं॥
दरसन संमि का कीजिए, जौ गुन नहीं होत समान।
सींधव नीर कबीर मिल्यौ है, फटक न मिलै पखान॥

मैं डोरै डोरै जाऊंगा, तो मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥टेक॥
सूत बहुत कछु थोरा, ताथैं लाइ लै कंथा डोरा।
कंथा डोरा लागा, तब जुरा मरण भौ भागा॥
जहां सूत कपास न पूनी, तहां बसै इक मूनीं।
उस मूनीं सूं चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा॥
मेर डंड इक छाजा, तहां बसै इक राजा।
तिस राजा सूँ चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा॥
जहां बहु हीरा धन मोती, तहां तत लाइ लै जोती।
तिस जोतिहि जोति मिलाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा॥
जहां ऊगै सूर न चंदा, तहां देष्या एक अनंदा।
उस आनंद सूं चित लाऊंगा, तो मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा॥
मूल बंध इक पावा तहां सिद्ध गणेस्वर रावा।
तिस मूलहिं मूल मिलाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा॥
कबीर तालिब तोरा तहां गोपत हरी गुर मोरा।
तहां हेत हरी चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा॥

भाई रे बिरले दोसत कबीर के यहु तत बार बार कासों कहिये।
भानण घड़ण संवारण सम्रथ ज्यूं राखै त्यूं रहिये ॥टेक॥
आलम दूनी सबै फिरि खोजी हरि बिन सकल अयाना।
छह दरसन छयानवैं पाषंड आकुल किनहूँ न जाना॥
जप तप संजम पूजा अरचा जोतिग जग बौराना।

कागद लिखि लिखि जगत भुलाना मनहीं मन न समाना ॥
कहै कबीर जोगी अरु जंगम ए सब झूठी आसा ।
गुरु प्रसादि रटौ चात्रिग ज्यूं निहचै भगति निवासा ॥

किंतेक सिव संकर गए ऊठि, राम समाधि अजहूँ नहीं छूटि ॥टेक॥
प्रलै काल कहूँ किंतेक भाष, गये इंद्र से अगणित लाष ।
ब्रह्मा खोजि परयौ गहि नाल, कहै कबीर वै राम निराल ॥
सो कछू बिचारहु पंडित लोई, जाके रूप न रेष बरण नहीं कोई ॥टेक॥
उपजै प्यंड प्रान कहां थैं आवै, मृवा जीव जाइ कहां समावै ।
इंद्री कहां करहि विश्रामा, सो कत गया जो कहता रामा ॥
पंचतत तहां सबद न स्वादं, अलष निरंजन विद्या न बादं ।
कहै कबीर मन मनहि समाना तब आगम निगम झूठ करि जाना ॥
पंडित बात बंदते झूठा,
राम कह्यां दुनियां गति पावै, षांड कह्या मुख मीठा ॥ टेक ॥
पावक कह्यां पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई ।
भोजन कह्यां भूख जे भाजै, तौ सब कोइ तिरि जाई ॥
नरकै साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै ।
जो कबहूँ उड़ जाइ जँगल में, बहुरि न सुरतैं आनै ॥
साची प्रीति विषै माया सूं, हरि भगतनि सूं हांसी ।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बांध्यौ जमपुरि जासी ॥
जौ पैं करता बरण बिचारै, तौ जनमत तिनि डांडि किन सारै ॥ टेक ॥
उतपति ब्यंद कहां थै आया, जोति धरी अरु लागी माया ॥
नहीं को ऊंचा नहीं को नीचा, जाका प्यंड ताही का सींचा ॥
जे तूं बांभन बंभनी जाया, तौ आन बाट ह्वै काहे न आया ॥
जे तूं तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतना क्यूं न कराया ॥
कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि राम न होई ॥

कथता बकता सुरता सोई, आप बिचारै ग्यानी होई ॥ टेक ॥
जैसैं अगिन पवन का मेला, चंचल चपल बुधि का खेला ।

नव दरवाजे दसूं दुवार, बूझि रे ग्यानी ग्यान बिचार ॥
देही माटी बोलै पवना, बूझि रे ग्यानी मूवा स कौना ।
मुई सुरति बाद अहंकार, वह न मूवा जो बोलनहार ॥
जिस कारनि तटि तीरथि जाहीं, रतन पदारथ घटहीं माहीं ।
पढ़ि पढ़ि पंडित बेद वखांणैं, भीतरि हूती बसत न जाणैं ॥
हूं न मूवा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जो रह्या समाइ ।
कहै कबीर गुरु ब्रह्म दिखाया, मरता जाता नजरि न आया ॥

हम न मरैं मरिहैं संसार, हम कूं मिल्या जियावनहारा ॥टेक॥
अब न मरौं मरनै मन माना, तेई मुए जिनि राम न जाना ।
साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवै ॥
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूं मरिहैं ।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भए सुख सागर पावा ॥

कौन मरै कौन जनमै आई, सरग नरक कौनै गति पाई ॥टेक॥
पंचतत अबिगत थैं उतपनां, एकैं किया निवासा ।
बिछुरे तत फिरि सहजि समाना, रेख रही नहीं आसा ॥
जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथौ गियानी ॥
आदैं गगनां अंतैं गमनां, मधे गगनां भाई ।
कहै कबीर करम किस लागै, छूठी संक उपाई ॥

कौन मरै कहु पंडित जना, सो समझाइ कहौ हम सनां ॥टेक॥
माटी माटी रही समाई, पवनै पवन लिया सँगि लाई ।
कहै कबीर सुनि पंडित गुनी, रूप मूवा सब देखै दुनीं ॥

जे को मरै मरन है मीठा, गुर प्रसादि जिनहीं मरि दीठा ॥टेक॥
मूवा करता मुई ज करनी, मुई नारि सुरति बहु धरनी ॥
मूवा आपा मूवा मान, परपंच लेइ मूवा अभिमान ।
राम रमे रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अबिनासी हूवा ॥

जस तूं तस तोहिं कोई न जांन, लोग कहैं सब आनहि आन ॥टेक॥
चार बेद चहुँ मत का बिचार, इहिं भ्रमि भूलि परयौ संसार ।
सुरति सुमृति दोइ कौ बिसवास, बाझि परयौ सब आसा पास ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मैं बपुरौ धूं का मैं का कर ।
जिहि तुम्ह तारौ सोई पैं तिरई, कहै कबीर नांतर बांध्यौ मरई ॥

लोका तुम्ह ज कहत हौ नंद कौ नंदन नंद कहौ धूं काकौ रे ।
धरनि अकास दोऊ नहिं होते, तब यहु नंद कहां थौ रे ॥टेक॥
जांमैं मरै न संकुटि आवै, नांव निरंजन जाकौ रे ।
अबिनासी उपजै नहिं बिनसै, संत सुजस कहैं ताकौ रे ॥
लष चौरासी जीव जंत मैं, भ्रमत भ्रमत नंद थाकौ रे ।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो, भगति करै हरि ताकौ रे ॥

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई । अबिगति की गति लखी न जाई ॥टेक॥
चारि बेद जाकै सुमृत पुराना, नौ व्याकरना मरम न जाना ।
सेस नाग जाकै गरड़ समाना, चरन कवल कवला नहिं जाना ॥
कहै कबीर जाकै भेदै नाहीं, निज जन बैठे हरि की छाँहीं ॥

मैं सबनि मैं औरनि मैं हूँ सब । मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो,
कोई कहौ कबीर कोई कहौ राम राई हो ॥टेक॥
ना हम बार बूढ़ नाहीं हम, ना हमरै चिलकाई हो ।
पठए न जाऊं अरवा नहीं आऊं, सहजि रहु हरि आई हो ॥
वोढन हमरै एक पछेवरा लोक बोलैं इकताई हो ।
जुलहै तनि बुनि पान न पावल, फारि बुनी दस ठाँई हो ॥
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल, तब हमारौ नाउं राम राई हो ।
जग मैं देखौं जग न देखै मोहि, इहि कबीर कछु पाई हो ॥

लोका जानि न भूलौ भाई ।
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ॥टेक॥
अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा ।

ता नूर थैं सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा ॥
ता अला की गति नहीं जानीं, गुरि गुड़ दीया मीठा ।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा ॥

राम मोंहि तारि कहां लै जैहौ ।
सो बैकुंठ कहौ धूं कैसा, करि पसाव मोहि दैहो ॥ टेक ॥
जे मेरे जीव दोइ जानत हौ, तौ मोहि मुकति बताओ ।
एक मेक रमि रह्या सबनि मैं, तौ काहे भरमावौ ॥
तारण तिरण जबै लग कहिए, तब लग तत न जाना ।
एक राम देख्या सबहिन मैं, कहै कबीर मन माना ॥

सोहं हंसा एक समान, काया के गुण आनहिं आन ॥ टेक ॥
माटी एक सकल संसारा, बहु बिधि भांडे घड़ै कुँभारा ॥
पंच वरन दस दुहिये गाइ, एक दूध देखौ पतियाइ ॥
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभुवन नाथ रह्या भरपूर ॥

प्यारे रांम मन ही मना ।
कासूं कहूँ कहन कौं नाहीं, दूसर और जनां ॥ टेक ॥
ज्यूं दरपन प्रतिब्यंब देखिए, आप दवासूं सोई ।
संसौ मिटयौ एक कौ एकै, महा प्रबल जब होई ॥
जौ रिझऊं तौ महा कठिन है, बिन रिझयैं थैं सब खोटी ।
कहै कबीर तरक दोइ साधै, ताकी मति है मोटी ।
काजी कौन कतेब बषानैं ।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जानैं ॥ टेक॥
सकति से नेह पकरि करि सुनति, यहु नबदूं रे भाई ।
जौर षुदाइ तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई ॥
हौं तौ तुरक किया करि सुनति, औरति सौं का कहिये ।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये ॥
छाड़ि क़तेब राम कहि काजी, खून करत हौ भारी ।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहे झषमारी ॥

पढ़ि ले काजी बंग निवाजा, एक मसीति दसौं दरवाजा ॥ टेक ॥
मन करि मका कबिला करि देही, बोलनहार जगत गुर येही ।
उहां न दोजग भिस्त मुकांमां, इहां ही रांम इहां रहिमांनां ॥
बिसमल तामस भरंम कदूरी, पंचूं भषि ज्यूं होइ सबूरी ।
कहै कबीर मैं भया दिवाना, मनवां मुसि मुसि सहजि समाना ॥

मुलां करि ल्यौ न्याव खुदाई ।
इहि बिधि जीव का भरम न जाई ॥ टेक ॥
सरजी आनैं देह बिनासै, माटी बिसमल कीता ।
जोति सरूपी हाथि न आया, कहौ हलाल क्या कीता ॥
बेद कतेब कहौ क्यूं झूठा, झूठा जो न बिचारै ।
सब घटि एक एक करि जानैं, भौ जा करिं मारै ॥
कुकड़ी मारै बकरी मारै, हक हक करि बोलै ।
सबै जीव सांईं के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै ॥
दिल नहीं पाक पाक नहीं चीन्हां, उसदा खोज न जांनां ।
कहै कबीर भिसति छिटकाई, दोजग ही मन माना ॥

या करीम बलि हिकमत तेरी, खाक एक सूरति बहु तेरी ॥ टेक ॥
अर्ध गगन मैं नीर जमाया, बहुत भांति करि नूरनि पाया ॥
अवलि आदम पीर मुलांनां, तेरी सिफति करि भए दिवाना ॥
कहै कबीर यहु हेतु बिचारा, या रब या रब यार हमारा ॥

काहे री नलिनी तू कुमिलानी, तेरे ही नालि सरोवर पानी ॥ टेक ॥
जल मैं उतपति जल मैं बास, जल मैं नलनी तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि ॥
कहै कबीर जे उदिक समांन, ते नहीं मूए हमारे जान ॥

इब तूं हसि प्रभू मैं कछु नाहीं, पंडित पढ़ि अभिमांन नसाहीं ॥ टेक ॥
मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हां, तब लग मैं करता नहीं चीन्हां ॥
कहै कबीर सुनहु नर नाहा, ना हम जीवत न मूंवाले माहा ॥

अब का डरौं डर डरहि समांनां, जब थैं मोर तोर पहिचाना ।। टेक ।।
जब लग मोर तोर करि लीन्हा, भै भै जनमि जनमि दुख दीन्हां ।।
आगम निगम एक करि जाना, ते मनवां मन मांहि समांनां ।।
जब लग ऊंच नीच करि जाना, ते पसुवा भूले भ्रम नाना ।।
कहै कबीर मैं मेरी खोई, तबहि रांम अवर नहीं कोई ।।

अवधू जोगी जग थैं न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा ।। टेक ।।
बसै गगन मैं दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा ।
चढ़ि अकास आसण नहीं छाड़ैं, पीवै महारस मीठा ।।
परगट कंथां मांहै जोगी, दिल मैं दरपन जोवै ।
सहंस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै ।।
ब्रह्म अगनि मैं काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै ।
कहै कबीर सोई जोगेस्वर, सहज सुंनि ल्यौ लागै ।।

अवधू गगन मंडल घर कीजै ।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीवै ।। टेक ।।
मूल बांधि सर गगन समाना, सुषमन यों तन लागी ।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहां जोगणी जागी ।।
मनवां जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा ।
कहै कबीर जिय संसा नाहीं, सबद अनाहद बागा ।।

अवधू मेरा मन मतिवारा ।
उन्मनि चढ्या गगन रस पीवै, त्रिभवन भया उजियारा ।। टेक ।।
गुड़ करि ग्यांन ध्यांन करि महुवा, भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समांनीं, पीवै पीवन हारा ।।
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महारस भारी ।
काम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी ।।
सुनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै ।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै ।।

बोलौ भाई रांम की दुहाई ।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ॥ टेक ॥
इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं, ब्रह्म अगिन परजारी ।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ॥
मन मतिवाला पीवै रांम रस, दूजा कछू न सुहाई ।
उलटी गंग नीर बहि आया, अंमृत धार चुवाई ॥
पंच जने सो सँग कर लीन्हें, चलत खुमारी लागी ।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ॥
सहज सुंनि मैं जिन रस चाष्या, सतगुर थैं सुधि पाई ।
दास कबीर इहि रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई ॥

भाई रे चूंन बिलूंटा खाई ।
बाघनि संगि भई सबहिन कै, खसम न भेद लहाई ॥ टेक ॥
सब घर फोरि बिलूंटा खायौ, कोई न जानै भेव ।
खसम निपूतौ आंगणि सूतौ, रांड न देई लेव ॥
पाड़ोसनि पनि भई बिरांनी, मांहि हुई घर घालै ।
पंच सखी मिलि मंगल गावैं, यहु दुख याकौं सालै ॥
द्वै द्वै दीपक घरि घरि जोया, मंदिर सदा अँधारा ।
घर घेहर सब आप सवारथ, बाहरि किया पसारा ॥
होत उजाड़ सबै कोई जानै, सब काहू मनि भावै ।
कहै कबीर मिलै जे सतगुर, तौ यहु चून छुड़ावै ॥

माया तजूं तजी नहीं जाइ । फिर फिर माया मोहि लपटाइ ॥टेक॥
माया आदर माया मांन, माया नहीं तहां ब्रह्म गियांन ॥
माया रस माया कर जान, माया कारनि तजै परान ॥
माया जप तप माया जोग, माया बांधे सबही लोग ॥
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहूँ पासि ॥
माया माता माया पिता, अति मांया अस्तरी सुता ॥
मांया मारि करै ब्यौहार, कहै कबीर मेरे राम अधार ॥

काहे रे मन दह दिसि धावै, विषिया संगि संतोष न पावै ॥टेक॥
जहां जहां कलपै तहां तहां बंधना, रतन कौ थाल कियौ तै रंधना ॥
जौ पै सुख पईयत इन मांहीं, तौ राज छाड़ि कत बन कौं जाहीं ॥
आनंद सहत तजौ विष नारी, अब क्या झीषै पतित भिषारी ॥
कहै कबीर यहु सुख दिन चारी, तजि विषिया भजि चरन मुरारी ॥

जियरा जाहिं गौ मैं जांनां
जो देख्या सो बहुरि न पेख्या, माटी सूं लपटाना ॥टेक॥
बाकुल बसतर किता पहरिवा, का तप बनखंडि बासा ।
कहा मुगधरे पांहन पूजै, काजल डारै गाता ॥
कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा, लोका पंथि लगाई ।
सुनौ संतौ सुमिरौ भगत जन, हरि बिन जनम गवाई ॥

सांई मेरे मन साजि दई एक डोली, हस्त लोक अरु मैं तैं बोली ॥टेक॥
इक झंझर सम सूत खटोला, त्रिसनां बाव चहूँ दिसि डोला ॥
पांच कहार का मरम न जाना, एकै कह्या एक नहीं मांनां ॥
भूमर घाम उहार न छावा, नैहरि जात बहुत दुख पावा ॥
कहै कबीर बर बहु दुख सहिए, रांम प्रीति करि संगहीं रहिये ॥

झूठे तन कौं कहा रखइए, मरिये तौ पल भरि रहण न पइये ॥टेक॥
षीर षांड़ घृत प्यंड संवारा, प्रान गये ले बाहरि जारा ॥
चोबा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरै काठ के संगा ॥
दास कबीर यहु कीन्ह बिचारा, इक दिन ह्वैहै हाल हमारा ॥

देखहु यहु तन जरता है, घड़ी पहर बिलंबो रे भाई जरता है ॥टेक॥
काहे कौं एता किया पसारा, यहु तन जरि बरि ह्वैहै छारा ॥
नव तन द्वादस लागी आगी, मुगध न चेतै नख सिख जागी ॥
काम क्रोध घट भरे बिकारा, आपहि आप जरै संसारा ॥
कहै कबीर हम मृतक समाना, राम नाम छूटे अभिमांनां ॥

तन राखनहारा को नाहीं, तुम्ह सोचि विचारि देखौ मन मांही ॥टेक॥
जौर कुटंब अपनौं करि पारयौ, मूंड ठोकि ले बाहरि जारयौ ॥

दगाबाज लूटैं अरु रोवैं, जारि गाड़ि पुर षोजहिं षोवैं ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हरि बिन राखनहार न कोई ॥

राम थोरे दिन कौं का धन करनां, धंधा बहुत निहाइति मरना ॥टेक॥
कोटी धज साह हस्ती बंध राजा, क्रिपन को धन कौनैं काजा ॥
धन कै गरवि राम नहीं जाना, नांगा ह्वै जम पै गुदराना ॥
कहै कबीर चेतहु रे भाई, हंस गया कछु संग न जाई ॥

मेरी मेरी दुनियां करते, मोह मछर तन धरते ।
आगैं पीर मुकदम होते, वै भी गए यौं करते ॥ टेक ॥
किसकी ममां चचा पुनि किसका, किसका पंगुड़ा जोई ।
यहु संसार बजार मंड्या है, जानैगा जन कोई ॥
मैं परदेसी काहि पुकारौं, इहाँ नहीं को मेरा ।
यहु संसार ढूंढि सब देख्या, एक भरोसा तेरा ॥
खांहि हलाल हराम निवारैं, भिस्त तिनहु कौं होई ।
पंच तत का मरम न जानै, दोजगि पड़िहैं सोई ॥
कुटंब कारणि पाप कमावै, तू जांणैं घर मेरा ।
ए सब मिले आप सवारथ, इहां नहीं को तेरा ॥
सायर उतरौ पंथ सँवारौ, बुरा न किसी का करणां ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, ज्वाब खसम कू भरणां ॥

रे या मैं क्या मेरा क्या तेरा, लाज न मरहि कहत घर मेरा ॥ टेक ॥
चारि पहर निस भोरा, जैसे तरवर पंषि बसेरा ॥
जैसे बनियें हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहार ॥
ये ले जारें वै ले गाड़े, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाड़े ।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह बिनसि रहैगा सोई ॥

मर जांणैं अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया ॥ टेक ॥
मारग छांड़ि कुमारग जौवैं, आपण मरै और कूं रोवैं ।
कछू एक किया कछू एक करणां, मुगध न चेतै निहचै मरणां ॥
ज्यूँ जल बूंद तैसा संसारा, उपजत बिनसत लगै न बारा ।
पंच पंषुरिया एक ससीरा, कृष्ण कवल दल भवर कबीरा ॥

मन रे अहरषि बाद न कीजै, अपनां सुकृत भरिभरि लीजै ॥टेक॥
कुँभरा एक कमाई माटी, बहु बिधि जुगति बणाई।
एकनि मैं मुकताहलि मोती, एकन ब्याधि लगाई॥
एकनि दीना पाट पटंबर, एकनि सेज निवारा।
एकनि दीनी गरै गूदरी, एकनि सेज पयारा॥
सांची रही सूँम की संपति, मुगध कहै यहु मेरी।
अंत काल जब आइ पहूंता, छिन मैं कीन्ह न बेरी॥
कहत कबीर सुनौं रे संतौ, मेरी मेरी सब झूठी।
चड़ा चीथड़ा चूहड़ा ले गया, तणीं तणगती टूटी॥

हड़ हड़ हड़ हड़ हसती है, दीवानपना क्या करती है॥
आडी तिरछी फिरती है, क्या च्यौं च्यौं म्यौं म्यौं करती है ॥टेक॥
क्या तू रंगी क्या तूं चंगी, क्या सुख लोड़ै कीन्हा।
मीर मुकदम सेर दिवांनी, जंगल केर षजीना॥
भूले भरमि कहा तुम्ह राते, क्या मदुमाते माया।
रांम रंगि सदा मतिवाले, काया होइ निकाया॥
कहत कबीर सुहाग सुंदरी, हरि भजि ह्वै निस्तारा।
सारा पलक खराब किया है, मानस कहा बिचारा॥

हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न औगुंण बकसहु मेरा ॥ टेक॥
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहैं न तेते॥
कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी॥

मैं गुलाम मोहिं बेचि गुसाईं,
तन मन धन मेरा रांमजी कै ताईं ॥ टेक॥
आनि कबीरा हाटि उतारा। सोई गाहक सोई बेचनहारा॥
बेचै राम तो राखै कौन। राखै राम तों बेचै कौन॥
कहै कबीर मैं तन मन जारया। साहिब अपना छिन न बिसारया॥

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव। हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ॥टेक॥
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया। राम बड़े मैं छुटक लहुरिया॥

किया स्यंगार मिलन कै ताईं । काहे न मिलौ राजा राम गुसाईं ॥
अब की बेर मिलन जो पाऊं । कहै कबीर भौजलि नहिं आऊं ॥

राम बिन तन की ताप न जाई । जल मैं अगनि उठी अधिकाई ॥टेक॥
तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीना । जल मैं रहौं जलहिं बिन षींना ॥
तुम्ह पिंजरा मैं सुवना तोरा । दरसन देहु भाग बड़ मोरा ॥
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला । कहैं कबीर रांम रंमू अकेला ॥

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई ।
जा दिन तेरो कोई नाहीं ता दिन राम सहाई ॥ टेक ॥
तंत न जानूं मंत न जानूं जानूं सुन्दर काया ।
मीर मलिक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया ॥
वेद न जानूं भेद न जानूं, जानूं एकहि रामा ।
पंडित दिसि पछिवारा कीन्हा, मुख कीन्हौं जित नामा ॥
राजा अंबरीक कै कारणि, चक्र सुदरसन जारै ।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन ऊबारै ॥

डगमग छांड़ि दे मन बौरा ।
अब तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हों हाथ सिंधौरा ॥टेक॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छांड़ौ ।
सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न संचै भाड़ौ ॥
लोक बेद कुल की मरजादा, इहै गलै मैं पासी ।
आधा चलि करि पीछा फिरिहै, ह्वैहै जग मैं हांसी ॥
यहु संसार सकल है मेला, राम कहैं ते सूचा ।
कहै कबीर नाव नहीं छांड़ौं; गिरत परत चढ़ि ऊंचा ॥

का सिधि साधि करौं कुछ नाहीं, राम रसाइंन मेरी रसना माहीं ॥टेक॥
नहीं कुछ ग्यांन ध्यान सिधि जोग, ताथैं उपजै नाना रोग ।
का बन मैं बसि भये उदास, जे मन नहीं छाड़ै आसा पास ॥
सब कृत काच हरी हिंत सार, कहै कबीर तजि जग ब्यौहार ।

चलौ बिचारी रहौ सँभारी, कहता हूँ ज पुकारी।
राम नाम अंतर गति नाही तौ जनम जुवा ज्यूं हारी ॥ टेक ॥
मूंड़ मुड़ाइ फूलि का बैठे, काननि पहरि मंजूसा।
बाहरि देह षेह लपटानी, भीतरि तौ घर मूसा ॥
गालिब नगरी गांव बसाया, हाम काम अहंकारी।
घालि रसरिया जब जम खैंचै, तब का पति रहै तुम्हारी ॥
छांड़ि कपूर गांठि विष बांध्यौ, मूल हूवा न लाहा।
मेरे राम की अभय पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा ॥

ते हरि के आवैहि किहि कामा। जे नहीं चीन्हैं आतमरामा ॥ टेक ॥
थोरी भगति बहुत अहंकारा। ऐसे भगता मिलै अपारा ॥
भाव न चीन्हैं हरि गोपाला। जानि क अरहट कै गलि माला ॥
कहै कबीर जिनि गया अभिमाना। सो भगता भगवंत समाना ॥

कहा भयौ रचि स्वांग बनायौ। अंतरिजामीं निकटि न आयौ ॥टेक॥
बिषई बिषै ढिठावै गावै। राम नाम मनि कबहूँ न भावै ॥
पापी परलै जाहि अभागे। अमृत छाड़ि बिषै रसि लागे ॥
कहै कबीर हरि भगति न साधी। भग मुषि लागि मूये अपराधी ॥

सब दुनीं सयानीं मैं बौरा। हम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ॥टेक॥
मैं नाहीं बौरा रांम कियौ बौरा। सतगुर जारि गयौ भ्रम मोरा ॥
बिद्या न पढूं बाद नहीं जानूं। हरि गुन कथत सुनत बौरानूं ॥
काम क्रोध दोऊ भये विकारा। आपहि आप जरै संसारा ॥
मीठी कहा जाहि जो भावै। दास कबीर राम गुन गावै ॥

अब मैं रांम सकल सिधि पाई। आन कहूँ तौ राम दुहाई ॥टेक॥
इहिं चिति चाषि सबै रस दीठा। रांम नाम सा और न मीठा ॥
औरै रसि ह्वै है कफ गाता। हरि रस अधिक अधिक सुखदाता ॥
दूजा वणिज नहीं कछू बाषर। राम नाम दोऊ तत आषर ॥
कहै कबीर जे हरि रस भोगी। ताकूं मिल्या निरजन जोगी ॥

रे मन जाहि जहां तोहि भावै । अब न कोई तेरै अंकुस लावै ॥टेक॥
जहां जहां जाइ तहां तहां रामां । हरि पद चीन्हि कियौ बिश्रामा ॥
तन रंजित तब देखियत दोई । प्रगट्यौ ग्यांन जहां तहां सोई ॥
लीन निरंतर बपु बिसराया । कहै कबीर सुख सागर पाया ॥

बहुरि हम काहे कूं आवहिंगे ।
बिछुरे पंचतत की रचना, तब हम रांमहिं पांवहिंगे ॥टेक॥
पृथी का गुण पांणीं सोष्या, पानी तेज मिलांवहिंगे ।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगावंहिंगे ॥
जैसे बहु कंचन के भूषन, ये कहि गालि तवावहिंगे ।
ऐसै हम लोक बेद के बिछुरे, सुंनिहि मांहि समांवहिंगे ॥
जैसे जलहि तरंग तरंगनीं ऐसै हम दिखलांवहिंगे ।
कहै कबीर स्वामी सुखसागर, हंसहिं हंस मिलांवहिंगे ॥

अवधू काम धेन गहि बांधी रे ।
भांडा भंजन करै सबहिन का, कछू न सूझै आंधी रे ॥टेक॥
जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अंमृत सरवै ।
कौली घाल्या बीडरि चालै, ज्यूं घेरौं त्यूं दरवै ॥
तिहिं धेन थैं इंछ्या पूगी, पाकडि खूंटै बांधी रे ।
ग्वाड़ा माहैं आनंद उपनौं, खूंटै दोऊ बांधी रे ॥
साई माइ सासु पुनि साईं, साईं याकी नारी ।
कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु बिचारी ॥

ऐसा ग्यान बिचारि लै लै लाइ लै ध्याना ।
सुंने मंडल मैं घर किया, जैसे रहै सिचांना ॥टेक॥
उलटि पवन कहां राखिये, कोई मरम बिचारै ।
साधै तीर पताल कूं, फिरि गगनहि मारै ॥
कंसा नाद बजाव ले, धुनि निमसि ले कंसा ।
कंसा फूटा पंडिता, धुंनि कहां निवासा ॥
प्यंड परे जीव कहां रहै, कोई मरम लखावै ।
जीवत जिस घरि जाइये, ऊंधै मुषि नहीं आवै ॥

भील लुक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै।
कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै ॥

अवधू जागत नींद न कीजै।
काल न खाइ कलप नहीं ब्यापै, देही जुरा न छीजै ॥टेक॥
उलटी गंग समुद्रहिं सोखै, ससिहर सूर गरासै।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मैं ब्यंब प्रकासै ॥
डाल गह्या थैं मूल न सूझै, मूल गह्यां फल पावा।
बंबई उलटि शरप कौं लागी, धरणि महा रस खावा ॥
बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै।
उलटै धनकि पारधी मार्यौ, यहु अचरज कोइ बूझै ॥
औंधा घड़ा न जल मैं डूबै, सूधा सूभर भरिया।
जाकौं यहु जग घिण करि चालै, ता प्रसाद निस्तरिया ॥
अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जाणै सब कोई।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै विरला कोई ॥
गावणहारा कदे न गावै अणबोल्या नित गावै।
नटवर पेषि पेषना पेषै अनहद बेन बजावै ॥
कहणीं रहणीं निज तत जाणैं, यहु सब अकथ कहाणीं।
धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसां की वाणीं ॥
बाझ पियालै अमृत सोख्या, नदी नीर भरि राख्या।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाष्या ॥

राम गुन वेलड़ी रे, अवधू गोरखनाथि जांणी।
नाति सरूप न छाया जाकै, बिरध करै बिन पांणीं ॥टेक॥
बेलड़िया द्वै अणीं पहूंती, गगन पहूंती सैली।
सहज बेलि जब फूलणि लागी, डाल कूपल मेल्ही ॥
मन कुंजर जाइ बाड़ी बिलंब्या, सतगुर बाही वेली।
पंच सखी मिलि पवन पयंप्या, बाड़ी पांणी मेल्ही ॥
काटत बेली कूपले मेल्ही, सींचताड़ी कुमिलांणीं।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, सहज निरंतर जाणीं ॥

राम राइ अबिगत बिगत न जानं, कहि किम तोहि रूप बषानं ॥टेक॥
प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पाणीं।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौन बिनाणीं ॥
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत कि रेतं।
प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज कि खेतं ॥
प्रथमे दिवस कि रैणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप किं पुन्यं।
कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कुछ आहि कि सुन्यं ॥

अवधू सो जोगी गुर मेरा, जो या पद का करै नबेरा ॥टेक॥
तरवर एक पेड़ बिन ठाढा, बिन फूलां फल लागा।
साखा पत्र कछु नहीं वाकै, अष्ट गगन मुख बागा ॥
पैर बिन निरति करां बिन बाजै, जिभ्या हीणां गावै।
गावणहारे कै रूप न रेखा, सतगुर होइ लखावै ॥
पंषी का षोज मींन का मारग, कहै कबीर बिचारी।
अपरंपार पार परसोंतम, वा मूरति की बलिहारी ॥

अब मैं जांणिबौ रे केवल राइ की कहांणीं।
मंझा जोती रांम प्रकासै, गुर गमि बांणीं ॥ टेक ॥
तरवर एक अनंत मूरति, सुरता लेहु पिछांणीं ॥
साखा पेड़ फूल फल नांही, ताकी अंमृत बांणीं।
पुहप वास भंवरा एक राता, बारा ले उर धरिया ॥
सोलह मंझैं पवन झकोरै, आकासे फल फलिया।
सहज समाधि बिरष यहु सींच्या, धरती जल हर सोष्या।
कहै कबीर तास मैं चेला, जिनि यहु तरबर पेष्या ॥

रे मन बैठि कितै जिनि जासी, हिरदै सरोवर है अबिनासी ॥ टेक ॥
काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी।
काया मधे कवलापति, काया मधे बैकुंठबासी ॥
उलटि पवन षटचक्र निवासी, तीरथराज गंग तट बासी।
गगन मंडल रबि ससि दोइ तारा, उलटी कूंची लागि किवारा ॥
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यौ निनारा।

चितावनी

होली

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबहीं मोरी बारी ॥टेक॥
साज समाज पिया लै आये, और कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अँचरा पकरि कै, जोरत गँठिया हमारी।
सखी सब पारत गारी ॥ १ ॥

बिधि गति बाम कछु समझ परत ना, बैरी भई महतारी।
रोय रोय अँखियाँ मोर पोंछत, घरवाँ से देत निकारी।
भई सब कौ हम भारी ॥ २ ॥

गवन कराय पिया लै चाले, इत उत बाट निहारी।
छूटत गाँव नगर से नाता, छूटै महल अटारी।
करम गति टरै न टारी ॥ ३ ॥

नदिया किनारे बलम मोर रसिया, दीन्ह घुंघट पट टारी।
थरथराय तन काँपन लागे, काहू न देखि हमारी।
पिया लै आये गोहारी ॥ ४ ॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद लेहु बिचारी।
अब के गौना बहुरि नहिं औना, करिले भेंट अंकवारी।
एक बेर मिलि ले प्यारी ॥ ५ ॥

यही घड़ी यह वेला साधो ॥ टेक ॥
लाख खरच फिर हाथ न आवै, मानुष जनम सुहेला।
ना कोई संगी ना कोई साथी, जाता हंस अकेला ॥
क्यों सोया उठि जागु सबेरे, काल मरेदा सेला।
कहत कबीर गुरू गुन गावो, झूठा है सब मेला ॥

करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि बसिस्ट से पंडित ज्ञानी, सोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को, बन में बिपति परी ॥
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि, कहं वह मिरग चरी।

सीता को हरि लेगयो रावन, सोने की लंक जरी ॥
नीच हाथ हरिचंद बिकाने, बलि पाताल धरी ।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग, गिरगिट जोनि परी ॥
पाँडव जिनके आपु सारथी, तिन पर बिपति परी ।
दुर्जोधन को गर्ब घटायो, जदु कुल नास करी ॥
राहु केतु औ भानु चंद्रमा, बिधि से जाग परी ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, होनीं हो के रही ॥

बीती बहुत रही थोरी सी ॥ टेक ॥
खाट पड़े नर झींखन लागे, निकसि प्रान गयौ चोरी सी ।
भाई बंद कुटुंब अब आये, फूंक दियो मानां होरी सी ॥
कहै कबीर सुनो भई साधो, सिर पर देत हैं भौंरी सी ।

गुरुदेव

चल सतगुरु की हाट, ज्ञान बुधि लाइये ।
कीजे साहिब से हेत, परम पद पाइये ॥
सतगुरु सब कुछ दीन्ह, देन कछु ना रह्यो ।
हमहिं अभागिनि नारि, सुख तजि दुख लह्यो ॥
गई पिया के महल, पिया सँग ना रची ।
हृदे कपट रह्यो छाय, मान लज्जा भरी ॥
जहवाँ गैल सिलहली, चढ़ौं गिरि गिरि पड़ौं ।
उठौं सम्हारि सम्हारि, चरन आगे धरौं ॥
जो पिय मिलन की चाह, कौन तेरे लाज हो ।
अधर मिलो किन जाय, भला दिन आज हो ॥
भला बना संजोग, प्रेम का चोलना ।
तन मन अरपौ सीस, साहिब हँस बोलना ॥
जो गुरु रूठे होंय, तो तुरत मनाइये ।
हुइये दीन अधीन, चूक बकसाइये ॥
जो गुरु होंय दयाल, दया दिल हेरि हैं ।
कोटि करम कटि जायँ, पलक छिन फेरि हैं ॥

कहै कबीर समुझाय, समुझ हिरदे धरो।
जुगन जुगन करो राज, ऐसी दुर्मति परिहरो ॥

बिरह

बालम आओ हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे ॥टेक॥
सब कोइ कहै तुम्हारी नारी, मो को यह संदेह रे।
एक मेक ह्वै सेज न सोवै, तब लगि कैसो सनेह रे॥
अन्न न भावै नींद न आवै, गृह बन धरै न धीर रे।
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी, ज्यों प्यासे को नीर रे॥
है कोई ऐसा परउपकारी, पिय से कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भयो है, बिन देखे जिव जाय रे॥

होली

ये अँखियाँ अलसानी हो, पिय सेज चलो ॥ टेक ॥
खंभ पकरि पतंग अस डोलै, बोलै मधुरी बानी।
फुलन सेज बिछाय जो राख्यो, पिया बिना कुम्हिलानी॥
धीरे पाँव धरौ पलँगा पर, जागत ननद जिठानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, लोक लाज बिलछानी॥

प्रेम

प्रीति लगी तुम नाम की, पल बिसरै नाहीं।
नजर करो अब मिहर की, मोंहि मिलौ गुसाईं॥
बिरह सतावै मोहि को, जिव तड़पै मेरा।
तुम देखन की चाव है, प्रभु मिलो सबेरा॥
नैना तरसै दरस को, पल पलक ना लगै।
दर्दवंद दीदार का, निसि बासर जागै॥
जो अब कें प्रीतम मिलैं, करु निमिख न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्रान पियारा॥

मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥टेक॥
जो सुख पावो नाम भजन में, सो सुख नाहि अमीरी में।

भला बुरा सब को सुनि लीजै, कर गुजरान गरीबी में ॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी में ।
हाथ में कूंड़ी बगल में सोंटा, चारो दिसा जगीरी में ॥
आखिर यह तन खाक मिलैगा, कहा फिरत मगरूरी में ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिलै सबूरी में ॥

घूंघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे ॥ टेक ॥
घट घट में वहि सांई रमता, कटुक बचन मत बोल रे (तोको)
धन जोबन का गर्ब न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे (तोको)
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसा से मत डोल रे (तोको)
जोग जुगत से रंग महल में, पिय पाये अनमोल रे (तोको)
कहै कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे (तोको)

हमन हैं इस्क मस्ताना, हमन को होसियारी क्या ।
रहैं आज़ाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या ॥
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर बदर फिरते ।
हमारा यार है हम में, हमन को इंतजारी क्या ॥
खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकता है ।
हमन गुरु नाम साचा है, हमन दुनिया से यारी क्या ॥
न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़ें पियारे से ।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या ॥
कबीरा इस्क का माता, दुई को दूर कर दिल से ।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या ॥

नानक

गुरु नानक का जन्म लाहौर ज़िले के तलवंडी नामक गाँव में हुआ था। इनकी जन्मतिथि बैशाख सुदी तृतीया सं० १५२६ मानी गई है। बड़े प्रातःकाल सूर्योदय से कुछ पहले शुभ ब्राह्म मुहूर्त में ही इनका जन्म हुआ था, किंतु सुविधा के लिये इनके अनुयायी सिख लोग इनका जन्मोत्सव कार्तिकी पूर्णमासी को ही मानते हैं। इनके पिता का नाम कालू था और यह अपने यहाँ के सूबेदार बुलार पठान के यहाँ कारिंदे का काम करते थे। यह लोग जाति के वेदी खत्री थे। इनकी माता का नाम तृप्ता था।

शैशव काल से ही नानक की प्रवृत्ति पुण्य-कार्यों और साधु-सेवा की ओर थी। विचारशीलता और भावुकता का परिचय भी यह बाल्य-काल से ही देने लगे थे। इनका विद्यारंभ सात वर्ष की अवस्था में हुआ था। पहले इनको उर्दू और फ़ारसी की ही शिक्षा मिली थी। १९ वर्ष की अवस्था (सं० १५४५) में इनका विवाह गुरदासपुर की सुलक्षणी नाम की कन्या से हो गया और इससे इनके श्रीचंद और लक्ष्मीचंद नाम के दो पुत्र भी हुए। विवाह के बाद इनकी शिक्षा भी एक प्रकार से समाप्त हो गई और इनके पिता को इन्हें किसी काम-काज में लगा देने की चिंता हुई। पर इनकी चित्त-वृत्ति आरंभ से ही ऐहलौकिक कार्यों से उदासीन थी। जीविकोपार्जन संबंधी किसी काम में इन्होंने कभी दिलचस्पी नहीं ली। आत्मीयों के अधिक दबाव डालने पर इन्होंने कुछ दिन के लिये उस प्रदेश के तत्कालीन शासक दौलत ख़ाँ के यहाँ माल-ख़ाने की अफ़सरी स्वीकार कर ली थी। उस समय की दृष्टि से यह काफ़ी महत्त्वपूर्ण पद था पर वास्तव में एक दिन भी इस काम में इनका जी न लगा और अंत में विरक्त होकर इन्होंने इस काम को छोड़ ही दिया और फिर कुटुम्बियों तथा आत्मीय स्वजनों के बहुत-कुछ समझाने

बुझाने पर भी इन्होंने किसी सांसारिक व्यवसाय में हाथ नहीं डाला। आध्यात्मिक विषयों की ओर इनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति तो थी ही, क्रमशः वह उत्तरोत्तर विकसित ही होती गई यहाँ तक कि वह संसार के महान् धर्मयाजकों में इनका एक स्थान बना कर के ही शांत हुई। सिख संप्रदाय के प्रवर्त्तक होने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है।

इनके उर्वर मस्तिष्क तथा धर्मबुद्धि के विकास में इनकी सुदूरव्यापिनी तथा बहुसंख्यक यात्राएँ बहुत कुछ सहायक हुईं। इनका प्रारंभ यों हुआ। सुयोग या दैवयोग से इनको एक अपनी ही सी मनोवृत्ति वाला अनुचर भी मिल गया था। इसका नाम मर्दाना था। भृत्य और स्वामी दोनों ही ईशगुणगान और संगीत में बड़ी अभिरुचि रखते थे। भजनानंदी वीतराग साधुओं की गोष्ठी में बैठ हरिभजन में कालयापन की अपेक्षा इन्हें कोई काम न भाता था। अंत में जीविका-संबंधी कार्य तथा पारिवारिक संसर्ग से आध्यात्मिक अनुसंधान में विशेष विघ्न पड़ता देख नानक जी विवाह के ठीक ग्यारह वर्ष उपरांत (सं० १५५६) ज्ञान के अन्वेषण के लिये चल पड़े। इस यात्रा में इन्होंने आगरे से लेकर बिहार-बंगाल आदि देशों में घूमते हुए बर्मा तक के सब पूर्वी प्रदेशों की सैर की। कहा जाता है कि इस यात्रा में इन्हें ११ वर्ष लगे। इसी यात्रा में उनका कबीर से साक्षात्कार हुआ होगा। कबीर की अवस्था उस समय सौ वर्ष से ऊपर रही होगी। इनकी दूसरी यात्रा का आरंभ सं० १५६७ से होता है। इस बार वह दक्षिण की ओर गए और लंका तक के साधुओं का सत्संग किया। इनकी तीसरी और अंतिम यात्रा सब से बड़ी हुई। इसमें ये पश्चिमोत्तर प्रदेशों में भ्रमण करते हुए बलख, बुख़ारा, बग़दाद, रूम और मक्के-मदीने तक पहुँचे। इनकी काबा-यात्रा के संबंध में एक रोचक घटना प्रसिद्ध है। काबा के उपासनागृह में यह काबा की मूर्ति की ओर ही पैर करके सोए हुए थे। पास में कुछ मुसलमान भी पड़े हुए थे। उनमें से एक ने इन्हें पैर से ठुकराते हुए डपट कर पूँछा कि 'तू क़ाबे शरीफ़ की ओर पैर करके क्यों पड़ा हुआ है।' इस पर इन्होंने हँस कर कहा, 'जिधर ख़ुदा न हो उधर मेरा पैर फेर दे'। इस पर उसने घसीट

कर इनका पाँव दूसरी ओर कर दिया। इसी समय एक विचित्र घटना हुई। सारा मंदिर घूम गया और काबे की मूर्ति फिर इनके पैरों के सामने दिखाई पड़ने लगी। सब लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। बारी-बारी से उन लोगों ने सब दिशाओं की ओर इन का पाँव घुमाया, पर इनके पाँव के साथ-साथ काबा भी घूमता गया। इस पर लोगों ने इन्हें कोई दैवीशक्ति-सम्पन्न महापुरुष समझा और इनका बड़ा आदर-सम्मान किया। अस्तु, इसी यात्रा में इन्होंने नैपाल, भूटान, कश्मीर आदि प्रदेशों की प्रदक्षिणा भी की थी। इन की यह अंतिम यात्रा सं० १५७९ में समाप्त हुई। इस के बाद वह कर्तारपुर में आकर रहने और धर्मोपदेश करने लगे और वहीं सं० १५९५ में इनका स्वर्गवास हुआ। उस समय इनकी अवस्था ७० वर्ष के लगभग थी। कबीर को मरे इस समय २० वर्ष हो चुके थे।

इनके आध्यात्मिक तथा सामाजिक विचार कबीर से बहुत मिलते-जुलते हैं। अंतर यदि किसी बात में है तो केवल इसमें कि नानक के समय से एकेश्वरवाद तथा निराकारोपासना-संबंधी सिद्धांत व्यावहारिक दृष्टि से शिथिल हो चला। कबीर के अनुयायियों में ही मूर्तिपूजा और कर्मकांड के ढकोसलों का प्रवेश शनैः शनैः होने लगा।

नानक के पदों का संग्रह सिखों के छठवें गुरु अर्जुन ने सं० १६६१ में तैयार कराया। यही 'आदिग्रंथ' अथवा 'ग्रंथसाहब' के नाम से प्रसिद्ध है। सिख लोग इसी ग्रंथ को ईश्वर मान कर बड़े समारोह से पूजते हैं। नानक जी का सब से सुंदर भजन 'जपुजी' है जो कि प्रस्तुत संग्रह में दिया गया है। इनके अन्य प्राप्त ग्रंथ 'सुखमनी',[१] 'अष्टांग

[१] 'सुखमनी' के रचयिता गुरु नानकदेव नहीं थे, अपितु गुरु अर्जुनदेव थे जो सिखों के पांचवें गुरु भी कहलाते हैं। सिखों के दसों गुरुओं को 'नानक' की उपाधि प्राप्तथी जिस कारण उनकी विविध रचनाएँ बहुधा पहचान में नहीं आतीं और उन्हें संगृहीत करने वाले भ्रमवश आदिगुरु नानकदेव की रचना मान बैठते हैं। प० च०

जोग', और नानक जी की 'साखी' है। 'प्राणसंगली' नाम से स्थानीय बेलवेडियर प्रेस ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है जिससे प्रस्तुत संग्रह में पर्याप्त सहायता मिली है।

नानक की कविता के संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि इनकी शिक्षा बहुत साधारण थी, और जो कुछ थी वह भी फ़ारसी और पंजाबी (गुरुमुखी) की। ऐसी अवस्था में इनसे प्रथम श्रेणी की हिंदी कविता की आशा करना व्यर्थ है। केवल काव्यकला की दृष्टि से संत कवि शायद हिंदी साहित्य के अन्य सभी शाखाओं के कवियों से पिछड़े हुए हैं। यहां पर यह स्मरण रहे कि रामशाखा, कृष्णशाखा, तथा जायसी आदि प्रेमगाथाओं के कवियों को मैंने कबीर आदि संत कवियों से अलग रक्खा है। यों तो ये सभी एक प्रकार से भक्त या संत कवि कहे जा सकते हैं। अस्तु, नानक, दादू, भीखा, आदि की कविता केवल कला की दृष्टि से उच्च कोटि की नहीं हुई अवश्य, पर कोई भी हिंदी काव्य का विशद संग्रह इनकी कविता के बिना केवल इसलिये अपूर्ण समझा जायगा, कि जैसी भी हो इनकी कविता की विशेषता है, इनका स्वाभाविक और सहज सुन्दर रूप से ईश्वर और समाज-संबंधी एक नवीन संदेश। यह बात और किसी स्कूल में नहीं पाई जाती। नानक जी की कविता में भी, पंजाबी और फ़ारसीपने का आधिक्य होते हुए भी, यह विशेषता वर्तमान है। एक बात जो इनके पदों में सबसे निराली है, वह है संगीत का प्राचुर्य। यह पहुँचे हुए संगीतज्ञ थे, और ऐसी अवस्था में इनकी पंक्तियों में संगीत की मात्रा का अधिकार स्वाभाविक ही है।

साखी

नाम

पूंजी साचउ नामु तू, अखुटउ दरबु अपारु।
नानक बखरउ निरमलउ, धंनु साहु वापारु ॥
धनवंता इवही कहै, अवरी धन कउ जाउ।
नानकु निरधनु तितु दिनि, जितु दिनि बिसरै नाउ ॥
जिनकै पलै धनु वसै, तिनका नाउ फकीर।
जिनकै हिरदै तू वसहिं, ते नर गुणी गहीर ॥
धंनु सु कागदु कलम धंनु, धंनु भांडा धनु मसु।
धनु लेखारी नानका, जिनि नाम लिखाइआ सचु ॥

सतगुरु

नानक गुरु संतोखु रुखु, धरमु फूलु फल गिआनु।
रसि रसिआ हरिआ सदा, पकै करमि धिआनु ॥
कुंभे वधा जलु रहै, जल बिनु कुंभु न होइ।
गिआन का वधा मनु रहै, गुर बिनु गिआनु न होइ ॥

करता

जिनि कीआ तिनि देखिआ, आपे जाणै सोइ।
किसनो कहीऔ नानका, जाघरि वरतै सोइ ॥
नानक जंतु उपाइ कै, संभालै सभनाह।
जिनि करतै करणा कीआ, चिंताभिकरणाह ॥

संसार

दुख विचि जंमणु दुखि मरणु, दुखि वरतणु ससारि।
दुखु दुखु अगै आखीऔ, पड़ि पड़ि करहि पुकार ॥
मरणि न मूरतु पूछिआ, पुछी थितिं न वार।
इकनी लदिआ इकि लदिचले, इकनी बंधे भार ॥

चितावनी

रैणि गवाई सोइकै, दिवसु गवाइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है, कउड़ी बदले जाइ॥
रुगली धरती मालु धनु, बरतणि सरब जंजाल।
नानक मुसै गिआन विहूणी, खाइ गइआ जम कालु॥
मिटी मुसलमान की, पेड़ै पई कुमिआर।
घड़ि भांडे इटा कीआ, जलदी करे पुकार॥
जलि जलि रोवै वपुड़ी, झड़ि झड़ि पवहिं अंगिआर।
नानक जिनि करतै कारणु कीआ, सो जाणै करतारु॥

उपदेश

हुकमि रजाई साखती, दरगह सच कबूलु।
साहिबु लेखा मंगसी, दुनीआ देखि न भूलु॥
मांदलु वे दिसि वाजणो, घणो पड़ीऐ जोइ।
नानक नामु समालि तू, बीजउ अंवरु न कोइ॥

मिश्रित

सुणीऐ एकु बखाणीऐ, सुरगि मिरति पइआलि।
हुकमु न जाई मेटिआ, जो लिखिआ सो नालि॥
हउमै करीतां तू नाहि, तू होवहि हउ नाहि।
बूझहु गिआनी बूझणा, एक अकथ कथा मनमाहि॥
मनका सूतकु लोभु है, जिहवा सूतकु कूड़ु।
अखी सूतकु बेखणा, पर त्रिय पर धन रूपु॥
सतिगुरु मिलै त जाणीऐ, जां सबदु बसै मन माहिं।
आपु गइआ भ्रमु भउ गइआ, जनम मरण दुख जाहि॥

पद

आपे रसीआ आपि रसु आपे रावण हारु।
आपे होवे चोलड़ा आपे सेज भतारु॥
रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि॥ रहाउ॥
आपे माछे मछुली आपे पाणी जालु।

आपे जाल मणकड़ा आपे अंदरि लालु ॥
आपे बहु बिधि रंगुला सखीए मेरा लालु ।
नित रवै सोहागणी देखु हमारा हालु ॥
प्रणवै नायकु बेनती तू सरवरु तू हंसु ।
कउलु तूहै कवीआ तूहै आपे वेखि बिगसु ॥

जेता सबदु सुरति धुनि तेती जेता रूपु काइआ तेरी ।
तूं आपे रसना आपे बसना अवरू न दूजा कहउ माई ॥
साहिबु मेरा एको है, एको है भाइ एको है ॥रहाउ॥
आपे मारै आपे छोड़ै आपे लेवै देइ ।
आपे वेखै आपे विगसै आपे नदरि करेइ ॥
जो किछु करणा सो करि रहिआ अवरु न करणा जाई ।
जैसा बरते तैसा कहीऐ सभ तेरी वड़िआई ॥
कलि कलवाली माइआ मदु मीठा मनु मतवाला पीवतु रहै ।
आपे रूप करे बहुभांती नानकु वपुड़ा एव कहै ॥

एको सरवरु कमल अनूप, सदा बिगासै परमल रूप ।
ऊजल मोती चूगहि हंस, सरब कला जग दीसै अंस ॥
जो दीसै सो उपजै बिनसै, बिनु जल सरवरि कमलु न दीसै ॥रहाउ॥
बिरला बूझै पावै भेदु, साखा तीनि कहै नित बेदु ।
नाद बिंद की सुरति समाइ, सतिगुरु सेवि परम पदु पाइ ॥
मुकतो रातउ रंगि रवांतउ, राजन राजि सदा विगसांतउ ।
जिसु तूं राखहि किरपा धारि, बूड़त पाहन तारहि तारि ॥
त्रिभवण महि जोति त्रिभवण महि जाणिआ,
उलट भई घरु घरमहि आणिआ ।
अहि निसि भगति करे लिव लाइ,
नानकु तिनकै लागै पाइ ॥

कउण तराजी कवणु तुला तेरा कवणु सराफु बुलावा ।
कउणु गुरू के पहि दीखिआ लेवा कै पहि मुलु करावा ॥

मेरे लाल जीउ तेरा अंतु न जाणा ।
तूं जल थलि मही अलि भरि पुरि लीणा, तूं आपे सरबस मांणा ॥रहाउ॥
मनु ताराजी चितु तुला तेरी सेव सराफु कमावा ।
घटही भीतरि सो सहु तोली इन विधि चितु रहावा ॥
आपे कंडा तोलु तराजी आपे तोलणहारा ।
आपे देखै आपे बूझै आपे है बणजारा ॥
अंधुला नीच जाति खिनु आवै तिलु जावै ।
ताकी संगति नानकु रहदा किउ करि मूड़ा पावै ॥
जतु सतु संजमु साचु दड़ाइआ साच सबदि रसि लीणा ।
मेरा गुरु दइआलु सदा रंगि लीणा ।
अहि निसि रहै एक लिव लागी साचे देखि पतीणा ॥रहाउ॥
रहै गगन पुरि इसटि समै सरि अनहत सबदि रंगीणा ।
सतु बंधि कुपीन भरिपुरि लीणा जिहवा रंगि रसीणा ॥
मिलै गुरु साचे जिनि रचु राचे किरतु बीचारि पतीणा ।
एक महि सरबस सरब महि एका एह सतिगुरि देखि दिखाई ।
जिनि कीए खड मंडल ब्रहमंडा, सो प्रभु लखनु न जाई ॥
दीपकु ते दीपकु परगासिआ त्रिभवण जोति दिखाई ॥
सचै तखति सच महली बैठे निरभउ ताड़ी लाई ।
मोहि गइआ बैरागी जोगी घटि घटि किंगुरी वाई ॥
नानक सरणि प्रभू की छूटे सतिगुर सचु सखाई ॥

करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए ।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अंत हरे ॥
चित चेतसि की नही बावरिआ । हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥रहाउ॥
जालि रैनि जालु दिनु हूआ जेती घड़ी फाही तेती ।
रसि रसि चोग चुगहि नित फासहि छूटसि मूड़े कवन गुणी ॥
काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही ।
कोइले पाप पड़े तिसु ऊपरि मनु जलिआ संनीचित भई ॥

मइश्रा मनूरु कंचन फिरि होवै जे गुरु मिलै तिनेहा ।
एकु नामु अंम्रितु ओहु देवै तउ नानक त्रिसटसि देहा ॥
गोतम तपा अहिलिश्रा इसत्री तिसु देखि इंद्रु लुभाइश्रा ।
सहस सरीर चिहन भग हूए ता मनि पछोताइश्रा ॥
कोई जाणि न भूलै भाई ।
सो भूले जिसु आपु भुलाए बूझै जिसै बुझाई ॥रहाउ॥
तिनि हरिचंदि प्रिथमीपति राजै कागदि की मन पाई ।
अउगणु जाणै त पुंन करे किउने खासि बिकाई ॥
करउ अढ़ाई धरती मांगी बावन रूपि बहानै ।
किउ पइश्रालि जाइ किउ छलीऐ जे बलि रूपु पछानै ॥
राजा जनमेजादे मंतीं बरजि बिश्रासि पड़ाइश्रा ।
तिनि करि जग अठारह घाए किरतु न चले चलाइश्रा ॥
गणत न गणीं हुकमु पछाणा बोली भाइ सुभाई ।
जो किछु बरतै तुधै सलाहीं सभ तेरी बडिश्राई ॥
गुर मुखि अलिपत लेपु करे न लागै सदा रहै सरणाई ।
मनमुखु मुगधु आगै चेतै नाहीं दुखि लागैं पछुताई ॥
आपे करे कराए करता जिनि एह रचना रचीऐ ।
हरि अभिमानु न जाई जीअहु अभिमाने पै पचीऐ ॥
भुलण बिचि कीश्रा सभु कोई करता आपि न भूलै ।
नानक सचि नामि निसतारा को गुर परसादि अघूलै ॥

उलटि श्रो कमलु ब्रह्मु बीचारि, अम्रित धार गगनि दस दुआरि ।
त्रिभवणु बेधिश्रा आपि मुरारि ॥
रे मन मेरे भरमु न कीजै, मनि मानिऐ अंम्रित रसु पीजै ॥रहाउ ॥
जनमु जीति मरणि मनु मानिश्रा, नजरि भई घरु घरते जानिश्रा ॥
जतु सतु तीरथु मजनु नामि, आपि मूवा मनु मन ते जानिश्रा ॥
अधिक बिथारु करउ किसु कामि । नर नाराइण अंतरजामि ॥
आन मनउ तउ पर घर जाउ, किसु जाचउ नाहीं को थाउ ।
नानक गुर मति सहज समाउ ॥

गुरु सागर रतनी भरपूरे, अम्रितु संत चुगहि नहिं दूरे ।
हरि रसु चोग चुगहि प्रभ भावै, सरवर महि हंसु प्रानपति पावै ॥
किआ बगु बपुड़ा छपड़ी नाइ, कीचड़ि डूबै मैलु न जाइ ॥ रहाउ ॥
रखि रखि चरन धरे बीचारी, दुविधा छोड़ि भए निरंकारी ।
मुकति पदारथु हरिरस चाखे, आवण जाण रहे गुरि राखे ॥
सरवर हंसा छोड़ि न जाइ, प्रेमभगति करि सहजि समाइ ।
सरवर महि हंस हंस महि सागरु, अकथ कथा गुर बचनी आदरु ॥
सुंनि मंडल इकु जोगी बैसे, नारिन पुरखु कहहु कोउ कैसे ।
त्रिभवण जोति रहे लिवलाई, सुरि नर नाथ सचे सरणाई ॥
आनद मूलु अनाथ अधारी, गुर मुखि भगति सहजि बीचारी ।
भगत बछल भै काटण हारे, हउ मै मारि मिले पगु धारे ॥
अनिक जतन करि कालु संताए, मरणु लिखाइ मंडल महि आए ।
जनमु पदारथु दुविधा खोवै, आपु न चीनसि भ्रमि भ्रमि रोवै ॥
कहतउ पड़तउ सुणतउ एक, धीरज धरम धरणीधर टेक ।
जतु सतु संजमु रिदै समाए, चउथे पद कउ जेमनु पतीआए ॥
साचे निरमल मैलु न लागै, गुरकै सबदि भरम भउ भागै ।
सूरति मूरति आदि अनूपु, नानकु जाचै साचु सरूपु ॥

अंम्रितु नीरू गिआनि मन मजनु अठसठि तीरथ संगि गहे ।
गुर उपदेसि जवाहर माणक सेवे सिखु सो खोजि लहै ॥
गुर समानि तीरथ नहिं कोइ, सरु संतोखु तासु गुरु होइ ॥रहाउ॥
गुर दरिआउ सदा जलु निरमलु मिलिआ दुरमति मैलु हरै ।
सति गुरि पाइऐ पूरा नावणु पसू परेतहु देव करै ॥
रता सचि नामि तलहीअलि सो गुरु परमलु कहीऐ ।
जाकी बास बनासपति सउरै तासु चरण लिव रहीऐ ॥
गुर मुखि जीअ प्रान उपजहि गुर मुखि सिवघर जाईऐ ।
गुर मुखि नानक सच समाईऐ, गुर मुखि निज पद पाईऐ ॥

जातिसु भावा तदई गावा, ता गावे का फलु पावा ।

गावे का फलु होई, जा आपे देवै सोई ॥
मन मेरे गुर बचनी निधि पाई। ताते सच महि रहिआ समाई ॥रहाउ॥
गुर साखी अंतरि जागी, ता चंचल मति तिआगी।
गुर साखी का उजीआरा, ता मिटिआ सगल अंध्यारा ॥
गुर चरनी मनु लागा, ता जम का मारगु भागा।
भै विचि निरभउ पाइआ, ता सहजै कै घरि आइआ ॥
भणति नानकु बूझै को वीचारी, इसु जग महि करणी सारी।
करणी कीरति होई, जा आपे मिलिया सोई ॥

कोई पड़ता सहसा किरता कोई पड़ै पुराना।
कोई नामु जपै जप माली लागै तिसै धिआना ॥
अबही कबही किछू न जाना तेरा एको नामु पछाना ॥
न जाणा हरे मेरी कवन गते।
हम मूरख अगिआन सरन प्रभ तेरी ॥
करि किरपा राखहु मेरी लाज पते ॥ रहाउ ॥
कबहू जीअड़ा ऊभि चढ़तु है कबहू जाइ पइआले ॥
लोभी जीअड़ा थिरु न रहतु है चारे कुंडा भाले ॥
मरणु लिखाइ मंडल महि आए जीवणु साजहि माई।
ए किचले हम देखह सुआमी चाहि बलंती आई ॥
न किसी का मीतु न किसी का भाई ना किसै बापु न माई।
प्रणवति नानक जे तू देवहि अंते होइस खाई ॥

जिउ मीना बिनु पाणीऐ तिउ साकतु मरै पिआस।
तिउ हरि बिनु मरीऐ रे मना जो बिरथा जावै सासु ॥
मन रे राम नाम जसु लेहि।
बिनु गुर इहु रसु किउ लहउ गुरु मेलै हरि देइ ॥ रहाउ ॥
संत जना मिलु संगती गुर मुखि तीरथु होइ।
अठिसठि तीरथ मजना गुर दरसु परापति होइ ॥
जिउ जोगी जत बाहरा तपु नाही सतु संतोखु।

तिउ नामै विनु देहुरी जमु मारै अंतरि दोखु ॥
साकतु प्रेम न पाईऔ हरि पाइअ सतिगुर भाइ ।
सुख दुख दाता गुरु मिलै कहु नानक सिफति समाइ ॥

किसकउ कहहि सुणावहि किसकउ किसु समझावहि समझि रहे ।
किसै पड़ावहि पड़ि गुणि बूझै सतिगुर सबदि संतोखि रहे ॥
अैसा गुर मति रमतु सरीरा । हरि भजु मेरे मन गहिर गंभीरा ॥रहाउ॥
अनत तरंग भगति हरि रङ्गा । अनदिनु सूचे हरिगुण संगा ॥
मिथिआ जनमु साकत संसारा । राम भगति जनु रहै निनारा ॥
सूची काइआ हरिगुण गाइआ । आतमु चीनि रहै लिव लाइआ ॥
आदि अपारु अपरंपरु हीरा । लालि रता मेरा मनु धीरा ॥
कथनी कहहि कहहि से मूए । सो प्रभु दूरि नाही प्रभु तूं है ॥
सभु जगु देखिआ माइआ छाइआ । नानक गुरमति नामु धिआइआ ॥

काची गागरि देह दुहेली उपजै विनसै दुखु पाई ।
इहु जगु सागरु दुतरु किउ तरु किउ तरीऔ बिनु हरि गुर पार न पाई ॥
तुझ बिनु अवरु न कोई मेरे पिआरे तुझ बिनु अवरु न कोई हरे ।
सरबी रंगी रूपी तू है तिसु बखसे जिसु नदरि करे ॥ रहाउ ॥
सासु बुरी घरि वासु न देवै, पिर सिउ मिलण न देइ बुरी ।
सखी साजनी के रउ चरन सरे बउ हरिगुर किरपा ते नदरी धरी ॥
आपु बीचारि मारि मनु देखिआ, तुमसा मीतु न अवरु कोई ।
जिउ तूं राखहि तिवही रहणा, दुखु सुखु देवहि करहि सोई ॥
आसा मनसा दोउ बिनासत त्रिहु गुण आस निरास भई ।
तुरीआवसथा गुरमुखि पाईऔ, संत सभा की ओट लही ॥
गिआन धिआन सगले सभि जप तप, जिसु हरि हिरदै अलख अभेवा ॥
नानक राम नामि मनु राता गुरमति पाए सहज सेवा ॥

दूरि नाही मेरा प्रभु पिआरा ।
सतिगुर वचनि मेरो मनु मानिआ, हरि पाए प्रान अधारा ॥ रहाउ ॥
इन विधि हरि मिलीऔ वर कामनि धन सोहाग पिआरी ।

जाति बरन कुल सहसा चूका, गुर मति सबद बीचारी ॥
जिसु मनु मानै अभिमानु न ताकउ हिंसा लोभु बीसारे ।
सहजि रवै वरु कामणि पिरकी, गुरमुखि रङ्ग सवारे ॥
जारउ ऐसी प्रीति कुटंब सनबंधी, माइआ मोह पसारी ।
जिसु अंतरि प्रीति राम रसु नाहीं, दुविधा करम बिकारी ॥
अंतरि रतन पदारथ हितकौ दुरै न लाल पिआरी ।
नानक गुर मुखि नामु अमोलकु, जुगि जुगि अंतरि धारी ॥

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती ।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे, सगल बनराइ फूलंत जोती ॥
कैसी आरती होइ भव खंडना तेरी आरती ।
अनहता सबद बाजंत भेरी ॥ रहाउ ॥
सहस तन नैनन न नैन है तोहिकउ, सहस मूरति न ना एक तोही ।
सहसपद विमल न न एक पद गंध बिनु, सहस तम गंध इव चलत मोही ॥
सभ महि जोति है सोई । तिसकै चानणि सभ महि चानणु होइ ।
गुरसाखी जोति परगटु होइ । जो तिसु भावै सु आरती होइ ॥
हरिचरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनु मोहिआ ही पिआसा ।
क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ, होइ जाते तेरे नामि वासा ॥

दादू

दादू का जन्म अहमदाबाद में सं० १६०१ में फागुन सुदी अष्टमी के दिन हुआ था। इनके जन्मस्थान और वंश आदि के संबंध में बड़ा मतभेद है। इनके जीवन-संबंधी इन प्रश्नों पर स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी और पं० चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी ने अच्छा अनुसंधान किया है। द्विवेदी जी ने दादू का संपादन 'नागरी-प्रचारिणी सभा' की ओर से किया है, और त्रिपाठी जी ने भी दादू की रचनाओं का एक बड़ा प्रामाणिक संस्करण निकाला है। विल्सन नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने भी दादू के कुछ चुने हुए पदों का अनुवाद 'साम्स आफ़ दादू'[1] नामक पुस्तक में प्रकाशित किया है। प्रोफ़ेसर विल्सन इनका रचना-काल ईसा की सोलहवीं शताब्दी में मानते हैं। उन्हीं के अनुसार ये स्वामी रामानंद की शिष्य-परंपरा में कबीर की छठवीं पीढ़ी में थे और इनका जन्म गुजरात के एक जुलाहे के वंश में हुआ था। 'वेलवेडियर प्रेस' के संस्करण के अनुसार इनका जन्म एक धुनियाँ के वंश में कबीर की मृत्यु के २६ वर्ष बाद सं० १६०१ में हुआ था। परंतु पं० चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी इन्हें ब्राह्मण कुलोत्पन्न मानते हैं। उन्हीं के अनुसार इनका जन्म फाल्गुन शुक्ल अष्टमी सं० १६०१ में माना जाता है। त्रिपाठी जी ने अपना मत बड़ी संतोषजनक रीति से अनुसंधान करने के बाद स्थिर किया और इसलिये जब तक इनके निष्कर्षों के विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण न मिलें तब तक इन्हें ही उत्तर पक्ष मानना पड़ेगा। इनके पिता का नाम लोदीराम प्रायः सभी अन्वेषक मानते हैं।

दादू जी के जीवन-वृत्तांत के सबंध में एक सबसे अनोखी बात यह

---

[1] लेखक ने संभवतः भूल से 'साम्स आफ़ दादू' का अनुवादक विल्सन को मान लिया है। उसके अनुवादक वास्तव में श्री तारादत्त गैरोला हैं और पुस्तक सन् १९२९ ई० में 'इंडियन बुकशाप बनारस' से प्रकाशित है। प० च०

है कि इनके जीवन के प्रथम ३० वर्षों का इतिवृत्त अप्राप्य सा है। इनके जन्म के संबंध में भी कबीर ही की भाँति एक अनोखी कथा प्रसिद्ध है। दादूपंथियों के अनुसार यह सद्यःजात शिशु के रूप में साबरमती नदी में बहते हुए लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण द्वारा पाए गए थे। यद्यपि दादूपंथी और उन्हीं के आधार पर पं० चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी की भी यही धारणा है कि ये ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे, पर इनके अतिरिक्त अधिकतर समालोचकों की धारणा यही है कि धुनियाँ, मोची, या जुलाहा या ऐसे ही किसी साधारण कुल में इनकी उत्पत्ति हुई थी। जो हो, निश्चय रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। इनकी कविताओं से तो यही जान पड़ता है कि ये ब्राह्मण न रहे होंगे। जिस प्रकार कबीर ही की भाँति इन्होंने ऊँच-नीच के भेद-भाव के विरुद्ध उपदेश दिया है उस से तो यही अनुमान हो सकता है कि यह जात्याभिमानी ब्राह्मण तो शायद ही रहे हों। यद्यपि कबीर की भाँति इनकी कविता में वेद, पुराण, वर्णाश्रमधर्म तथा कर्मकांड आदि की कटु और उद्दंड आलोचना नहीं मिलती तो भी कबीर के बताए हुए मार्ग से ही ये चले हैं और इनके उपदेशों में कबीर के सिद्धांतों का विरोध तो कहीं भी नहीं मिलता। इन सब बातों से इसी अनुमान की पुष्टि होती है कि इनकी उत्पत्ति अधिकतर संत-कवियों की भाँति किसी अत्यंत साधारण कुल में ही हुई होगी।

ऊपर यह सूचित किया जा चुका है कि इनके जीवन के प्रथम ३० वर्षों का वृत्तांत प्रायः अज्ञात सा है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि १८ वर्ष की अवस्था तक यह अपने जन्मस्थान अहमदाबाद में ही रहे और फिर अगले ८ साल इन्होंने मध्यप्रांत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में घूमने में बिताये। लगभग २८ वर्ष की अवस्था में यह मारवाड़ प्रांत के साँभर (साँभर झील, जहाँ का नमक प्रसिद्ध है) नामक स्थान पर पहुँचे (लगभग सं० १६३०) और फिर स० १६३६ से जयपुर की राजधानी आमेर में स्थायी रूप से रहने लगे। यहाँ वह लगभग १५ वर्ष रहे। कहा जाता है कि सं० १६४२ में बड़े आग्रह से बुलाए जाने पर अकबर की तत्कालीन राजधानी फ़तेहपुर सीकरी भी गए थे और वहाँ

बादशाह से इनका साक्षात्कार हुआ था। सं० १६५० में ये आमेर छोड़कर जयपुर में रहने लगे और अंत में लगभग ९ वर्ष वहाँ रह कर नराणे की एक पहाड़ी गुफ़ा में रहने लगे और कुछ ही दिनों में वहीं जेठ बदी अष्टमी सं० १६६० में परलोक सिधारे। दादू-पंथियों की प्रधान गद्दी अब भी नराणे में ही है। वहाँ इनका एक स्मृति-मंदिर भी है जिसमें दादूपंथा साधु निवास करते हैं।

इनका गुरु कौन था यह अभी तक निश्चय नहीं हो सका है। दादूपंथियों में इस संबंध में यह कथा प्रसिद्ध है कि स्वयं कृष्ण भगवान ने वृद्ध का रूप धारण कर इन्हें दीक्षा दी थी और इसी कारण इनके गुरु का नाम वृद्धानंद या 'बूढ़ण' भी कहा जाता है। इस संबंध में इनका यह दोहा भी ध्यान में रखने योग्य है—

> दादू गैब माँहिं गुरुदेव मिला, पाया हम परसाद।
> मस्तक मेरे कर धरया, दाया अगम अगाध ॥

पं० सुधाकर द्विवेदी कबीर के पुत्र कमाल को दादू का गुरु मानते हैं, पर अपनी इस धारणा के पक्ष में वह कोई संतोपजनक प्रमाण नहीं दे सके हैं। पर जो कोई भी इनका दीक्षागुरु रहा हो, इतना तो इनकी रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने अपना आदर्श कबीर को ही बनाया होगा। कबीर का नाम बार बार इनकी रचनाओं में मिलता है और वह भी इस रूप में नहीं जिसमें कबीर ने शेख़ तकी (सुनहु तकी तुम सेख) का नाम लिया है। इनके दोहों, साखियों और पदों में कबीर के संदेश, उपदेश या विचार दोहराए हुए से मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति तो कबीर की मृत्यु के २५ वर्ष के बाद हुई थी और इनके रचना-काल का आरंभ भी कबीर की मृत्यु के कम से कम ५० वर्ष बाद ही आरंभ हुआ होगा। क्योंकि सं० १६३० में साँभर में स्थापित होने के बाद ही पंथ-प्रवर्तक के रूप में यह प्रसिद्ध हुए। परंतु ५० या ६० वर्ष बाद भी कबीर की ज्ञानज्योति की चकाचौंध काफ़ी रह गई होगी और यह कोई आश्चर्य नहीं कि किसी दिन आध्यात्मिक तंद्रावस्था में इन्हों-ने अपने मानसिक नेत्रों के सामने कबीर का ही अंतिम दिनों का (१२०

वर्ष की अवस्था वाले) विवृणवान रूप प्रत्यक्ष पाया हो और उस से मानसिक दीक्षा ग्रहण कर ली हो। क्योंकि यह तो कथा प्रसिद्ध है कि इनके गुरु कोई परमवृद्ध महापुरुष थे, वह और कोई नहीं इनके मानस-पटल में वृद्ध कबीर की ही छाया रही होगी, वृद्ध कबीर इसलिये कि मृत व्यक्ति के अंतिम दिनों की ही स्मृति बाद के लोगों के मन में स्पष्ट रह जाती है। भगवान कृष्ण का वृद्धरूप में दादू का दीक्षा देने आने की कथा बेतुकी या असंगत विशेषकर इसलिये जान पड़ती है कि महा-भारत से लेकर आजतक कृष्ण-संबंधी जितने कथानक ज्ञात हैं उनमें कृष्ण के वृद्ध या 'बूढ़ण' रूप का चित्र कहीं नहीं खींचा गया है। और फिर महाकवि सूर या मीरा की भाँति कृष्ण इन के आराध्यदेव भी नहीं थे जैसा कि इनकी रचनाओं से स्पष्ट है।

इनकी कविता की भाषा अवश्य कबीर की भाषा से बहुत कुछ भिन्न थी। पूरबी भाषा तो इन की रचना में कहीं भी नहीं मिलती। प्राधान्य मारवाड़ी और कहीं-कहीं गुजराती मिश्रित पश्चिमी हिंदी का है। कहीं-कहीं पंजाबीपन भी देखने में आ जाता है पर कम। हाँ, गुजराती और मारवाड़ी का मुँह क़रीब-क़रीब बराबर है। कारण स्पष्ट है। इनके जीवन का उत्तरार्द्ध मारवाड़ में बीता और यही इनका रचना-काल रहा। बाल्य और कैशोर काल में गुजरात में रहना भी इनकी रचना पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता था। इनके कुछ पद ठेठ राजस्थानी और गुजराती में भी हैं। दो-चार पद पंजाबी में भी मिलते हैं। इनकी रचना में कबीर की वह जटिलता या रहस्यपूर्णता नहीं है जिनके कारण कुछ लोग इन्हें (कबीर को) प्रथम रहस्यवादी कवि कहते हैं। वह चमत्कार भी नहीं है। पर माधुर्य अवश्य कबीर से अधिक है। शिक्षा तो इनकी कुछ विशेष नहीं जान पड़ती। अन्य संत-कवियों की भाँति भाषादोष से यह भी बरी नहीं हैं। इस समय की सामान्य काव्य-भाषा में खड़ी बोली की क्रियाओं का प्रयोग यह भी ख़ूब करते थे। विषय भी इनके वही हैं जिन्हें प्रायः सभी संतकवियों ने एकमत होकर अपनाया है और जिन्हें अन्य किसी शाखा के कवियों ने छुआ तक नहीं,

जैसे—ईश्वर की व्यापकता, सतगुरु की महिमा, जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव का निराकरण, हिंदू-मुसल्मानों का अभेद, संसार की अनित्यता, आत्मबोध, चेतावनी, सूरमा, इत्यादि।

गुरुदेव

(दादू) गैब माँहि गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तकि मेरे कर धरया, देख्या अगम अगाध ॥
(दादू) सतगुरु सूं सहजै मिल्या, लीया कंठ लगाइ।
दया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥
सतगुरु काढ़े केस गहि, डूबत इहि संसार।
दादू नाव चढ़ाइ करि, कीये पैली पार ॥
दादू उस गुरुदेव की, मैंबलिहारी जाउँ।
जंह आसन अमर अलेख था, ले राखे उस ठाउँ ॥
(दादू) सतगुरु मारे सबदसौं, निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रहि गया, चीति न आवै और ॥
सबद दूध घृत राम रस, कोइ साध बिलोवण हार।
दादू अमृत काढि ले, गुरुमुखि गहै बिचार ॥
देवै किरका दरद का, टूटा जोड़ै तार।
दादू सांधै सुरति को, सो गुरु पीर हमार ॥
सतगुरु मिलै तो पाइये, भगति मुकति भंडार।
दादू सहजै देखिये, साहिब का दीदार ॥
(दादू) सतगुरु माला मन दिया, पवन सुरति सूँ पोइ।
बिन हाथों निस दिन जपै, परम जाप यूँ होइ ॥
(दादू) यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदगी, बाहरि काहे जाइ ॥
मन ताजी चेतन चढ़े, ल्यौ की करै लगाम।
सबद गुरू का ताजणां, कोइ पहुँचै साध सुजांण ॥

सुमिरन

दादू नीका नाँव है, हरि हिरदै न बिसारि।
मूरति मन माहैं बसै, साँसै साँस सँभारि॥
साँसै साँस सँभालता, इक दिन मिलिहै आइ।
सुमिरन पैंड़ा सहज का, सतगुरु दिया बताइ॥
दादू राम सँभालि ले, जब लग सुखी सरीर।
फिरि पीछैं पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर॥
मेरे संसा को नहीं, जीवन मरन क राम।
सुपिनै ही जिनि बीसरै, मुख हिरदै हरि नाम॥
हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरण तहाँ भला, जहँ पसु पँखी खाइ॥
(दादू) अगम बस्त पानैं पड़ी, राखी मंझि छिपाइ।
छिन छिन सोइ संभालिये, मति वै बीसरी जाय॥
(दादू) राम नाम निज औषदी, काटै कोटि बिकार।
विषम व्याधि थैं ऊबरै, काया कंचन सार॥
(दादू) सब सुख सरग पयाल के, तोलि तराजू बाहि।
हरि सुख एक पलक्क का, ता समि कह्या न जाय॥
कौण पटंतर दीजिए, दूजा नाहीं कोइ।
राम सरीखा राम है, सुमिर्याँ ही सुख होइ॥
नाँव लिया तब जाणिये, जे तन मन रहै समाइ।
आदि अंत मध एक रस, कबहूँ भूलि न जाइ॥

शब्द

(दादू) सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं ही सब जाय।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाय॥
(दादू) सबदैं ही सचु पाइये, सबदैं ही संतोष।
सबदैं ही अस्थिर भया, सबदैं ही भागा सोक॥
(दादू) सबदैं ही सूषिम भया, सबदैं सहज समान।
सबदैं ही निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ग्यान॥

(दादू) सबदै ही मुक्ता भया, सबदै समझै प्राण ।
सबदै ही सूझै सबै, सबदै सुरझै जाण ॥
पहली किया आप थै, उतपति ओंकार ।
ओंकार थैं ऊपजे, पंच तत्त आकार ॥
पंच तत्त थैं घट भया, बहु बिधि सब बिस्तार ।
दादू घट थैं ऊपजे, मैं तैं बरण बिचार ॥
एक सबद सैं ऊनवैं, बर्षन लागै आइ ।
एक सबद सौं बीखरै, आप आप कौं जाइ ॥
(दादू) सबद बाण गुर साध के, दूरि दिसंतर जाइ ।
जेंहि लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ ॥
सबद जरै सो मिलि रहै, एक रस पूरा ।
काइर भागे जीव ले, पग माँडै सूरा ॥
सबद सरोवर सूभर भरया, हरि जल निर्मल नीर ।
दादू पीवैं प्रीति सौं, तिन के अखिल सरीर ॥

विरह

मन चित चातृग ज्यूँ रटै, पिव पिव लागी प्यास ।
दादू दरसन कारनै, पुरवहु मेरी आस ॥
(दादू) बिरहनि दुख कास निकहै, कासनि देइ सँदेस ।
पंथ निहारत पीव का, बिरहनि पलटे केस ॥
ना वहु मिलै न मैं सुखी, कहु क्यूँ जीवन होइ ।
जिन मुझकौं घाइल किया, मेरी दारू सोइ ॥
(दादू) मैं भिष्यारी मंगिता, दरसन देहु दयाल ।
तुम दाता दुख भंजिता, मेरी करहु सँभाल ॥
दीन दुनी सदकै करौं, टुक देखण दे दीदार ।
तन मन भी छिन छिन करौं, भिस्त दोजग भी वार ॥
विरह अगिन तन जालिये, ज्ञान अगिनि दौं लाइ ।
दादू नख सिख परजलै, तब राम बुझावै आइ ॥
अंदरि पीड़ न ऊभरै, बाहर करै पुकार ।

दादू सो क्यों करि लहै, साहिब का दीदार ॥
(दादू) कर बिन सर बिन कमान बिन, मारै खैंचि कसीस ।
लागी चोट सरीर में, नख सिख सालै सीस ॥
(दादू) बिरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव ।
जीव जगावै सुरति कौं, पंच पुकारै पीव ॥
(दादू) नैन हमारे ढीठ है, नाले नीर न जाहिं ।
सूके सराँ सहेत वै, करँक भये गलि माँहिं ॥
(दादू) जब बिरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा राम ।
काया लागी काल है, कड़वे लागे काम ॥
जे कबहूँ बिरहिनि मरैं, तौ सुरति बिरहिनि होई ।
दादू पिव पिव जीवताँ, मुवा भी टेरै सोइ ॥
मीयाँ मैंडा आव घर, वाँढी वत्ताँ लोइ ।
दुखडे मुँहडे गये, मराँ विछोहै रोइ ॥

भक्ति और लव

जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव ॥
ल्यौ लागी तब जाणिये, जे कबहूँ छूटि न जाइ ।
जीवत यौं लागी रहै, मूवाँ मंझि समाइ ॥
आदि अंत मधि एक रस, टूटै नहिं धागा ।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥
अर्थ अनूपम आप है, और अनरथ भाई ।
दादू ऐसी जानि करि, तासौं ल्यौ लाई ॥
सुरति अपूठी फेरि करि, आतम माहैं आण ।
लाहि रहै गुरुदेव सौं, दादू सोई सयाण ॥
जहँ आतम तहँ राम है, सकल रह्या भरपूर ।
अंतरगति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥
एक मना लागा रहै, अंति मिलैगा सोइ ।
दादू जाके मन बसै, ताकौं दरसन होइ ॥

दादू निबहै त्यूँ चलै, धीरैं धीरज माहिं।
परसैगा पिव एक दिन, दादू थाकै नाहिं॥

चितावनी

(दादू) जे साहिब कौं भावै नहीं, सो बाट न बूझी रे।
सांईं सौं सन्मुख रही, इस मन सौं झूझी रे॥
दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ।
मनवाँ सूता नींद भरि, सांईं संग जगाइ॥
आपा पर सब दूरि करि, राम नाम रस लागि।
दादू औसर जात है, जागि सकै तो जागि॥
दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम।
सुख सागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम॥
(दादू) झाँती पाये पसु पिरी, हाँणो लाइ म बेर।
साथ सभोई हल्यौ, पोइ पसंदो केर॥
काल न सूझै कंध पर, मन चितवै बहु आस।
दादू जिव जाणै नहीं, कठिन काल की पास॥
जहँ जहँ दादू पग धरै, तहाँ काल का फंध।
सिर ऊपर साँधे खड़ा, अजहुँ न चेतै अंध॥
यहु बन हरिया देखि करि, फूल्यौ फिरै गँवार।
दादू यहु मन मिरगला, काल अहेड़ी लार॥
कहताँ सुनताँ देखताँ, लेताँ देताँ प्राण।
दादू सो कतहूँ गया, माटी धरी मसाण॥
पंथ दुहेला दूरि घर, संग न साथी कोय।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यौं सुख सोइ॥
काल झाल में जग जलै, भाजि न निकसै कोइ।
दादू सरणैं साच कै, अभय अमर पद होइ॥
ये सज्जन दुर्जन भये, अंति काल की बार।
दादू इनमें को नहीं, बिपति बटावणहार॥
काल हमारा कर गहै, दिन दिन खैंचत जाइ।

अजहुँ जीव जागै नहीं, सोवत गई बिहाइ ॥
धरती करते एक डग, दरिया करते फाल ।
हाँकौं परबत फाड़ते, सो भी खाये काल ॥

निज करता का निर्णय

जाती नूर अलाह का, सिफाती अरवाह ।
सिफाती सिजदा करै, जाती बे परवाह ॥
वार पार नहिं नूर का, दादू तेज अनंत ।
कीमति नहिँ करतार की, ऐसा है भगवंत ॥
जियें तेल तिलन्नि में, जीयें गंधि फुलन्नि ।
जीयें माखरण षीर में, ईयें रब रूहन्नि ॥

दुबिधा

जब हम ऊजड़ चालते, तब कहते मारग माहिं ।
दादू पहुँचे पंथ चलि, कहैं यहु मारग नाहिं ॥
द्वै पष उपजी परिहरै, निर्पष अनभै सार ।
एक राम दूजा नहीं, दादू लेहु बिचार ॥
दादू संसा आरसी, देखत दूजा होइ ।
भरम गया दुविध्या मिटी, तब दूसर नाहीं कोइ ॥

बेहद

देखि दिवाने ह्वै गये, दादू खरे सयान ।
कार पार कोइ ना लहै, दादू है हैरान ॥
पार न देवै आपणा, गोप गुझ मन माहिं ।
दादू कोई ना लहै, केतै आवैं जाहिं ॥

समरथ

सरमरथ सब बिधि साइयाँ, ताकी मैं बलि जाउँ ।
अंतर एक जु सो बसै, औरां चित्त न लाउँ ॥
ज्यूँ राखैं त्यूँ रहैंगे, अपणे बल नाहीं ।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं ॥

दादू दूजा क्यूँ कहै, सिर परि साहिब एक ।
सो हम कूँ क्यूँ बीसरै, जे जुग जाँहिं अनेक ॥
कर्म फिरावै जीव कौं, कर्मों कौं करतार ।
करतार कौं कोई नहीं, दादू फेरनहार ॥
आप अकेला सब करै, औरूँ के सिर देइ ।
दादू सोभा दास कूँ, अपना नाम न लेइ ॥

विनय

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर ।
पल पल का मैं गुनही तेरा, बक्सौ औगुण मोर ॥
गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहाँ हम जाहिं ।
दादू देख्या सोधि सब, तुम बिन कहिं न समाहिं ॥
आदि अंत लौं आई करि, सुकिरत कछू न कीन्ह ।
माया मोह मद मंछरा, स्वाद सबै चित दीन्ह ॥
दादू बंदीवान है, तू बंदी छोड़ दिवान ।
अब जनि राखौ बंदि में, मीराँ मेहरबान ॥
दिन दिन नौतम भगति दे, दिन दिन नौतम नाँव ।
दिन दिन नौतम नेह दे, मैं बलिहारी जाँव ॥
साईं सत संतोष दे, भाव भगति बेसास ।
सिदक सबूरी साँच दे, मांगै दादूदास ॥
पलक मांहिं प्रगटै सही, जे जन करै पुकार ।
दीन दुखी तब देखि करि, अति आतुर तिहिं बार ॥
आगैं पीछैं संगि रहै, आप उठाये भार ।
साध दुखी तब हरि दुखी, ऐसे सिरजन हार ॥
अंतरजामी एक तूँ, आतम के आधार ।
जे तुम छाड़हु हाथ थैं, तौ कौण सँबाहणहार ॥
तुम हौ तैसी कीजिये, तौ छूटैंगे जीव ।
हम हैं ऐसी जनि करौ, मैं सदिकै जाँऊ पीव ॥
साहिब दर दादू खड़ा, निसि दिन करै पुकार ।

मीराँ मेरा मिहर करि, साहिब दे दीदार ॥
तुम कूँ हम से बहुत हैं, हम कूँ तुम से नाहिं ।
दादूँ कूँ जनि परिहरौ, तूँ रहु नैनहुँ माहिं ॥

विश्वास

(दादू) सहजैं सहज होइगा, जे कुछ रचिया राम ।
काहे कौं कलपै मरै, दुखी होत बेकाम ॥
(दादू) मनसा बाचा कर्मना, साहिब का बेसास ।
सेवग सिरजनहार का, करै कौन की आस ॥
(दादू) च्यंता कीयाँ कुछ नहीं, च्यंता जिव कूँ खाय ।
हूणा था सो ह्वै रह्या, जाणा है सो जाइ ॥
(दादू) राजिक रिजक लिये खड़ा, तेवै हाथौं हाथ ।
पूरिक पूरा पासि है, सदा हमारे साथ ॥

विचार

कोटि अचारी एक बिचारी, तऊ न सर भरि होइ ।
आचारी सब जग मर्‍या, बिचारी विरला कोइ ॥
सहज बिचार सुख में रहै, दादू बड़ा बमेक ।
मन इंद्री पसरैं नहीं, अंतरि राखै एक ॥
(दादू) सोचि करै सो सूरमा, करि सोचै सो कूर ।
करि सोच्याँ मुख स्याम ह्वै, सोच करयाँ मुख नूर ॥
जो मति पीछैं ऊपजै, सो मति पहिली होइ ।
कबहुँ न होवै जी दुखी, दादू सुखिया सोइ ॥

साँच

साँचा नाँव अलाह का, सोई सति करि जाणि ।
निहचल करि ले बंदगी, दादू सो परवाणि ॥
दुइ दरोग लोग कौं भावै, साईं साच पियारा ।
कौण पंथ हम चलैं कहौ धौं, साधौ करौ बिचारा ॥
औषद खाइ न पछि रहै, बिषम व्याधि क्यों जाइ ।
दादू रोगी बावरा, दोस बैद कौं लाइ ॥

जे हम जाण्या एक करि, तौ काहे लोक रिसाइ।
मेरा था सो मैं लिया, लोगौं का क्या जाइ॥
दादू पैंड़े पाप के, कदे न दीजै पांव।
जिहि पैंड़े मेरा पिव मिलै, तिहिं पैंड़े का चाव॥
ऊपरि आलम सब करै, साधू जन घट मांहि।
दादू एता अंतरा, ताथैं बनती नाहि॥
झूठां साचा करि लिया, विष अमृत जाना।
दुख कौं सुख सब के कहै, ऐसा जगत दिवाना॥
साँचे का साहिब धणी, समरथ सिरजनहार।
पाखंड की यहु पिर्थमी, परपँच का संसार॥
(दादू) पाखँड पीव न पाइये, जे अंतरि साच न होइ।
ऊपरि थैं क्योहीं रहौ, भीतर के मल धोइ॥
जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै बाति।
सबै सयाने एक मति, उनकी एकै जाति॥

मौन

(दादू) मनहीं माँहे समझि करि, मनहीं माहिं समाइ।
मनहीं माहैं राखिये, बाहरि कहि न जनाइ॥
जरणा जोगी जुगिजुगि जीवै, झरना मरि मरि जाय।
दादू जोगी गुरमुखी, सहजैं रहै समाइ॥

जीवत मृतक

जीवत माटी ह्वै रहै, साईं सनमुख होइ।
दादू पहिली मरि रहै, पीछैं तौं सब कोइ॥
आपा गर्ब गुमान तजि, मद मंछर हंकार।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजन हार॥
(दादू) मेरा बैरी मैं मुवा, मुझै न मारै कोइ।
मैं हीं मुझ कौं मारता, मैं मरजीवा होइ॥
मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाइ॥

दादू आप छिपाइये, जहाँ न देखै कोइ।
पिव कौं देखि दिखाइये, त्यौं त्यौं आनंद होइ॥
(दादू) साईं कारण माँस का, लोही पानी होइ।
सूकै आटा अस्थि का, दादू पावै सोइ॥

पतिव्रता

(दादू) मेरे हिरदे हरि बसै, दूजा नाहीं और।
कहौ कहाँ धौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर॥
(दादू) पीव न देख्या नैनभरि, कंठि न लागी धाइ।
सूती नहिं गल बाँहि दे, बिच हीं गई बिलाइ॥
प्रेम प्रीति इसनेह बिन, सब झूठे सिंगार।
दादू आतम रत नहीं, क्यों मानै भरतार॥
(दादू) हूँ सुख सूती नींद भरि, जागै मेरा पीव।
क्यों करि मेला होइगा, जागै नाहीं जीव॥
सुंदरि कबहूँ कंत का, मुख सौं नांव न लेइ।
अपणे पिव के कारणे, दादू तन मन देइ॥
तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा प्यंड परान।
सब कुछ तेरा तू है मेरा, यहु दादू का ज्ञान॥
(दादू) नीच ऊँच कुल सुंदरी, सेवा सारी होइ।
सोई सोहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ॥

मांस अहार

माँस अहारी मद पिवै, बिषै बिकारी सोइ।
दादू आतम राम बिन, दया कहां थैं होइ॥
आपन कौं मारै नहीं, पर कौं मारन जाहि।
दादू आपा मारै बिना, कैसे मिलै खुदाय॥

दया

काल जाल थैं काढ़ि करि, आतम अंगि लगाइ।
जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत खाइ॥
भवहीणा जे पिरथमी, दया बिहूणा देस।

भगति नहीं भगवंत की, तहँ कैसा परवेस ।।
काला मुँह करि करद का, दिल थैं दूरि निवार ।
सब सूरति सुबहान की, मुल्लाँ मुग्ध न मारि ।।

दुर्जन

निगुणा गुण मानै, नहीं, कोटि करै जे कोइ ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ।।
दादू सगुणा लीजिये, निगुणा दीजै डारि ।
सगुणा सन्मुख राखिये, निगुणा नेह निवारि ।।
दादू दूध पिलाइये, बिषहर बिष करि लेइ ।
गुण का अवगुण करि लिया, ताही कौं दुख देइ ।।
मूसा जलता देख करि, दादू हंस-दयाल ।
मानसरोवर ले चल्या, पंखा काटै काल ।।

मध्य

सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग ।
ताता सीला सम भया, तब दादू एकै अंग ।।
कुछ न कहावै आप कौं, काहू संगि न जाइ ।
दादू निर्पष ह्वै रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ।।
ना हम छाड़ैं ना गहैं, ऐसा ज्ञान बिचार ।
मद्धि भाइ सेवैं सदा, दादू मुकति दुवार ।।
बैरागी मन में बसै, घरबारी घर माहिं ।
राम निराला रहि गया, दादू इनमैं नाहिं ।।

सतसंग दुर्जन को

सतगुर चंदन बावना, लागे रहै भुवंग ।
दादू बिष छाड़ै नहीं, कहा करै सतसंग ।।
कोटि बरस लौं राखिये, बंसा चंदन पास ।
दादू गुण लीये रहै, कदै न लागै बास ।।
कोटि बरस लौं राखिये, लोहा पारस संग ।
दादू रोम का अंतरा, पलटै नाहीं अंग ।।

कोटि बरस लौं राखिये, पत्थर पानी माँहिं ।
दादू आड़ा अंग है, भीतर भेदै नाहिं ॥

घटमठ

(दादू) जा कारन जग ढूँढ़िया, सो तौ घट ही माहि ।
मैं तैं पड़दा भरम का, ता थैं जानत नाहिं ॥
सब घटि माहैं रमि रह्या, विरला बूझै कोइ ।
सोई बूझै राम को, जो राम सनेही होइ ॥

साध

साधू जन संसार में, पारस परगट गाइ ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ ॥
साधू जन संसार में, सीतल चंदन वास ।
दादू केते ऊधरे, जे आये उन पास ॥
जहँ अरंड अरु आक थे, तँह चंदन ऊग्या माहिं ।
दादू चंदन करि लिया, आक कहै को नाहिं ॥
साध मिलै तब ऊपजै, हिरदे हरि का हेत ।
दादू संगति साध की, कृपा करै तब देत ॥
जब दरवौ तब दीजियौ, तुम पैं माँगौं येहु ।
दिन प्रति दरसन साध का, प्रेम भगति दिढ़ देहु ॥
दादू चंदन करि कह्या, अपणाँ प्रेम प्रकास ।
दस दिसि परगट ह्वै रह्या, सीतल गंध सुवास ॥
पर उपगारी संत सब, आये यहि कलि माँहि ।
पिवैं पिलावैं राम रस, आप सुवारथ नाहिं ॥
साध सबद सुख बरखि है, सीतल होइ सरीर ।
दादू अंतर आतमा, पीवै हरि जल नीर ॥
औगुण छांड़ै गुण गहै, सोई सिरोमणि साध ।
गुण औगुण थैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥
विष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी ।
बाँका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी ॥

सार गहनी

पहिली न्यारा मन करै, पीछै सहज सरीर ।
दादू हंस बिचार सौं, न्यारा कीया नीर ॥
मन हंसा मोती चुगै, कंकर दीया डारि ।
सतगुरु कहि समझाइया, पाया भेद बिचारि ॥
दादू हंसा परेखिये, उत्तिम करणी चाल ।
बगुला वैसे ध्यान धरि, परतपि कहिये काल ॥
गऊ बच्छ का ग्यान गहि, दूध रहै ल्यौ लाइ ।
सींग पूँछ पग परिहरै, अस्थन लागै धाइ ॥

सेवक

सेवग सेवा करि डरै, हम थै कछू न होइ ।
तूँ है तैसी बंदगी, करि नहिं जानै कोय ॥
फल कारण सेवा करै, याचै त्रिभुवन राव ।
दादू सो सेवग नहीं, खेलै अपना डाव ॥
सूरज सन्मुख आरसी, पावक किया प्रकास ।
दादू साँई साध बिच, सहजैं निपजै दास ॥

भेष

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता सूर अनेक ।
दादू भेष अनंत हैं, लागि रहया सो एक ॥
कनक कलस बिष सूँ भरया, सो किस आवै काम ।
सो धनि कूटा चाम का, जा में अमृत राम ॥
स्वाँग साध बहु अंतरा, जेता धरनि अकास ।
साधू राता राम सूँ, स्वाँग जगत की आस ॥
(दादू) स्वाँगी सब संसार है, साधू कोई एक ।
हीरा दूरि दिसंतरा, कंकर और अनेक ॥
दादू एकै आतमा, साहिब है सब माहिं ।
साहिब के नाते मिलै, भेष पंथ के नाहिं ॥

(दादू) जग दिखलावै बावरी, षोड़स करै सिंगार ।
तहँ न सँवारै आप कूँ, जहँ भीतर भरतार ॥

प्रेम

प्रेम भगति जब ऊपजै, निह्चल सहज समाध ।
दादू पीवे प्रेम रस, सतगुर के परसाद ॥
दादू राता राम का, पीवै प्रेम अघाइ ।
मतवाला दीदार का, मांगै मुक्ति बलाइ ॥
ज्यूँ अमली के चित अमल है, सूरे के संग्राम ।
निरधन के चित धन वसै, यों दादू के राम ॥
जो कुछु दिया हम कौं, सो सब तुमहीं लेहु ।
तुम बिन मानै नहीं, दरस आपणा देहु ॥
भोरे भोरे तन करै, बंडै करि कुरबाण ।
मीठा कौड़ा ना लगै, दादू तौहू साण ॥
जब लग सीस न सौंपिये, तब लग इसक न होइ ।
आसिक मरणैं ना डरै, पिया पियाला सोइ ॥
इसक मुहब्बत मस्त मन, तालिब दर दीदार ।
दोस्त दिल हरदम हजूर, यादगार हुसियार ॥
दादू इसक अलाह का, जे कबहूँ प्रगटै आय ।
(तौ) तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाय ॥
दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोइ ।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ैं, प्रेम बिना क्या होइ ॥
प्रीती जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं ।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नाहिं ॥
आसिक मासुक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ ॥
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग ।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग ॥

मूआँ पीछैं छूटिगे, तौ सब आये उस माहिँ ॥
संगी सोई कीजिये, जे इस्थिर इहि संसार ।
ना वहु खिरै न हम खपैं, ऐसा लेहु बिचार ॥
संगी सोई कीजिये, सुख दुख का साथी ।
दादू जीवण मरण का, सो सदा संगाती ॥
कबहूँ न बिहड़ै सो भला, साधू दिढ़ मति होइ ।
दादू हीरा एक रस, बांधि गांठड़ी सोइ ॥

मिश्रित

आपा उरझैं उरझिया, दीसै सब संसार ।
आपा सुरझैं सुरझिया, यहु गुर ग्यान बिचार ॥
सब गुण सब ही जीव के, दादू ब्यापैं आइ ।
घर माहैं जामै मरै, कोइ न जाणै ताहि ॥
दादू बेली आत्मा, सहज फूल फल होइ ।
सहज सहज सतगुर कहै, बूझै बिरला कोइ ॥
हरि तरवर तत आतमा, बेली करि बिस्तार ।
दादू लागै अमर फल, कोइ साधू सीचणहार ॥
दया धर्म का रूखड़ा, सत सौं बधता जाइ ।
संतोष सौं फूलै फलै, दादू अमर फल खाइ ॥
माया बिहड़ै देखताँ, काया संग न जाइ ।
कृत्तम बिहड़ै बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ ॥
जेते गुण ब्यापैं जीवकौं, तेते तैं तजै रे मन ।
साहिब अपड़े कारणे, भलो निबाह्यो पन ॥

पारख

(दादू) जैसे माहैं जिव रहै, तैसी आवै बास ।
मुख बोलै तब जाणिये, अंतर का परकास ॥
मति बुधि बिबेक बिचार बिन, माणस पसू समान ।
समझाया समझै नहीं, दादू परम गियान ॥
काचा उछलै ऊफणै, काया हाँडी माहि ।

दादू पाका मिलि रहै, जीव ब्रह्म द्वै नाहिं ॥
अंधे हीरा परखिया, कीया कौड़ी मोल।
दादू साधू जौहरी, हीरे मोल न तोल ॥
(दादू) साहिब कसै सेवग खरा, सेवग कौं सुख होइ।
साहिब करै सो सब भला, बुरा न कहिये कोइ ॥

माया

साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवै जाइ।
दादू सुपिना देखिये, जागत गया बिलाइ ॥
(दादू) माया का सुख पंच दिन, गर्ब्यौ कहा गँवार।
सुपिनैं पायो राज धन, जात न लागै बार ॥
कालरि खेत न नीपजै, जे बाहै सौ बार।
दादू हाना बीज का, क्या पचि मरे गँवार ॥
राहु गिलै ज्यौं चंद कौं, गहन गिलै ज्यौं सूर।
कर्म गिलै यौं जीव कौं, नखसिख लागै पूर ॥
कर्म कुहाड़ा अंग बन, काटत बारंबार।
अपने हाथौं आप कौं, काटत है संसार ॥
(दादू) सब को वणिजै खार खलि, हीरा कोइ न लेइ।
हीरा लेगा जौहरी, जो माँगे सो देइ ॥
सुर नर मुनियर बसि किये, ब्रह्मा बिस्नु महेस।
सकल लोक के गिर खड़ी, साधू के पग हेठ ॥
(दादू) पहिली आप उपाइ करि, न्यारा पद निर्बाण।
ब्रह्मा बिस्नु महेस मिलि, बंध्या सकल बंधाण ॥
दादू बाँधे बेद बिधि, भरम करम उरझाइ।
मरजादा माहैं रहै, सुमिरण किया न जाइ ॥
(दादू) माया मीठी बोलणी, नै नै लागै पाँइ।
दादू पैसे पेट में, काढ़ि कलेजा खाइ ॥
भँवरा लुब्धी बास का, कँवल बँधाना आइ।
दिन दस माहैं देखतां, दून्यू गये बिलाइ ॥

परिचय

(दादू) निरंतर पिउ पाइया, तीन लोक भरिपूर ।
सब सेजौं साईं बसैं, लोग बतावै दूरि ॥
दादू देखौं निज पीव कौं, दूसर देखौं नाहिं ।
सबै दिसा सौं सोधि करि, पाया घट ही माहिं ॥
पुहुप प्रेम बरिषै सदा, हरि जन खेलैं फाग ।
ऐसा कौतिग देखिये, दादू मोटे भाग ॥
(दादू) देही माहै दोइ दिल, इक खाकी ईक नूर ।
खाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर ॥
(दादू) जब दिल मिला दयाल सौं, तब अंतर कुछ नाहिँ ॥
ज्यों पाला पानी कौं मिल्या, त्यौं हरि जन हरि माहिँ ॥

मन

सोई सूर जे मन गहै, निमखि न चलने देइ ।
जब हीं दादू पग भरै, तब हीं पाकड़ि लेइ ॥
जब लगि यहु मन थिर नहीं, तब लगि परस न हेइ ।
दादू मनवाँ थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ ॥
यहु मन कागज की गुड़ी, उड़ि चढ़ी आकास ।
दादू भीगै प्रेम जल, तब आइ रहै हम पास ॥
सो कुछ हम थैं ना भया, जा पर रीझै राम ।
दादू इस संसार में, हम आए बेकाम ॥
इंद्री स्वारथ सब किया, मन माँगै सो दीन्ह ।
जा कारण जग सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह ॥
(दादू) ध्यान धरें का होत है, जे मन नहिं निर्मल होइ ।
तौ बग सबहीं ऊधरैं, जे यहि बिधि सीझै कोइ ॥
(दादू) जिसका दर्पण ऊजला, सो दर्पण देखै माहिँ ।
जिसकी मैली आरसी, सो मुख देखै नाहिँ ॥
जागत जहँ जहँ मन रहै, सोवत तहं तहं जाइ ।
दादू जे जे मन बसै, सोइ सोइ देखै आइ ॥

जहँ मन राखै जीवताँ, मरताँ तिस घरि जाइ ।
दादू बासा प्राण का, जहं पहली रह्या समाइ ॥
जीवत लूटै जगत सब, मिरकत लूटैं देव ।
दादू कहाँ पुकारिये, करि करि मूए सेव ॥

निंदा

(दादू) जिहि घर निंद्या साध की, सो घर गये समूल ।
तिनकी नीव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल ॥
(दादू) निंद्या नाँव न लीजिये, सुपनै हीं जिन होय ।
ना हम कहैं न तुम सुणौ, हम जिनि भाखै कोइ ॥
अणदेख्या अनरथ कहैं, कलि प्रथमी का पाप ।
धरती अंबर जब लगैं, तब लग करैं कलाप ॥
(दादू) निंदक बपुरा जिन मरै, पर उपकारी सोइ ।
हम कूँ करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥

सूरमा

(दादू) जे मुझ होते लाख सिर, तौ लाखौं देती वारि ।
सह मुझ दीया एक सिर, सोई सौंपे नारि ॥
सूरा चढ़ि संग्राम कौं, पाछा पग क्यों देइ ।
साहिब लाजै भाजताँ, धृग जीवन दादू तेइ ॥
काइर काम न आवई, यहु सूरे का खेत ।
तन मन सौंपै राम कौं, दादू सीस सहेत ॥
जब लग लालच जीव का, (तब लग) निर्भय हुआ न जाइ ।
काया माया तन तजै, तब चौड़े रहै बजाइ ॥
काया कबज कमान करि, सार सबद करि तीर ।
दादू यहु सर साँधि करि, मारै मोटे मीर ॥
(दादू) तन मन काम करीम के, आवै तौ नीका ।
जिस का तिस कौं सौंपिये, सोच क्या जी का ॥
दादू पाखर पहरि करि, सब कों झूझण जाइ ।
अंगि उघाड़ै सूरिवाँ, चोट मुँहै मुँह खाइ ।

(दादू कहै) जे तू राखै साइयाँ, तौ मारि न सक्कै कोइ।
बाल न बंका करि सकै, जे जग बैरी होइ॥

सर्व समरथ

जिनि सत छाड़ै बावरे, पूरिक है पूरा।
सिरजे की सब चिंत है, देबे कौं सूरा ॥टेक॥
गर्भ बास जिन राखिया, पावक थैं न्यारा।
जुगति जतन करि सींचिया, दे प्राण अधारा॥
कुंज कहाँ धरि संचरै, तहँ को रखवारा।
जल थल जीव जिते रहैं, सो सब कौं पूरै।
संपट सिला में देत है, काहें नर झूरै॥
जिन यहु भार उठाइया, निरबाहै सोई।
दादू छिन न बिसारिये, ता थैं जीवन होई॥

नाम और सुमिरन

मनाँ भजि राम नाम लीजे।
साध संगति सुमिरि सुमिरि, रसना रस पीजे॥
साधू जन सुमिरण करि, केते जपि जागे॥
अगम निगम अमर किये, काल कोइ न लागे।
नीच ऊंच चिंतन करि, सरणागति लीये॥
भगति मुकति अपणी गति, ऐसैं जन कीये।
केते तिरि तीर लागे, बंधन भव छूटे॥
कलिमल विष जुग जुग के, राम नाम खूटे॥
भरम करम सब निवारि, जीवन जपि सोई।
दादू दुख दूर करण, दूजा नहिं कोई॥

नाँउ रे नाँउ रे सकल सिरोमणि नाँउ रे, मैं बलिहारी जाँउ रे ॥टेक॥
दृतर तारै पारि उतारै, नरक निवारै नाँउ रे।
तारणहारा भौजल पारा, निर्मल सारा नाँउ रे॥
नूर दिलावै तेज मिलावै, जोति जगावै नाँउ रे।
सब सुख दाता अमृत राता, दादू माता नाँउ रे॥

चितावनी

कागा रे करंक परि बोलै । खाइ मांस अरु लगहीं डोलै ॥टेक॥
जा तन कौं रचि अधिक सँवारा । सो तन ले माटी में डारा ॥
जा तन देखि अधिक नर फूले । सो तन छांड़ि चल्या रे भूले ॥
जात न देखि मन में गरबाना । मिलि गया माटी तजि अभिमाना॥
दादू तन की कहा बड़ाई । निमख माहीं माटी मिलि जाई ॥

सजनी रजनी घटती जाइ ।
पल पल छीजै अवधि दिन आवै, अपनौं लाल मनाइ ॥टेक॥
अति गति नींद कहा सुख सोवै, यहु औसर चलि जाइ ।
यहु तन बिछुरें बहुरि कहँ पावै, पीछैं ही पछिताइ ॥
प्राण पति जागै सुंदरि क्यों सोवै, उठि आतुर गहि पांइ ।
कोमल बचन करुणा करि आगैं, नख सिख रहु लपटाइ ॥
सखी सुहाग सेज सुख पावै, प्रीतम प्रेम बढ़ाइ ।
दादू भाग बड़े पिव पावै, सकल सिरोमणि राइ ॥

मन रे राम बिना तन छीजै ।
जब यहु जाइ मिलै माटी में, तब कहु कैसें कीजै ॥टेक॥
पारस परसि कंचन करि लीजै, सहज सुरति सुखदाई ।
माया बेलि बिषै फल लागे, तापर भूलि न भाई ॥
जब लग प्राण प्यंड है नीका, तब लग ताहि जिनि भूलै ।
यहु संसार सेंबल कै सुख ज्यूं, ता पर तू जिनि फूलै ॥
और येह जानि जग जीवन, समझि देखि सचु पावै ।
अंग अनेक आन मति भूलै, दादू जिनि डहकावै ॥

प्रेम

बाला सेज हमारी रे, तूँ आव हौं बारी रे । हौं दासी तुम्हारी रे ॥टेक॥
तेरा पंथ निहारूँ रे, सुँदर सेज सँवारूँ रे । जियरा तुम पर वारूँ रे ॥
तेरा अँगना पेखौं रे, तेरा मुखड़ा देखौं रे । जब जीवन लेखौं रे ॥
मिलि सुखड़ा दीजै रे, यह लाहड़ा लीजै रे । तुम देखें जीजै रे ॥
तेरे प्रेम की माती रे, तेरे रगड़े राती रे । दादू वारणैं जाती रे ॥

तेरे नांउ की बलि जाऊँ, जहां रहौं जिस ठाऊँ ॥टेक॥
तेरे बैनौं की बलिहारी, तेरे नैनहुँ ऊपरि वारी।
तेरी मूरति की बलि कीती, वारि वारि हौं दीती ॥
सोभित नूर तुम्हारा, सुंदर जोति उजारा।
मीठा प्राण पियारा, तूँ है पीव हमारा ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूँ मेरे ॥

हरि रस माते मगन भये।
सुमिरि सुमिरि भये मतवाले, जामण मरण सब भूलि गये ॥
निर्मल भगति प्रेम रस पीवैं, आन न दूजा भाव धरैं।
सहजैं सदा राम रंगि राते, मुकति बैकुंठैं कहा करैं ॥
गाइ गाइ रसलीन भये हैं, कछू न माँगैं संत जनाँ।
और अनेक देहु दत आगै, आन न भावैं राम बिनाँ ॥
इकटग ध्यान रहै ल्यौ लागे, छाकि परे हरि रस पीवैं।
दादू मगन रहैं रसमाते, ऐसैं हरि के जन जीवैं ॥

बिरह

अजहुँ न निकसै प्राण कठोर ॥टेक॥
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर।
चारि पहर चारौं जुग बीते, रैनि गँवाई भोर ॥
अवधि गई अजहूँ नहिं आए, कतहुँ रहे चित चोर।
कबहूँ नैन निरखि नहिँ देखे, मारग चितवत तोर ॥
दादू ऐसे आतुर बिरहणि, जैसे चंद चकोर।

आवौ राम दया करि मेरे, बार बार बलिहारी तेरे ॥टेक॥
बिरहनि आतुर पंथ निहारै, राम राम कहि पीव पुकारै।
पंथी बूझै मारग जोवै, नैन नीर जल भरि भरि रोवै ॥
निस दिन तलफै रहै उदास, आतम राम तुम्हारे पास।
बप बिसरै तनकी सुधि नाहीं, दादू बिरहनि मिरतक माहीं ॥

कतहू रहे हो बिदेस, हरि नहिँ आये हो।
जनम सिरानौ जाइ, पिव नहिं पाये हो॥
बिपति हमारी जाइ, हरि सौं को कहै हो।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि क्यूँ रहै हो॥
पिव के बिरह बियोग, तन की सुधि नहिँ हो।
तलफि तलफि जिव जाइ, मिरतक ह्वै रही हो॥
दुखित भई हम नारि, कब हरि आवैं हो।
तुम्ह बिन प्राण अधार, जिव दुख पावै हो॥
प्रगटहु दीनदयाल, बिलम न कीजै हो।
दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजै हो॥

कौण बिधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ ॥टेक॥
पास पीव परदेस है रे, जब लग प्रगटै नाहिँ ॥
बिन देखे दुख पाइये, यहु सालै मन माहिँ ॥
जब लग नैन न देखिये, परगट मिलै न आइ।
एक सेज संगहि रहै, यहु दुख सह्या न जाइ॥
तब लग नेड़े दूरि है, जब लग मिलै न मोहिँ।
नैन निकट नहिँ देखिये, संगि रहे क्या होइ॥
कहा करौं कैसे मिलै रे, तलफै मेरा जीव।
दादू आतुर बिरहनी, कारण अपने पीव॥

विनय

हमरे तुमहीं हो रखपाल।
तुम बिन और नहीं कोउ मेरे, भौ दुख मेटणहार॥
बैरी पंच निमष नहिँ न्यारे, रोकि रहे जम काल।
हा जगदीस दास दुख पावै, स्वामी करो सँभाल॥
तुम बिन राम दहैं ये दुंदर, दसौं दिसा सब साल।
देखत दीन दुखी क्यों कीजे, तुम हौ दीनदयाल॥
निर्भय नाँव हेत हरि दीजे, दरसन परसन लाल।
दादू दीन लीन करि लीजे, मेटहु सबै जँजाल॥

क्यौं बिसरै मेरा पीव पियारा। जीव कि जीवन प्राण हमारा ॥टेक॥
क्यौं कर जीवै मीन जल बिछुरें, तुम बिन प्राण सनेही।
च्यंतामणि जब कर थैं छूटै, तब दुख पावै देही ॥
माता बालक दूध न देवै, सो कैसें करि पीवै।
निर्धन का धन अनत भुलाना, सो कैसें करि जीवै ॥
परखहु राम सदा सुख अमृत, नीझर निर्मल धारा।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजै, दादू दास तुम्हारा ॥

घट मठ

भाई रे घर ही में घर पाया ॥
सहजि समाइ रह्या ता माहीं, सतगुरु खोज बताया ॥
ता घर काज सबै फिरि आया, आपै आप लखाया।
खोलि कपाट महल के दीन्हे, थिर अस्थान दिखाया ॥
भय औ भेद भरम सब भागा, साच सोई मन लाया।
प्यंड परे जहां जिव जावै, ता में सहज समाया ॥
निहचल सदा चलै नहिँ कबहूँ, देख्या सब में सोई।
ताही सूं मेरा मन लागा, और न दूजा कोई ॥
आदि अंत सोई घर पाया, इब मन अनत न जाई।
दादू एक रँगै रँग लागा, तामें रह्या समाई ॥

मन

मेरे तुमहीं राखणहार, दूजा को नहीं।
ये चंचल चहुँ दिसि जाइ, काल तहीं तहीं ॥टेक॥
मैं केते किये उपाइ, निहचल ना रहै।
जहँ बरजौं तहँ जाइ, मदमातौ बहै ॥
जहँ जाणौं तहँ जाइ, तुम थैं ना डरै।
ता स्यौं कह्या बसाइ, भावै त्यूँ करै ॥
सकल पुकारैं साध, मैं केता कह्या।
गुर अंकुस मानै नाहिँ, निरभै ह्वै रह्या ॥

तुम बिन और न कोइ, इस मन को गहै ।
तूँ राखै राखणहार, दादू तौ रहै ॥

करम धरम

मूल सींचि बधै ज्यूँ बेला सो तत तरवर रहै अकेला ॥टेक॥
देवी देखत फिरैं ज्यूँ भूले खाइ हलाहल विष कौं फूले ।
सुख कौं चाहै पड़ै गल पासी, देखत हीरा हाथ थैं जासी ॥
केइ पूजा रचि ध्यान लगावैं, देवल देखैं खबरि न पावैं ।
तोरैं पाती जुगति न जानी, इहि भ्रमि रहे भूलि अभिमानी ॥
तीरथ बरत न पूजै आसा, बनखंडि जाहीं रहैं उदासा ।
यूँ तप करि करि देह जलावैं, भरमत डोलैं जनम गंवावैं ॥
सतगुर मिलै न संसा जाई, ये बंधन सब देइं छुड़ाई ।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति माहिँ लखावै ॥

जगत मिथ्या

मन रे तूँ देखै सो नाहीं, है सो अगम अगोचर माहीं ॥टेक॥
निस अँधियारी कछू न सूझै, संसै सरप दिखावा ।
ऐसैं अंध जगत नहिं जानै, जीव जेवड़ी खावा ॥
मृग-जल देखि तहाँ मन धावै, दिन दिन झूठी आसा ।
जहँ जहँ जाइ तहाँ जल नाहीं, निहचै मरै पियासा ॥
भरम बिलास बहुत बिधि कीन्हा, ज्यौं सुपिनैं सुख पावै ।
जागत झूठ तहाँ कुछ नाहीं, फिरि पीछैं पछितावै ॥
जब लग सूता तब लग देखै, जागत भरम बिलाना ।
दादू अंत इहाँ कुछ नाहीं, है सो सोधि सयाना ॥

निंदक

न्यंदक बाबा बीर हमारा, बिनहीं कौड़े बहै बिचारा ।
कर्म कोटि के कुसमल काटै, काज संवारै बिनहीं साटै ।
आपण डूबै और कौं तारै, ऐसा प्रीतम पार उतारै ॥
जुगि जुगि जीवौ न्यंदक मोरा, राम देव तुम करौ निहोरा ।
न्यंदक बपुरा पार-उपगारी, दादू न्यंद्या करै हमारी ॥

कपट भक्ति

हम पाया हम पाया रे भाई । भेष बनाइ ऐसी मनि आई ॥टेक॥
भीतर का यहु भेद न जानै । बहै सुहागनि क्यूँ मन मानै ॥
अंतर पीव सौं परचा नाहीं । भई सुहागनि लोगन माहीं ॥
साईं सुपिनै कबहु न आवै । कहिबा ऐसें महल बुलावै ॥
इन बातन मोहिं अचिरज आवै । पटम कियें पिव कैसै पावै ॥
दादू सुहागनि ऐसे कोई । आपा मेटि राम रत होई ॥

सुंदरदास

कहा जाता है कि बाबा दादू दयाल के ५२ शिष्य थे और उनमें से एक प्रधान शिष्य सुंदरदास जी भी थे। इनका जन्म द्योसा (जयपूर राज्य) में चैत्र शुक्ला नवमी सं० १६५३ में हुआ था। इनके पिता का नाम परमानंद और माता का सती देवी था। यह लोग बूसर गोत्र के खंडेलवाल वैश्य थे। इनकी माता का जन्म एक सोंकिया गोत्र के खंडेलवाल महाजन के यहाँ हुआ था। इनकी उत्पत्ति के संबंध में भी एक अलौकिक सी कथा प्रसिद्ध है। पहले साधुओं में यह प्रथा थी कि जब कपड़े की आवश्यकता पड़ती थी तो लोगों के यहाँ से सूत माँग लिया करते थे। जग्गा नाम का दादू का एक शिष्य एक दिन सूत इकट्ठा करने के अभिप्राय से सयोग से सती देवी के द्वार पर उपस्थित हुआ और फ़क़ीरों की सधुक्कड़ी बोली में सवाल किया—

'दे माई सूत, ले माई पूत'

संयोग से कुमारी सती देवी उस समय बैठी चरखा कात रही थी। उसने बालिकोचित सरल भाव से अपने कते हुए सूत से थोड़ा सा निकाल कर जग्गा को देते हुए कहा—'लो बाबाजी सूत'। बाबाजी के मुंह से भी निकल पड़ा—'ले माई पूत'। लौट कर जग्गा ने यह वृत्तांत अपने गुरु दादू को सुनाया। उन्होंने ध्यान से जब इस विषय पर विचारा तो बड़े संकट में पड़े। कहने लगे जग्गा तूने यह क्या वचन दे डाला, उस लड़की के भाग्य में तो पुत्रवती होना लिखा ही नहीं है, पर अब तेरे बचन की रक्षा तो होनी ही चाहिए। अब यही एक उपाय है कि तू ही जाकर सती के गर्भ में वास कर। जग्गाजी ने उदास होकर कहा जो आज्ञा, पर अपने चरण से अलग न करियेगा। दादू ने उसे ढाढ़स देते हुए कहा कि कोई चिंता नहीं, तू जाकर सती के माता-पिता से यह कह आ कि सती के विवाह के समय वह उसके पति तथा सास-ससुर को

यह जता दें कि इस संबंध से जो प्रथम पुत्र होगा वह परम भक्त होगा और ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही वैराग्य ले लेगा।

उपर्युक्त कथानक के सत्यासत्य पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, पर इतना तो तथ्य है कि सती का ब्याह जयपूर राज्यांतर्गत धौसा (जयपूर राज्य की पुरानी राजधानी) के परमानंद नामक महाजन से हुआ था और दादू की मृत्यु के प्रायः ७ वर्ष पहले (सं० १६५३) सुंदरदास का जन्म हुआ और यह बालक सं० १६५९ में दादू के दर्शन के थोड़े दिन बाद ही घर-बार छोड़ विरक्त हो विद्याभ्यास के लिये काशी चल पड़ा था। इस वृत्तांत की पुष्टि भक्तमाल में आये हुए राघवदास के निम्नलिखित पद्य से होती है—

दिवसा है नग्र चोखा बूसर है साहूकार
सुंदर जनम लियो ताहि घर आइ कै।
पुत्र की चाहि पति दई है जनाइ त्रिया
कह्यो समुझाइ स्वामी कहौ सुखदाइ कै।
स्वामी मुख कही सुत जनमैगो सही
पै बिराग लैगो वही धर रहै नहीं माइ कै।
एकादस बरस में त्याग्यो घर माल सब
वेदांत पुरान सुने बारानसी जाइ कै॥

कुछ विद्वानों की धारणा है कि सं० १६५९ में जब दादू जी द्यौसा गए थे उसी समय ये दादू के शिष्य हो गए और उन्हीं के साथ निकल पड़े और नराणा में उनके स्वर्गवास (सं० १६६०) तक बराबर उन्हीं के साथ रहे। कहते हैं कि पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार ही परमानंद (सुंदर-दास के पिता) ने पुत्र को दादू के चरणों में समर्पित कर दिया। दादू ने पुत्र को प्यार करते हुए कहा यह बालक तो बड़ा सुंदर है। किसी-किसी के अनुसार इनके प्रथम शब्द यह थे 'अरे सुंदर तू आ गया' (अर्थात् जग्गा तू सुंदर के रूप में अथवा सुंदर रूप में पुनः प्रगट हो गया)। कहते हैं, दादू के प्यार करते ही सुंदर के शरीर की कांति सहस्रधा बढ़ गई और उसका मन भी परिवर्तित हो गया और उसने मरते दम

तक दादू का साथ न छोड़ा। इनके सौम्य और सुश्री रूप की प्रशंसा बहुत प्रबल है और जान पड़ता है वास्तव में यह 'सुंदर' रहे होंगे। इनका नाम 'सुंदर' दादू का रक्खा हुआ ही कहा जाता है।

कहते हैं, दादू जी की मृत्यु के बाद उनके पुत्र और उत्तराधिकारी गरीबदासजी ने ईर्ष्यावश सुंदर का कुछ अपमान किया था जिससे खिन्न हो यह कुछ दिन के लिये एक बार फिर अपने माता-पिता के पास चले आए थे और प्रायः तीन या चार वर्ष घर में ही रहे पर हरिचर्चा के सिवाय इनका और कोई काम न था। अंत में सं० १६६४ में जब सुंदर-दास जी लगभग ग्यारह वर्ष के रहे होंगे, यह जगजीवन नाम के एक संस्कृत के विद्वान् के संपर्क में आए। उसने इन्हें काशी चलकर विद्या-ध्ययन की सलाह दी और ये तैयार भी हो गए। कहा जाता है, तब से लेकर १९ वर्ष तक (सं० १६८३ तक) इन्होंने काशी के प्रकांड पंडितों के यहाँ संस्कृत साहित्य का व्यापक और गंभीर अध्ययन किया। साथ ही वहाँ के साधु-संतों का सत्संग भी ख़ूब किया। सं० १६८३ के लग-भग यह फिर राजपूताने लौटे और फ़तेहपुर के शेखावाटी नामक स्थान पर अपने एक पुराने गुरु भाई बाबा प्रागदास के साथ रहने लगे। वहाँ पर महाजनों का इनकी स्मृति में बनवाया हुआ एक पक्का मकान और एक कुँआ अब भो मौजूद है। यहाँ पर वह प्रायः १५ वर्ष तक रहे। सं० १६९९ में इनके प्रिय सुहृद् बाबा प्रागदास जी की मृत्यु हो गई और इसके बाद इनका जी शेखाबाटी से उचट गया और फिर इन्होंने देशाटन और सत्संग में अपना जीवन बिताना आरंभ किया। उत्तरीय भारत, पंजाब और राजपूताने में ही इनके अधिक घूमने के प्रमाण मिलते हैं। गुजरात और काठियावाड़ प्रांतों में भी इनके घूमने के प्रमाण मिले हैं।

घूम फिर कर इन्होंने फिर कुछ दिन फ़तेहपुर में निवास किया था पर अंत में सं० १७४५ में यह साँगानेर (जयपुर से ८ मील दक्खिन) चले गए। वहाँ दादू के एक प्रधान शिष्य रज्जब जी रहते थे। यहीं पर उन्होंने अपने अंतिम दिन काटे। इस समय इनकी अवस्था ९० वर्ष

के ऊपर थी। सं० १७४६ में यह कुछ रोगग्रस्त हुए और बीमारी बढ़ती ही गई पर साथियों के बहुत आग्रह करने पर भी इन्होंने गुरु और ईश्वर गुण गान के अतिरिक्त किसी औषधि का सेवन नहीं किया और अंत में उसी साल कार्तिक सुदी अष्टमी वृहस्पतिवार के दिन परलोक सिधारे। इन्होंने अंत समय जो बचन कहे थे वह अंत समय की 'साखी' के नाम से प्रसिद्ध हैं और प्रस्तुत संग्रह में दिए गए हैं।

इनका रचनाकाल इनके काशी से लौटने के बाद आरंभ होता है। संत कवियों में यही ऐसे थे जिनकी शिक्षा और प्रतिभा दोनों ही विलक्षण थीं। इसके सिवा शास्त्रोक्त काव्यकला में भी यही एक प्रवीण थे। अन्य संत कवियों की भाँति इन्होंने केवल भजन के योग्य शब्द और पद ही नहीं कहे हैं। उच्चकोटि के प्रथम श्रेणी के कवियों के समकक्ष इन्होंने अनेक कवित्त सवैये भी रचे हैं। भाषा भी इनकी वही सधुक्कड़ी बोली नहीं बल्कि सुंदर मँजी हुई सुव्यवस्थित पर ईषत् राजस्थानी-रंजित व्रजभाषा है। सारांश यह कि भक्तिरस के साथ-साथ उच्च कोटि की साहित्यिकता का परिचय देने वाले यही एक संत कवि हो गए हैं। इनके कवित्त-सवैयों में, यमक, अनुप्रास, श्लेष आदि तथा विविध अर्थालंकारों की भी अच्छी बहार देखने में आती है। और सब तो केवल संत थे पर ये संत तो थे ही, साथ ही प्रथम श्रेणी के कवि और विद्वान् भी थे। यही कारण था कि इनकी रचना में इस प्रकार देशकाल तथा समाज की रीति-नीति तथा लोक मर्यादा की अवहेलना नहीं खटकती। इसके साथ ही शास्त्रसम्मत लोक, धर्म तथा वेद-पुराण आदि की उत्तरदायित्व शून्य आलोचना भी इनके काव्य में नहीं है। अर्थशून्य अनूठी या इन उटपटाँग उक्तियों से इन्हें चिढ़ थी जिनका मुख्य उद्देश्य शायद अशिक्षित जनता पर प्रभाव डालता ही रहा होगा। इनके दार्शनिक सिद्धांतों, सृष्टितत्त्व तथा आत्मा-परमात्मा आदि आध्यात्मिक विषयों से संबंध रखने वाले पदों में वैसी रहस्यपूर्ण या ऊटपटांग तथा समझ में न आनेवाली बातें नहीं कही गई हैं जैसी कि कबीर के पदों में मिलती हैं। इनके वचन अधिकतर शास्त्रसम्मत हुए

हैं। इनकी कविता में हास्य और विनोद का भी अच्छा पुट देखने में आता है। भिन्न-भिन्न देशों के रस्म-रिवाज पर इनकी बड़ी मनोरंजक उक्तियाँ मिलती हैं।

इनके मुख्य ग्रंथ 'ज्ञान-समुद्र', 'लघु-ग्रंथावली', 'साखी', 'पद' और 'सुंदर-बिलास' हैं। यों तो छोटे-बड़े इनके २२ ग्रंथ मिलते हैं पर इनका प्रधान ग्रंथ 'सुंदर-बिलास' है। इसका का एक उत्तम संस्करण 'सुंदर-सार' नाम से काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने जयपुर के पुरोहित हरिनारायण जी बी० ए० द्वारा संपादित करा प्रकाशित किया है। प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस ने भी 'सुंदर-बिलास' प्रकाशित किया है। प्रस्तुत संग्रह में दोनों की सहायता ली गई है।

पतिव्रता

एक सही सब के उर अंतर ता प्रभु कूँ कहु काहि न गावै।
संकट माहिं सहाय करै पुनि सो अपनी पति क्यूँ बिसरावै।
चार पदारथ और जहाँ लगि आठहु सिद्धि नवौ निधि पावै।
सुंदर छार परौ तिनके मुख जो हरि कूँ तजि आन कूँ ध्यावै॥

जल को सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान
मणि बिनु अहि जैसे जीवत न लहिये।
स्वाति बुंद को सनेही प्रगट जगत माँहि
एक सीप दूसरो सु चातक हु कहिये।
रवि को सनेही पुनि कमल सरोवर में
ससि को सनेही हू चकोर जैसे रहिये।
तैसे ही सुंदर एक प्रभु सूँ सनेह जोरि
और कछु देखि काहू ओर नहिं बहिये॥

गुरुदेव

गोविंद के किये जीव जात है रसातल को
गुरु उपदेसे से तो छूटै जमफंद तें।

गोबिंद के किये जीव बस परे कर्मन के
गुरु के निवाजे से फिरत है स्वछंद तें।
गोबिंद के किये जीव बूड़त भवसागर में
सुंदर कहत गुरु काढ़ै दुख द्वंद तें।
और हू कहाँ लौं कछू मुख तें कहूँ बनाय
गुरु की तौ महिमा अधिक है गोबिंद तें॥

सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु सत्व रजो तम ताप निवारी॥
इंद्रिय देह मृषा करि जानत सीतलता समता उर धारी।
व्यापक ब्रह्म बिचार अखंडित द्वैत उपाधि सबै जिन टारी।
सबद सुनाय सँदेह मिटावत सुंदर वा गुरु की बलिहारी॥

बिरह उराहना

हम कूँ तौ रैन दिन संक मन माहिँ रहै
उनकी तौ बातिन में ठीकहु न पाइये।
कबहूँ सँदेसा सुनि अधिक उछाह होइ
कबहुँक रोइ रोइ आँसुन बहाइये।
औरन के रस बस होइ रहे प्यारे लाल
आवन की कहि कहि मह कूँ सुनाइये।
सुंदर कहत ताहि काटिये सु कौन भाँति
जोइ तरु आपने सु हाथ तें लगाइये॥
पीव को अंदेसो भारी तोसूँ कहूँ सुन प्यारी
यारी तोरि गये सों तौ अजहूँ न आये हैं।
मेरे तौ जीवन प्राण निसि दिन उहै ध्यान
मुख सूँ न कहूँ आन नैन उर लाये हैं।
जब तें गये बिछोहि कल न परत मोंहि
ता तें हूँ पूछत तोहि किन बिरमाये हैं।
सुंदर बिरहिनी को सोच सखी बार बार
हम कूँ बिसार अब कौन के कहाये हैं॥

अजपा जाप

स्वासों स्वास राति दिन सोहं सोहं होइ जाप
याही माला बारंबार दृढ़ कै धरतु हैं।
देह परे इंद्री परे अंतःकरण परे
एकही अखंड जाप ताप कूँ हरतु है।
काठ की रुद्राच्छ की रु सूतहू की माला और
इनके फिराये कछु कारज सरतु है।
सुंदर कहत तातैं आतमा चैतन्य रूप
आप को भजन सो तो आपही करतु है॥

अद्वैत

जैसे ईख रस की मिठाई भाँति भाँति भई
फेरि करि गारे ईख रस ही लहतु है।
जैसे घृत थीज के डरा सो बांधि जात पुनि
फेर पिघले तें वह घृत ही रहतु है।
जैसे पानी जमि के पषाण हू सों देखियत
सो पषाण फेरि पानी होय के बहतु है।
तैसे ही सुंदर यह जगत हैं ब्रह्म मै
ब्रह्म सो जगतमय वेद सु कहतु है॥

ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि अरूप अखंडित है सब माहीं।
ईसुर पावक रासि प्रचंडजू संग उपाधि लिये वरताहीं।
जीव अनंत मसाल चिराग सु दीप पतंग अनेक दिखाहीं।
सुंदर द्वैत उपाधि मिटै जब ईसुर जीव जुदे कछु नाहीं॥

शूर

असन बसन बहु भूषण सकल अंग
संपति बिबिधि भाँति भरयो सब घर है।
स्रवण नगारो सुनि छिनक में छाड़ि जात
ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहाँ मर है।

मन में उछाह रण माहिं टूक टूक होइ
निर्भय निसंक वा के रंचहू न डर है।
सुंदर कहत कोउ देह को ममत्व नाहिं
सूरमा को देखियत सीस बिनु धर है॥
पाँव रोपि रहै रण माहिं रजपूत कोऊ
हय गज गाजत जुरत जहाँ दल है।
बाजत जुझाऊ सहनाई सिंधु राग पुनि
सुनतहि कायर की छूटि जात कल है।
झलकत बरछी तिरछी तलवार बहै
मार मार करत परत खल भल है।
ऐसे जुद्ध में अडिग सुंदर सुभट सोइ
घर माहि सूरमा कहावत सकल है॥

बिचार

देह ओर देखिये तौ देह पंचभूतन को
ब्रह्म अरु कीट लग देह ही प्रधान है।
प्राण ओर देखिये तौ प्राण सबही के एक
छुधा पुनि तृषा दोऊ ब्यापत समान है।
मन ओर देखिये तौ मन को सुभाव एक
संकल्प बिकल्प करै सदा ही अज्ञान है।
आतम बिचार किये आतमा ही दीसै एक
सुंदर कहत कोऊ दूसरी न आन है॥

एकहि कूप तें नीरहि सींचत ईख अफीमहिं अंब अनारा।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि मिष्ट कटूक खटा अरु खारा।
त्यूँही उपाधि संजोग तें आतम दीसत आहि मिल्यो सविकारा।
काढ़ि लिये सुबिबेक बिचार सुं सुंदर सुद्ध सरूपहि न्यारा॥

मन

घेरिये तौ घेरे हू न आवत है मेरो पूत
जोई परबोधिये सो कान न धरतु है।

नीति न अनीति देखै सुभ न असुभ पेखै
पल ही में होती अनहोती हू करतु है।
गुरु की न साधु की न लोक बेदहू की संक
काहू की न मानै न तौ काहू तें डरतु है।
सुंदर कहत ताहि धीजिये सु कौन भाँति
मन को सुभाव कछु कह्यो न परतु है॥
पलही में मरि जाय पहली में जीवतु है
पलही में पर हाथ देखत बिकानो है।
पलही में फिरै नवखंड हू ब्रह्मॉंड सब
देख्यो अनदेख्यो सो तौ या तें नहिं छानो है।
जातो नहिं जानियत आवतो न दीसै कछु
ऐसे सी बलाइ अब तासूं परयो पानो है।
सुंदर कहत याकी गति हूँ न लखि परै
मन की प्रतीत कोऊ करै सो दिवानो है॥
तो सों न कपूत कोऊ कितहूँ न देखियत
तो सों न सपूत कोऊ देखियत और है।
तू ही आप भूलै महा नीचहू तें नीच होइ
तू ही आप जानै तौ सकल सिर मौर है।
तू ही आप भ्रमै तब जगत भ्रमत देखै
तेरे स्थिर भये सब ठौर ही को ठौर है।
तू ही जीव रूप तू ही ब्रह्म है अकासवत
सुन्दर कहत मन तेरी सब दौर है॥

बचन बिबेक

और तौ बचन ऐसे बोलत है पसु जैसे
तिन के तौ बोलिबे में ढंगहूं न एक है।
कोऊ रात दिवस बकत ही रहत ऐसे
जैसी बिधि कूप में बकत मानो भेक है।
बिबिधि प्रकार करि बोलत जगत सब

घट घट प्रतिमुख बचन अनेक है।
सुन्दर कहत तातें बचन बिचारि लेहु
बचन तो वहै जा में पाइये बिबेक है॥
बोलिये तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ
न तौ मुख मौन गहि चुप होइ रहिये।
जोरिये तौ तब जब जोरिबे की जानि परै
तुक छंद अरथ अनूप जा में लहिये।
गाइये तौ तब जब गाइबे को कंठ होइ
स्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिये॥
तुक-भंग-छंद-भंग अरथ मिलै न कछु
सुंदर कहत ऐसी बाणी नहीं कहिये।
एकनि के बचन सुनत अति सुख होइ
फूल से झरत हैं अधिक मनभावने।
एकनि के बचन तौ असि मानौ बरसत
स्रवण के सुनत लगत अलखावने।
एकनि के बचन कटुक कहु बिष रूप
करत मरम छेद-दुक्ख उपजावने।
सुंदर कहत घट घट में बचन भेद
उत्तम मध्यम अरु अधम सुहावने॥

निःसंशय ज्ञानी

भावै देह छूटि जाहु कासी माहिँ गंगा तट
भावै देह छूटि जाहु छेत्र मगहर में।
भावै देह छूटि जाहु बिप्र के सदन मध्य
भावै देह छूटि जाहु स्वपच के घर में।
भावै देह छूटि देस आरज अनारज में
भावै देह छूटि जाहु बन में नगर में।
सुंदर ज्ञानी के कछु संसय रहत नहिं
सुरग नरक सब भागि गयो भरमें॥

विश्वास

जगत में आइके बिसार्‍यो है जगतपति
जगत कियो है सोई जगत भरतु है।
तेरे निसि दिन चिंता औरहि परी है आइ
उद्यम अनेक भाँति भाँति के करतु है।
इत उत जायके कमाई करि लाऊँ कछु
नेक न अज्ञानी नर धीरज धरतु है।
सुंदर कहत एक प्रभु के बिस्वास बिनु
बादहि कूँ वृथा सठ पचि के मरतु है।

धीरज धारि बिचार निरंतर तेहि रच्यो सोइ आपुहि ऐहै।
जेतिक भूक लगी घट प्राणहिं तेतिक तू अनयासहिं पैहै।
जो मन में तृस्ना करि धावत तौ तिहुं लोक न खात अ वैहै।
सुंदर तू मत सोच करै कछु चोंच दई जिन चूनहु दैहै॥

प्रेमज्ञानी

द्वन्द बिना बिचरै वसुधा पर जा घट आतम ज्ञान अपारो।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न द्वेष न म्हारु न थारो।
जोग न भोग न त्याग न संग्रह देह दसा न ढँक्यो न उघारो।
सुंदर कोउक जानि सकै यह गोकुल गाँव को पैंडोहि न्यारो॥

ज्ञानी

ज्ञानी कर्म करै नाना बिधि, अंहकार या तन को खोवै।
कर्मन को फल कछू न जोवै, अंतःकरण बासना धोवै।
ज्यूँ कोऊ खेती कूँ जोतत, लेकरि बीज भूनि के बोवै।
सुंदर कहै सुनो दृष्टांतहि, नाँगि नहाई कहा निचोवै॥

बिधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि
क्रिया सो करत दीसै यूँही नित प्रीत है।
काहू कूँ निकट राखै काहू कूँ तौ दूर भाखै
काहू सूँ नेरे न दूर ऐसी जाकी मति है।

रागहू न द्वेष कोऊ सोक न उछाह दोऊ
ऐसी विधि रहै कहूँ रति न बिरति है।
बाहिर ब्योहार ठानै मन में सुपन जानै
सुंदर ज्ञानी की कछु अदभुत गति है॥
तमोगुण बुद्धि सोतौ तवा के समान जैसे
ताके मध्य सूरज की रंचहू न जोत है।
रजोगुण बुद्धि जैसे आरसी की औंधी ओर
ताके मध्य सूरज की कछुक अद्योत है।
सत्त्वगुण बुद्धि जैसे आरसी की सूधी ओर
ताके मध्य प्रतिबिंब सूरज की पोत है।
त्रिगुण अतीत जैसे प्रतिबिंब मिटि जात
सुंदर कहत एक सूरज ही होत है॥

सांख्य ज्ञान

देह के सँजोग ही तें सीत लगै घाम लागै
देह के सँजोग ही तें छुधा तृषा पौन कूँ।
देह के सँजोग ही तें कटुक मधुर स्वाद
देह के सँजोग कहै खाटो खारो लौन कूँ।
देह के सँजोग कहै मुख तें अनेक बात
देह के सँजोग ही पकरि रहै मौन कूँ।
सुंदर देह के सँजोग दुःख मानै सुख मानै
देह के सँजोग गये दुख सुख कौन कूँ॥
छीर नीर मिले दोऊ एकठे ही होइ रहे
नीर जैसे छाड़ि हंस छीर कूँ गहतु है।
कंचन में और धातु मिलि करि वनि परयो
सुद्ध करि कंचन सुनार ज्यूं लहतु है।
पावक हूँ दारू मध्य दारू हू सों होइ रह्यो
मथि करि काढै वह दारू कूँ दहतु है।

तैसे ही सुंदर मिल्यो आतमा अनातमा जु
भिन्न भिन्न करै सो तो सांख्य ही कहतु है ॥

साध के लच्छण

धूलि जैसे धन जाके सूलि सो संसार सुख
भूलि जैसो भाग देखौ अंत कैसी यारी है।
पाप जैसी प्रभुताई स्राप जैसो सनमान
बड़ाई बिच्छुन जैसी नागिनी सी नारी है।
अग्नि जैसो इंद्रलोक विघ्न जैसो बिधि लोक
कीरति कलंक जैसी सिद्धि सी ठगारी है।
बासना न कोई वाकी ऐसी मति सदा जाकी
सुंदर कहत ताहि वंदना हमारी है ॥

आत्म अनुभव

है दिल में दिलदार सही अँखियाँ उलटी करि ताहि चितैये।
आब में खाक में बाद में आतस जान में सुंदर जानि जनैये।
नूर में नूर है तेज में तेजहि ज्योति में ज्योति मिलै मिलि जैये।
क्या कहिये कहते न बनै कछु जो कहिये कहते हि लजैये ॥

काहू कूँ पूछत रंक धन कैसे पाइयत
कान देके सुनत स्रवण सोई जानिये।
उन कह्यो धन हम देख्यो है फलानी ठौर
मनन करत भयो कब घर आनिये।
फेरि जब कह्यो धन गड़्यो तेरे घर माहिं
खोदन लाग्यो है तब निदिध्यास ठानिये।
धन नकिस्यो है जब दारिद गयो है तब
सुंदर साच्छातकार नृपति बखानिये ॥
न्याय सास्त्र कहत है, प्रगट ईसुरवाद
मीमांसा सास्त्र माहिं कर्मवाद कह्यो है।
वैसेषिक सास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध
पातंजलि सास्त्र माहिं योगवाद लह्यो है।

सांख्य सास्त्र माहिं पुनि प्रकृति पुरुष वाद
वेदांत जु सास्त्र तिन ब्रह्मवाद गह्यो है।
सुंदर कहत षटसास्त्र माहिं भयो वाद
जाके अनुभव ज्ञान वाद में न बह्यो है॥

बाचक ज्ञान

ज्ञानी की सी बात कहै मन तौ मलिन रहै
बासना अनेक भरि नेक न निवारी है।
जैसे कोऊ आभूषण अधिक बनाई राखै
कलई ऊपरि करि भीतर भँगारी है।
ज्यूंही मन आवै त्यूंही खेलत निसंक होइ
ज्ञान सुनि सीखि लियो ग्रंथ न बिचारी है।
सुंदर कहत वाके अटक ना कोऊ आहि
जोई वा सूँ मिलै जाइ ताही कूँ बिगारी है॥
देह सूँ ममत्व पुनि गेह सूँ ममत्त्व
सुत दारा सूँ ममत्त्व मन माया में रहतु है।
थिरता न लहै जैसे कंदुग चौगान माहिं
कर्मनि के बस मारयो धका कूँ बहतु है।
अंतःकरण सदा जगत सूँ रचि रह्यो
मुख सूँ बनाय बात ब्रह्म की कहतु है।
सुंदर अधिक मोहिं याही तें अचंभो आहि
भूमि पर परयो कोऊ चंद कूँ गहतु है॥

सतसंग

जो कोइ जाइ मिलै उन सूँ नर होत पवित्र लगै हरि रंगा।
दोष कलंक सबै मिटि जाइसु नीचहु जाई जु होत उतंगा।
ज्यूँ जल और मलीन महा अति गंग मिल्यो हुइ जातहि गंगा।
सुंदर सुद्ध करै ततकाल जु है जग माहिं बड़ो सतसंगा॥
प्रीति प्रचंड लगै पर ब्रह्महिं और सबै कछु लागत फीको।
सुद्ध हृदय मन होइ सुनिर्मल द्वैत प्रभाव मिटै सब जीको।

गोष्टि रु ज्ञान अनंत चलै जहँ सुंदर जैसो प्रबाह नदी को।
ताहितें जानि करौ निसि बासर साधु को संग सदा अति नीको॥

दुष्ट

अपने न दोष देखे और के औगुण पेखे
दुष्ट को सुभाव उठि निंदा ही करतु है।
जैसे कोई महल संवारि राख्यो नीके करि
कीरी तहाँ जाय छिद्र ढूंढत फिरतु है।
भोरही तें साँझ लग साँझही तें भोर लग
सुंदर कहत दिन ऐसे ही भरतु है।
पाँव के तरे की नहीं सूझै आग मूरख कूं
और सूँ कहत तेरे सिर पै बरतु है॥

सर्प डसै सु नहीं कछु तालुक बीछू लगै सु भले करि मानौ।
सिंहहु खाय तु नाहिं कछू डर जो गज मारत तौ नहिं हानौ।
आगि जरौ जल बूड़ि मरौ गिरि जाइ गिरौ कछु भै मत आनौ।
सुंदर और भले सबही यह दुर्जन संग भलो जिनि जानौ॥

आपनु काज सँवारन के हित और कु काज बिगारत जाई।
आपनु कारज होउ न होउ बुरो करि और कुँ डारत भाई।
आपहु खोवत औरहु खोवत खोइ दुनों घर देत बहाई।
सुंदर देखत ही बनि आवत दुष्ट करै नहिं कौन बुराई॥

तृष्णा

किधौं पेट चूल्हो कीधौं भाठि किधौं भाड़ आहि
जोइ कछु झोंकिये सो सब जरि जातु है।
किधौं पेट थल किधौं बापि किधौं सागर है
जेतो जल परै ते तो सकल समातु है।
किधौं पेट दैत किधौं भूत प्रेत राच्छस है
खाउं खाउं करै कछु नेक न अघातु है।

सुंदर कहत प्रभु कौन पाप लायो पेट
जब ही जनम भयो तब ही को खातु है ॥

जो दस बीस पचास भये सत होइ हजार तु लाख मँगैगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य पृथ्वीपति होन कि चाह जगैगी।
स्वर्ग पताल को राज करौं तृष्ना अधिकी अति आग लगैगी।
सुंदर एक संतोष बिना सठ तेरी तो भूख कभी न भगैगी ॥

करम धरम

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन धूप समय जु पंचागिनि बारी।
भूख सहैं रहि रूख तरे सुंदरदास सहै दुख भारी।
डासन छाड़ि के कासन ऊपर आसनि मारि पै आस न मारी ॥

मेघ सहै सीत सहै सीस पर घाम सहै
कठिन तपस्या करि कंद मूल खात है।
जोग करै जज्ञ करै तीरथ रु ब्रत करै
पुन्य नाना विधि करै मन में सुहात है।
और देवी देवता उपासना अनेक करै
आँबन की हौस कैसे आक डोंड़े जात है।
सुंदर कहत एक रवि के प्रकास विनु
जेंगना की जोति कहा रजनी विलात है ॥

कामिनी

रसिक प्रिया रस मँजरी, और सिंगारहि जान।
चतुराई करि बहुत विधि, विषय बनाई आन ॥
विषय बनाई आन, लगत विषयिन कूँ प्यारी।
जागे मदन प्रचंड, सराहै नखसिख नारी ॥
ज्यूं रोगी मिष्ठान खाइ, रोगहि बिस्तारै।
सुंदर ये गति होइ, रसिक जो रसप्रिया धारै ॥

कामिनी की तनु मानु कहिये सघन बन
वहाँ कोऊ जाय सो तौ भूले ही परतु है।

कुंजर है गति कटि केहरी को भय जा में
बेनी काली नागिनीऊ फन कूं धरतु है।
कुच हैं पहार जहाँ काम चोर रहै तहाँ
साधि के कटाच्छ बान प्रान कूं हरतु है।
सुंदर कहत एक और डर जा में अति
राच्छसी बदन खाँउ खाँउ ही करतु है॥

चितावनी

मातु पिता युवती सुत बाँधव लागत है सब कूं अति प्यारो।
लोक कुटुंब खरो हित राखत होइ नहीं हम तें कहुं न्यारो।
देह सनेह तहाँ लग जानहु बोलत है मुख सबद उचारो।
सुंदर चेतन सक्ति गई जब बेगि कहै घरबार निकारौ॥

तू कछु और विचारत है नर तेरो बिचार धरयो ही रहैगो।
कोटि उपाय करै धन के हित भाग लिख्यो तितनोहि लहैगो।
भोर कि साँझ घरी पल माँझ सु काल अचानक आइ गहैगो।
राम भज्यो न कियो कछु सुकिरत सुंदर यूँ पछताइ रहैगो॥

उपदेश

सोवत सोवत सोइ गयो सठ रोवत रोवत कै बेर रोयो।
गोवत गोवत गोइ धरयो धन खोवत खोवत तैं सब खोयो॥
जोवत जोवत बीति गये दिन बोवत बोवत लै विष बोयो।
सुंदर सुंदर राम भज्यो नहिं ढोवत ढोवत बोझहिं ढोयो॥

कार उहै अबिकार रहै नित सार उहै जु असारहि नाखै।
प्रीति उहै जुप्रतीति धरै उर नीति उहै जु अनीतिन भाखै॥
तंत उहै लगि अंत न टूटत संत उहै अपनो सत राखै।
नाद उहै सुनि बाद तजै सब स्वाद उहै रस सुंदर चाखै॥

मिश्रित

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और
चित्त सों न चंदन सनेह सों न सेहरा।

हृदय सों न आसन सहज सों न सिंहासन
भाव सी न सेज और सून्य सों न गेहरा।
सील सों न स्नान अरु ध्यान सों न धूप और
ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केहरा।
मन सी न माला कोऊ सोहं सो न जाप और
आतम सो देव नाहिं देह सों न देहरा॥
जा सरीर माहिं तू अनेक सुख मानि रह्यो
ताहि तू बिचार या में कौन बात भली है।
मेद मज्जा माँस रग रग में रकत भर्‌यो
पेटहू पिटारी सी में ठौर ठौर मली है।
हाड़न सूँ भर्‌यो मुख हाड़न के नैन नाक
हाथ पाउ सोऊ सब हाड़न की नली है।
सुंदर कहत याहि देखि जनि भूलै कोई
भीतर भँगार भरी ऊपर तौ कली है।

पतिव्रत

सुंदर और न ध्याइये, एक बिना जगदीस।
सो सिर ऊपर राखिये, मन क्रम बिसवाबीस॥
सुंदर पतिव्रत राम सों, सदा रहै इक तार।
सुख देवै तो अति सुखी, दुख तो सुखी अपार॥
जो पिय को व्रत लै रहै, कंत पियारी सोइ।
अंजन मंजन दूरि करि, सुंदर सनमुख होइ॥
प्रीतम मेरा एक तू, सुंदर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारने, काहि न परगट होइ॥

सुमिरन

सुंदर सतगुरु यों कह्या, सकल सिरोमनि नाम।
ता कौं निसु दिन सुमरिये, सुख सागर सुखधाम॥
हिरदे में हरि सुमिरिये, अंतरजामी राइ।
सुंदर नीके जतन सौं, अपनौं बित्त छिपाइ॥

रंक हाथ हीरा चढ़्यो, ता को मोल न तोल।
घर घर डोलै बेचतो, सुंदर याही मोल॥
राम नाम मिसरी पियें, दूरि जाहिं सब रोग।
सुंदर औषध कटुक सब, जप तप साधन जोग॥
राम नाम जाके हिये, ताहि नवै सब कोय।
ज्यों राजा की संक तें, सुंदर अति डर होइ॥
सुंदर सब ही संत मिलि, सार लियौ हरि नाम।
तक्र तजी घृत काढि कै, और क्रिया किहिँ काम॥
लीन भया बिचरत फिरै, छीन भया गुन देह।
दीन भई सब कल्पना, सुंदर सुमिरन येह॥
भजन करत भय भागिया, सुमिरन भागा सोच।
जाप करत जौंरा टल्या, सुंदर साची लोच॥
सुंदर भजिये राम को, तजिये माया मोह।
पारस के परसे बिना, दिन दिन छीजै लोह॥
प्रीति सहित जे हरि भजैं, तब हरि होहिं प्रसन्न।
सुंदर स्वाद न प्रीति बिन, भूख बिना ज्यौं अन्न॥
एक भजन तन सौं करै, एक भजन मन होइ।
सुंदर तन मन के परे, भजन अखंडित सोइ॥
जाही कौ सुमिरनि करै, ह्वै ताही को रूप।
सुमिरन कीये ब्रह्म के, सुंदर ह्वै चिदरूप॥

बंदगी

सुंदर अंदर पैसि करि, दिल में गोता मारि।
तौ दिल ही में पाइये, साईं सिरजनहारि॥
सखुन हमारा मानिये, मत खोजै कहुँ दूर।
साईं सीने बीच है, सुंदर सदा हजूर॥
जो यह उसका ह्वै रहै, तो वह इसका होइ।
सुंदर बातौं ना मिलै, जब लग आप न खोइ॥
सुंदर दिल की सेज पर, औरति है अरवाह।
इसको जागया चाहिये, साहिब बेपरवाह॥

जो जागै तौ पिय लहै, सोयें लहिये नाहिं ।
सुंदर करिये बंदगी, तो जाग्या दिल माहि ॥

गुरुदेव

दादू सतगुरु बंदिये, सो मेरे सिर-मौर ।
सुंदर बहिया जायथा, पकरि लगाया ठौर ॥
सुंदर सतगुरु बंदिये, सोई बंदन जोग ।
औषध सबद दिवाइ करि, दूर कियो सब रोग ॥
परमेसुर अरु परम गुरु, दोनों एक समान ।
सुंदर कहत बिसेष यह, गुरु तें पावै ज्ञान ॥
सुंदर सतगुरु आपु तें, किया अनुग्रह आइ ।
मोह निसा में सोवतें, हमकौं लिया जगाइ ॥
सुंदर सतगुरु सारिखा, कोऊ नहीं उदार ।
ज्ञान खजीना खोलिया, सदा अटूट भँडार ॥
समदृष्टी सीतल सदा, अद्भुत जाकी चाल ।
ऐसा सतगुरु कीजिये, पलमें करै निहाल ॥
सुंदर सतगुरु मिहर करि, निकट बताया राम ।
जहाँ तहाँ भटकत फिरैं, काहे को बेकाम ॥
गोरखधंधा लोह में, कड़ी लोह ता माहिं ।
सुंदर जानै ब्रह्म में, ब्रह्म जगत द्वै नाहिं ॥
परमातम से आत्मा, जुदे रहे बहुकाल ।
सुंदर मेला करि दिया, सतगुरु मिले दयाल ॥
परमातम अरु आतमा, उपज्या यह अबिबेक ।
सुंदर भ्रमतें दोय थे, सतगुरु कीए एक ॥
सुंदर सूता जीय है, जाग्या ब्रह्म स्वरूप ।
जागन सोवन तें परे, सतगुरु कह्या अनूप ॥
मूरख पावै अर्थ कौं, पंडित पावै नाहिं ।
सुंदर उलटी बात यह, है सतगुरु के माहिं ॥

सुंदर सतगुरु ब्रह्ममय, पर सिष की चम दृष्टि।
सूधी ओर न देखई, देखै दर्पन पृष्ठ ॥
सुंदर काटै सोध करि, सतगुरु सोना होइ।
सिष सुबरन निर्मल करै, टाँका रहै न कोइ ॥
नभमनि चिंतामनि कहै, हीरामनि मनिलाल।
सकल सिरोमनि मुकटमनि, सतगुरु प्रगट दयाल ॥
सुंदर सतगुरु आप तें, अतिही भये प्रसन्न।
दूरि किया संदेह सब, जीव ब्रह्म नाहिं भिन्न ॥
सुंदर सतगुर हैं सही, सुंदर सिच्छा दीन्ह।
सुंदर बचन सुनाइ कै, सुंदर सुंदर कीन्ह ॥

बिरह

मारग जोवै बिरहिनी, चितवै पिय की ओर।
सुंदर जियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर ॥
सुंदर बिरहिनि अधजरी, दुःख कहै मख रोइ।
जरि बरि कै भस्मी भइ, धुवाँ न निकसै कोइ ॥
ज्यों ठगमूरी खाइ कै, मुखहिं न बोलै बैन।
टुगर टुगर देख्या करै, सुंदर बिरहा ऐन ॥
लालन मेरा लाडिला, रूप बहुत तुझ माँहि।
सुंदर राखै नैन में, पलक उघारै नाँहि ॥
अब तुम प्रगटहु राम जी, हृदय हमारे आइ।
सुंदर मुख संतोष ह्वै, आनंद अंग नमाइ ॥

धरनीदास

बाबा धरनीदास का जन्म छपरा ज़िले के माँझी नामक गाँव में सं० १७१३ में हुआ था।[1] इनके पिता का नाम परसुराम और माता का विरमा देवी था। इन्होंने कई ककहरे लिखे हैं जिनमें एक में पकार से आरंभ होने वाले पद्य में इन्होंने अपनी उत्पत्ति का वर्णन कर दिया है। वह पद्य यों है—

परसुराम अरु विरमा आई, पुत्र जानि जग हेतु बड़ाई।
प्रगटि धरनि ईसुर करि दाया, पूरे भाग भक्ति हरि दाया।

यह लोग जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे और इनके यहाँ कारिंदा-गिरी या मुनीमी काम तो पुश्तैनी था, साथ ही खेतीबारी का काम भी होता था। इनकी शिक्षा भी पहले दीवानी या कारिंदागिरी के ही उपयुक्त हुई और इनके पिता परसुराम जी ने इन्हें माँझी के ज़मींदार के यहाँ दीवान रखवा भी दिया था। यद्यपि ये अपना काम बड़ी तत्परता और योग्यता से करते थे और मालिक ने इन पर पूरा भरोसा कर सारा कारबार इन्हीं को सौंप रक्खा था, तो भी इनका हृदय सदा आध्या-त्मिक अनुशीलन में ही लीन रहा करता था, पर इनके मालिक को इन बातों की कुछ ख़बर न थी। ये परमात्मचिंतन ऐसे समय और स्थान में और कुछ इस रीति से करते थे कि किसी को कुछ पता नहीं चलता था। उपदेश देने या दस-बीस साधुओं और श्रोताओं को इकट्ठा कर सार्वजनिक रूप से ईश गुणगान या सत्संग करने का इन्हें व्यसन न

---

[1] सं० १७१३ बाबा धरनीदास के विरक्त होने का समय है, जन्म का नहीं। उनके 'प्रेमप्रगास' में लिखा है—

संवत् सत्रह सै चलि गैऊ। तेरह अधिक ताहि पर भैऊ॥
सोच विचारी आतमा जागी। धरती धरेउ भेष वैरागी॥ प० च०

था। सारांश यह कि यह बड़े ही एकांतप्रिय थे और किसी भी रूप में आत्मविज्ञापन पसंद नहीं करते थे और इसी से लोगों को इनके पहुँचे हुए साधक या भक्तरूप का परिचय न मिल सका था। पर एक दिन अकस्मात् इनका वास्तविक रूप प्रगट हो गया। कथा यों है—एक दिन ये ज़मींदारी-संबंधी काग़ज़-पत्र फैलाए कुछ लिख रहे थे कि यकायक न जाने क्या सोच कर उठे और एक लोटा पानी उठाकर बही और बस्ते पर उड़ेल दिया। लोगों ने इन्हें पागल समझा और उनके बहुत कुछ पूछताछ करने पर बतलाया कि आरती के समय जगन्नाथ जी के वस्त्र में आग लग गई थी सो उसी को पानी उड़ेल कर मैंने बुझाया है। लोगों को दृढ़ विश्वास हो गया कि यह पागल हैं। इनके मालिक ने भी इन्हें पागल समझा। पर इस घटना के बाद ही यह नौकरी छोड़ कर चल खड़े हुए, उस समय की कही हुई इनकी ये पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

लिखनी नाहिं करूं रे भाई। मोहि राम नाम सुधि आई॥

बाद में कहते हैं कि इनके मालिक के पता लगवाने पर जगन्नाथ जी के वस्त्र में आग लगने वाली कथा सच निकली और तब उसने बहुत तरह से क्षमा माँगते हुए इनसे फिर कार्यभार ग्रहण करने की प्रार्थना की पर सब व्यर्थ। इसी प्रकार इनके संबंध में भी कई अश्रुतपूर्व कथाएँ प्रसिद्ध हैं जिनमें सत्यता का अंश चाहे जितना भी हो पर इतना तो स्पष्ट है कि इनका पहला व्यवसाय लेखक का था, पर साथ ही ये ईश्वर-चिंतन का भी समय निकाल लेते थे और क्रमशः हरिपद में इनकी लौ बढ़ती ही गई। अंत में एक दिन इन्होंने अपने हृदय में एक स्पष्ट पुकार सुनी। इन्हें विदित हो गया कि अब मेरा यह लौकिक कार्य समाप्त हुआ और अब मुझे केवल हरिभजन में कालयापन करना चाहिए और इन्होंने किया भी ऐसा ही।

इनकी मृत्यु-तिथि अज्ञात है। कहते हैं, पूरी अवस्था पाकर इन्होंने गंगा और सरयू के संगम स्थान में समाधि ले ली थी।

इनके रचे हुए दो ग्रंथ प्राप्त हैं—(१) 'शब्दप्रकाश', और (२) 'प्रेम-प्रकाश'। 'धरनीदास जी की बानी' नाम से इनके पद्यों का एक संग्रह

बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। यह संग्रह ६० पृष्ठों का है और इसमें कुल ३३० पद्य हैं।

इनकी भाषा पूर्वी हिंदी तो है ही पर कहीं कहीं उसमें खड़ी बोली के पद भी दिए गए हैं। स्मरण रहे कि यह बिहार प्रांत के रहने वाले थे और तत्कालीन साहित्यिक केंद्र आगरा-मथुरा प्रांत में इनके घूमने या रहने के प्रमाण भी नहीं मिलते। ऐसी अवस्था में इनकी भाषा में विशेष साहित्यिकता की आशा करना व्यर्थ है। पर इनके भाव अवश्य सुंदर और कोमल है। कोमलता तो इतनी अधिक कदाचित् किसी संत कवि की कविता में नहीं है, यहाँ तक कि कोई कोई समालोचक इनके भावों में स्त्रीत्व का प्राधान्य मानते हैं। इनके पदों की एक दूसरी विशेषता यह है कि उनमें एकांत निष्ठा की भावना बहुत स्पष्ट है। किसी भी कवि की कृति में उसके स्वभाव की छाप पड़े बिना नहीं रह सकती। धरनीदास जी आरंभ से ही कितने एकांतप्रिय थे यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है। संत कवियों में यही एक ऐसे सज्जन हो गए हैं जिन्हें सामूहिक रूप से कोई कार्य करने से चिढ़ थी। यह सब से अलग रहना ही पसंद करते थे। इनके स्वभाव का यह अँग इनकी रचना पर भी अपना रंग लाए बिना नहीं रह सकता था।

प्रस्तुत संग्रह में चुने हुए पद 'धरनीदास जी की बानी' से लिए गए हैं।

विरह

अजहुँ मिलो मेरे प्रान-पियारे।
दीनदयाल कृपाल कृपानिधि करहु छिमा अपराध हमारे।
कल न परत अति विकल सकल तन नैन सकल जनु बहत पनारे।
माँस पचो अरु रक्त रहित भे हाड़ दिनहुँ दिन होत उघारे।
नासा नैन स्रवन रसना रस इंद्री स्वाद जुआ जनु हारे।
दिवस दसो दिसि पंथ निहारत राति बिहात गनत जस तारे।
जो दुख सहत कहत न बनत मुख अंतरगत के हौ जानन हारे।
धरनी जिव झिलमलित दीप ज्यों होत अंधार करो उँजियारे॥

चितावनी

पानी से पैदा कियो सुनु रे मन बौरे, ऐसा खसम खुदाय कहाई रे।
दाह भयो दस मास को सुनु रे मन बौरे, तर सिर ऊपर पांई रे॥
आँच लगी जब आग की सुनु रे मन बौरे, आजिज ह्वै अकुलाई रे।
कौल कियो मुख आपने सुनु रे मन बौरे, नाहक अंक लिखाई रे॥
अब की करिहौं बंदगी सुनु रे मन बौरे, जो पइहों मुकलाई रे।
जग आये जंगल परे सुनु रे मन बौरे, भरम रहे अरुझाई रे॥
पर की पीर न जानिया सुनु रे मन बौरे, बहुरि ऐसहीं जाई रे।
सतगुरु कै उपदेस जे सुनु रे मन बौरे, दोजख दरद मिटाई रे॥
मानुष देह दुरलभ अहै सुनु रे मन बौरे, धरनी कह समुझाई रे॥

उपदेश

जीव की दया जेहि जीव ब्यापै नहीं भूखे न अहार प्यासे न पानी।
साधु के संग नहिं सबद के रंग नाहिं बोलि जानै न मुख मधुर बानी।
एक जगदीस को सीस अरपै नाहीं पाँच पचीस बहु बात ठानी।
राम को नाम निज धाम बिस्राम नहीं धरनी कह धरनि सों धग सो प्रानी॥

विनय

प्रभु जी अब जिनि मोहि बिसारो।
असरन सरन अधम जन तारन, जुग जुग बिरद तिहारो॥
जहँ जहँ जनम करम बसि पायो, तहँ अरुझे रस खारो।
पाँचहुँ के परपंच भुलानो, धरेउ न ध्यान अधारो॥
अंध गर्भ दस मास निरंतर, नखसिख सुरति सँवारो।
मज्जा मुत्र अग्निमल कृम जहँ, सहजै तहँ प्रतिपारो॥
दीजै दरस दयाल दया करि, गुन ऐगुन न बिचारो।
धरनी भजि आयो सरनागति, तजि लज्जा कुल गारो॥

तुहि अवलंब हमारे हो।
भावै पगु नाँगे करो, भावै तुरय सवारे हो॥
जनम अनेकन बादि गे, निजु नाम बिसारे हो।

अब सरनागत रावरी, जन करत पुकारे हो ॥
भवसागर बेरा परो, जल माँझ मँझारे हो ।
संतत दीन दयाल ही, करि पार निकारे हो ॥
धरनी मन बच कर्मना, तन मन धन वारे हो ।
अपनो बिरद निबाहिये, नाहिं बनत बिचारे हो ॥

मोसों प्रभु नाहिं दुखित, तुम सों सुखदाई ॥ टेक ॥
दीन बंधु बान तेरो, आइ करु सहाई ।
मो सों नहिं दीन और निरखो जगमाँईं ॥
पतित पावन निगम कहत, रहत हौ कित गोई ।
मो सों नहिं पतित और, देखो जग टोई ॥
अधम के उधारन तुम, चारो जुग ओई ।
मो तें अब अधम आहि, कवन धौं बड़ोई ॥
धरनी मन मनिया, इक ताग में परोई ।
आपन करि जानि लेहु, कर्म फंद छोई ॥

प्रेम

हरि जन हरि के हाथ बिकाने ।
भावै कहो जग धृग जीवन है, भावै कहो बौराने ॥
जाति गवाय अजाति कहाये, साधु सँगति ठहराने ।
मेटो दुख दारिद्र परानो, जूठन खाय अघाने ॥
पाँच जने परबल परपंची, उलटि परे बंदिखाने ।
छूटी मजूरी भये हजूरी, साहिब के मन माने ॥
निरममता निरबैर सभन तें, निरसंका निरबाने ।
धरनी काम राम अपने तें, चरन कमल लपटाने ॥

पिया मोर बसै गउरगढ़, मैं बसौं प्राग हो ।
सहजहिं लागु सनेह, उपजु अनुराग हो ॥
असन बसन तन भूषन, भवन न भावै हो ।
पल पल समुझि सुरति, मन गहबरि आवै हो ॥

तत्त को तेरिज बेरिज बुधि की, ध्यान निरखि ठहराई ।
हृदय हिसाब समुझि कै कीजै, दहियक देहु लगाई ॥
राम को नाम रटी रोजनामा, मुक्ति सों फरद बताई ।
अजपा जाप अवारिजा करि के, सर्ब कर्म बिलगाई ॥
रैयत पाँच पचीस बुझाए, हरि हाकिम रहे राजी ।
धरनी जमाखरच बिधि मिलि है, को करि सकै गमाजी ॥

भाई रे जीभ कहल नहिं जाई ।
नाम रटन को करत निठुराई, कूदि चलै कुचराई ॥
चरन न चले सुपंथ पै पग दुइ, अपथ चलै अतुराई ।
देत बार कर दीन्ह दूबरो, लेत करै हथियाई ॥
नैना रूप सरूप सनेही, नाद स्रवन लुबधाई ।
नासा बहती बास बिषै की, इंद्री नारि पराई ॥
संत चरन को सीस नवै नहिं, ऊपर अधिक तराई ।
जो मन घेरि बेन्हिये बांधौ, भाजै छांद तुराई ॥
का सो कहों कहै को मानै, अंग अंग अकुठाई ।
धरनीदास आस तब पूजै, जो हरि होहि सहाई ॥

मन बसि लेहु अगम अटारी ॥ टेक ॥
नव नारिन को द्वारा निरखो, सहज सुखमना नारी ।
अजब अवाज नगारा बाजत, गगन गरजि धुनि भारी ॥
तहं बरै बाती खिवस न राती, अलख पुरुष मठ धारी ।
धरनी कै मन कहा न मानै, तबहिं हनो है कटारी ॥

मन रे तू हरि भजु अवरि कुमति तजु ।
ह्वै रहु बिमल बिरागी अनुरागी लो ॥
देई देवा सो झूठी जैसे मरकट मूठी ।
अंत बहुरि बिलगाने पछिताने लो ॥
जठर अगिन जरै, भोजन भसम करै ।
तहं प्रभु पालल देंही नित तेही लो ॥

सुत हितु बंधु नारी, इन संग दिना चारी।
जल संग परत पखाने, असमाने लो ॥
परिजन हाथी घोरा, इहव कहत मोरा।
चित्र लिखल पट देखा, तस लेखा लो ॥
धरनी बिच्छुक बानी हम प्रभु अजामानी।
मिलहु पट खोलो अनमोली लो ॥

मन तुम कस न करहु रजपूती।
गगन नगारा बाजु गहागह, काहे रहो तुम सूती ॥
पाँच पचीस तीन दल ठाढ़े, इन संग सेन बहूती।
अब तोहि घेरी मारन चाहत, जस पिंजरा मह तूती ॥
पइहौ राज समाज अमर पद, ह्वै रहु बिलम बिभूती।
धरनीदास बिचार कहतु है, दूसर नाहि सपूती ॥

शब्द

कंत दरस बिनु बावरी।
मो तन व्यापै पीर प्रीतम की, मूरुख जानै आवरी ॥
पसरि गयो तरु प्रेम साखा सखि, बिसरि गयो चित चावरी।
भोजन भवन सिंगार न भावै, कुल करतूति अभाव री ॥
खिन खिन उठि उठि पंथ निहारो, बार बार पछितावं री।
नैनन अंजन नींद न लागै, लागै दिवस बिभावरी ॥
देह दसा कछु कहत न आवै, जस जल ओछे नाव री।
धरनी धनी अजहुँ पिय पाओं, तौ सहजै अनँद बधाव री ॥

हरि जन वा मद के मतवारे।
जो मद बिना काठि बिनु भाठी; बिनु अग्निहिं उदगारे ॥
बास अकास धराधर भीतर, बुंद झवै झलका रे।
चमकत चंद अनंद बढ़ो जिव, शब्द सघन निरुवारे ॥
बिनु कर धरे बिना मुख चाखे, बिनहिं पियाले ढारे।
ताखन स्यार सिंह को पौरुख, जुत्थ गजंद बिडारे ॥

कोटि उपाय करै जो कोई, अमल न होत उतारे ।
धरनी जो अलमस्त दिवाने, सोइ सिरताज हमारे ॥

हित करि हरि नामहिं लाग रे ।
घरी घरी घरियाल पुकारै, का सोवै उठि जाग रे ॥
चोआ चंदन चुपड़ तेलना, और अलबेली पाग रे ।
सो तन जरे खड़े जग देखो, गूद निकारत काग रे ॥
मात पिता परिवार सुता सुत, बंधु त्रिया रस त्याग रे ।
साधु के संगति सुमिर सुचित होइ, जो सिर मोटे भाग रे ॥
सम्वत जरै बरै नहिं जब लगि, तब लगि खेलहु फाग रे।
धरनीदास तासु बलिहारी, जहँ उपजै अनुराग रे ॥

ऐसे राम भजन करु बावरे ।
बेद साखि जन कहत पुकारे, जो तेरे चित चाव रे ॥
काया दुवार है निरखु निरंतर, तहाँ ध्यान ठहराव रे ।
तिरबेनी एक संगहि संगम, सुन्न सिखर कहं धाव रे ॥
उदधि उलंघि अनाहद निरखौ, अरध उरध मधि ठाँव रे ।
राम नाम निसु दिन लव लागे, तबहिं परम पद पाव रे ॥
तहं है गगन गुफा गढ़ गाढ़ो, जहाँ न पवन पछांव रे ।
धरनीदास तासु पद बंदे, जो यह जुगति लखाव रे ॥

मेरो राम भलो ब्योपार हो ।
वा सों दूजा दृष्टि न आवे, जाहि करो रोजगार ॥
जो खेती तो उहै कियारी, बिनु बीज बैल हर फार हो ।
रात दिवस उद्दम करै, गंग जमुन के पार हो ॥
बनिज करो तो उहै परोहन, भरो बिबिध परकार हो ।
लाभ अनेक मिले सतसंगति, सहजहिं भरत भँडार हो ॥
जो जाचो तो वाहि को जाचों, फिरौ न दूजौ द्वार हो ।
धरनी मन बच क्रम मानो, केवल अधर अधार हो ॥

जुगजुग संतन की बलिहारी।
जो प्रभु अलख अमूरत अविगत, तासु भजन निरबारी ॥
मन बच क्रम जगजीवन को व्रत, जीवन को उपकारी।
संतन साँच कही सबहिन तें, सुत पितु भूप भिखारी ॥
ढोलिया ढोल नगर जो मारै, गृह गृह कहत पुकारी।
गोधन जुत्थ पार करिबे को पीटत पीठ पहारी ॥
एहि जग हरि भगता पतिबरता, अवर बसै बिभिचारी।
धरनी धृग जीवन है तिन्ह को, जिन्ह हरि नाम विसारी ॥

जो जन भक्त बछल उपवासी।
ता को भवन भयो उजियारी, प्रगटी जोति दिवासी ॥
लोक लाज कुल वानि बिसारी, सार शब्द को गासी।
तिन्ह को सुजस दसो दिसि बाढ़ो कवन सकै करि हाँसी ॥
हरि व्रत सकल भक्त जन गहि गहि, जम तें रहे मवासा।
देह धरी परमारथ कारन, अंत अभैपुर बासी ॥
काम क्रोध तृस्ना मद मिथ्या, सहज भये वनवासी।
संतत दीन दयाल दयानिधि, धरनी जन सुखरासी ॥

मोहिं कछु नाहिं बिसाय, कोउ कैसहु कहि जाव री। ॥टेक॥
झांकि झरोखे रावला, मन मोहन रूप देखाव री।
दृष्टि परे परवस पर्‌यो घर, घरहु न मोहिं सोहाय री ॥
जस जल चर जल में चरै, मुख चारो सहज समाय री।
निगलत तो वहि निर्भय, अब उगलत उगलि न जाय री ॥
जस पंछी बन बैठियो, अपनो तन मन ठहराय री।
नर को भेद न भेदियो, पर अवचक लागे आय री ॥
दोह—जाहि परो दुख आपनो, जो जाने पर पीर।
धरनी कहत सुन्यो नहिं, बांझ की छाती छीर ॥

एक अलाह के मैं कुरबानी। दिल ओझल मेरा दिलजानी ॥
तू मेरा साहब मैं तेरा बंदा। तू मेरि सभी हवस पहिचंदा ॥
बार बार तुम कहं सिर नावों। जानि जरूर तुम्हें गोहरावों ॥

तुमहिं हमारे मक्का मदीना। तुमहीं रोजा रिजिक रोजीना ॥
तुमहीं कोरान खतम खतमाना। तुम तसबी अरु दीन इमाना ॥
मैं आसिक महबूब तू दरसा। बेगर तोहि जहान जहर सा ॥
देहु दिदार दिलासा येही। नातर जाव बिनसि वरु देही ॥
कादिर तुमहिं कदर को जाना। मैं हिन्दू किधों मूसलमाना ॥
धरनीदास खड़े दरवाजा। सब के तुमहिं गरीब निवाजा ॥
मैं निरगुनियां गुन नहिं जाना। एक धनी के हाथ बिकाना ॥
सोइ प्रभु पक्का मैं अति कच्चा। मैं झूठा मेरा साहब सच्चा ॥
मैं ओछा मेरा साहब पूरा। मैं कायर मेरा साहब सूरा ॥
मैं मूरख मेरा प्रभु ज्ञाता। मैं किरपिन मेरा साहब दाता ॥
धरनी मन मानो इक ठाउँ। सो प्रभु जीवो मैं मरिजाउँ ॥

जब लग परम तत्तु नहिं जाने।
तब लग भरम भूत नहिं भाजे, करम कींच लपटाने ॥
सहस नाम कहि कहा भयो मन, कोटि कहत न अघाने।
भूले भरम भागवत पढ़ि के, पूजत फिरत पखाने ॥
का गिरि कंदर मंदर माहें, कंद मूरि खनि खाने।
कहा जो बरष हजार रह्यो तन, अंत बहुरि पछिताने ॥
दानि कबीसुर सरसुनी, रंक होहु भा राने।
प्रेम प्रतीत अमिय परचे बिनु, मिले न पद निरबाने ॥
मन बच करम सदा निसिबासर, दूजो ज्ञान न ध्याने।
धरनी जन सतगुरु सिर ऊपर, भक्त बछल भगवाने ॥

एक धनी धन मोरा हो ॥ टेक ॥
काहू के धन सोना रूपा, काहू के हाथी घोरा।
काहू के मनि मानिक मोती, एक धनी धन मोरा हो ॥
राज न हरै जरै न अगिन तें, कैसहु पाय न चोरा हो।
खरचत खात सिरात कबहिं नहिं, घाट-बाट नहिं छोरा हो ॥
नहिं संदूक नहिं भुंइ खनि गाड़ी, नहिं पट घालि मरोरा हो।
नैन के ओझल पलकन राखों, सांझ दिवस निसि भोरा हो ॥

जब धन लै मनि बेचन चाहे, तीनि हाट टकटोरा हो।
कोई बस्तु नाहिं ओहि जोगे, जो मोलऊं सो थोरा हो ॥
जा धन तें जन भये धनी बहु, हिंदू तुरुक करोरा हो।
सो धन धरनी सहजहिं पायो, केवल सतगुरु के निहोरा हो ॥

राग टोडी

जब मेरो यार मिले दिलजानी, होइ लवलीन करौं मेहमानी।
हृदय कमल बिच आसन सारी, ले सरधा जल चरन खटारी ॥
हित के चंदन चरचि चढ़ायो, प्रीति के पंखा पवन डोलायो।
भाव के भोजन परसि जेंवायो, जो उबरा सो जूठन पायो ॥
धरनी इत उत फिरहिं न भोरे, सन्मुख रहहि दोऊ को जोरे।

करता राम करै सोइ होय।
कल बल छल बुधि ज्ञान सयानप, कोटि करै जो कोय ॥
देई देवा सेवा करके, भरम भुले नर लोय।
आवत जात मरत औ जनमत, करम कांट अरुझोय ॥
काहे भवन तजि भेष बनायो, ममता मैल न धोय।
मन मवास चपरि नहिं तोडेउ, आस फांस नहिं छोय ॥
सतगुरु चरन सरन सब पायो, अपनी देंह बिलोय ॥
धरनी धरनि फिरत जेहि कारन, धरहिं मिले प्रभु सोय ॥

राग गौरी

सुमिरौ हरि नामहिं बौरे ॥ टेक ॥
चक्रहु चाहि चलै चित चंचल, मूल मता गहि निस्चल कोरे ॥
पांचहु ते परिचै करु प्रानी, काहे के परत पचीस कै भौरे।
जौं लगि निरगुन पंथ न सूझै, काज कहा महि मंडल दौरे ॥
सब्द अनाहद लखि नहिं आवै, चारो पन चलि ऐसहिं गौरे।
ज्यों तेली को बैल बिचारा, घरहिं में कोस पचासक भौरे ॥
दया धरम नहिं साधु की सेवा, काहेसे सो जनमें घर चौरे।
धरनीदास तासु बलिहारी, झूठ तजौ जिन्ह सांचहिं धौरे ॥

राग कल्यान

जाके गुरुचरनन चित लागा।
ताके मन की भरम भुलानो, धंधा धोखा भागा॥
सो जन सोवत अवचकही में, सिंह सरीखे जागा।
धनि सुत जन धन भवन न भावत, धावत बन बैरागा॥
हरखित हंस दसा चलि आयो, दुरि गयो दुरमत कागा।
पाँचहुँ को परपंच न लागै, कोटि करै जौं दागा॥
सांच अमल तहं झूठ न झांके, दया दीनता पागा।
सत्त सुकृत्त संतोष समानो, ज्यौं सूई मध धागा॥
लै मन पवन उरध को धावै, उपजु सहज अनुरागा।
धरनी प्रेम गगन जन कोई, सोइ जन सूर सुभागा॥

राग केदार

अजहु न गुरुचरनन चित दैहौ ॥टेक॥
नाना जोनि भटकि भ्रम आये, अब कब प्रेम तीरथहिं न्हैहौ॥
बड कुल विभव भरम जनि भूलों, प्रभु पैहौ जब दास कहैहौ।
एह संगति दिन दस की दसा है, कथि कथि पढ़ि पढ़ि पार न पैहौ॥
करम भार सिर तें नहिं उतरै, खंड खंड महि मंडल धैहौ।
बिनु सतगुरु सतलोक न सूझै, जनमि जनमि मरि मरि पछितैहौ॥
धरनी ह्वैहौ तबही सांचे, सतगुरु नाम हृदय ठहरैहौ॥

राग बिहागरा

जग में सोई जीवन जीया।
जाके उर अनुराग ऊपजो, प्रेम पियाला पीया॥
कमल उलटो भर्म छूटो, अजप जप जपिया।
जनु अंधारे भवन भीतर, बारि राखो दिया॥
काम क्रोध समोदियो, जिन्ह घरहि में घर किया।
माया के परिपंच जेते, सकल जानो छिया॥
बहुत दिन को बहुत अरुझो, सहजहीं सुरझिया।
दास धरनी तासु बलि बलि, भूंजियो जिन्ह बिया॥

राग पंजर

तुहि अवलंब हमारे हो ।
भावै पगुनांगे करो, भावै तुरय सवारे हो ॥
जनम अनेकन बादि गौ, निजु नाम बिसारे हो ।
अब सरनागत रावरी, जन करत पुकारे हो ॥
भवसागर बेरा परो, जल मांझ मंझारे हो ।
संतत दीनदयाल हो, कर पार निकारे हो ॥
धरनी मन बच कर्मना, तन मन धन वारे हो ।
अपनो बिरद निबाहिये, नहिं बनत बिचारे हो ॥

प्रभु तो बिनु को रखवारा ॥ टेक ॥
हौं अति दीन अधीन अकर्मी, बाउर बैल बिचारा।
तू दयाल चारो जुग निस्चल, कोटिन्ह अधम उधारा॥
अब के अजस अवर नहिं लागे, सरबस तोहिं बड़ाई।
कुल मरजाद लोक लज्जा तजि, गह्यो चरन सिर नाई ॥
मैं तन मन धन तो पर वारो, मूरख जानत ख्याला ।
ब्याउर बेदन बांझ न बूझै, बिनु दागे नहिं छाला ॥
तुलसी भूषन भेष बनायो, स्रवन सुन्यो मरजादा ।
धरनी चरन सरन सब पायो, छुटिहैं बाद बिबादा ॥

प्रभु तू मेरो प्रानि पियारा ॥ टेक ॥
परिहरि तोहि अवर जो जाचै, तेहि मुख छीया छारा ।
तो पर वारि सकल जग डारौं, जौ बसि होय हमारा ॥
हिंदू के राम अल्लाह तुरुक के, बहु बिधि करत बखाना ।
दुहुँ को संगम एक जहां, तहवां मेरो मन माना ॥
रहत निरंतर अंतरजामी, सब घट सहज समाया ।
जोगी पंडित दानि दसो दिसि, खोजत अंत न पाया ॥
भीतर भवन भयो उंजियारी, धरनी निरखि सोहाया ।
जा निति देस देसांतर धावो, सो घटहीं लखि पाया ॥

पलटू

पलटूदास की जीवन-संबंधी ज्ञातव्य बातें बहुत कुछ खोज करने पर भी अभी तक नहीं जानी जा सकी हैं। इनके सगे भाई पलटूप्रसाद जी ने (जिनका संसारी नाम कुछ और ही था) अपनी 'भजनावली' नाम की पुस्तक में इनका कुछ वृतांत दिया है जिससे केवल इतना जाना जा सका है कि इनका जन्म फ़ैज़ाबाद ज़िले के नागपुर-जलालपुर नामक गाँव में एक काँदू बनियाँ के कुल में हुआ था। इनके जीवनकाल के संबंध में केवल यही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ये अवध के नवाब शुजाउद्दौला के समय में (ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में) विद्यमान थे। इनके गुरु एक बाबा जानकीदास जी थे जिनसे इन्होंने अपने पुरोहित गोविंद जी के साथ दीक्षा ली थी। लाला सीताराम जी का कहना है कि इन्होंने इन्हीं गोविंद जी से ही, जो कि भीखा साहिब के शिष्य थे, दीक्षा ली थी।

पलटू जी ने अपने जीवन का अधिकांश अयोध्या में ही बिताया था और वहाँ इनका अखाड़ा अभी तक विद्यमान है। इनके अंतकाल के संबंध में कहा जाता है कि अयोध्या के वैरागियों ने इनके उपदेशों से चिढ़ कर इन्हें जीता जला दिया था पर यह जगन्नाथ जी में पुनः प्रगट हुए और वहाँ से कुछ समय बाद अंतर्धान हो गये। इस सिलसिले में नीचे दिया हुआ दोहा प्रसिद्ध है—

अवध पुरी में जरि मुए, दुष्टन दिया जराइ।
जगन्नाथ की गोद में, पलटू सूते जाइ॥

इनकी कविताओं का एक बड़ा संग्रह बेलवेडियर प्रेस से तीन भागों में प्रकाशित हुआ है जिसमें ३५३ पृष्ठ और प्रायः १००० पद्य हैं। प्रस्तुत संग्रह उसी से किया गया है।

इनकी रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध इनकी कुंडलियाँ हैं। इनकी

रचनाओं को ध्यान से देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने कबीर का भावापहरण बहुत किया है। इनके अनेक पदों में कबीर के ही विचार और भाव कुछ विस्तार से कहे हुए जान पड़ते हैं। और फिर, पुनरुक्ति दोष इनकी कविता में बहुत आया है। अन्य संत-कवियों से इनकी विशेषता इस बात में है कि शांत के अतिरिक्त वीर और शृंगार रस की छटा भी यत्र-तत्र इनकी कविता में दिखाई पड़ती है। वीर रस पर तो चरनदास जी ने भी कविता की है और ओज गुण लाने में कदाचित् यह पलटू से अधिक सफल भी हुए हैं पर शृंगारी कवियों का प्रभाव शायद इन्हें छोड़कर अन्य किसी सत कवि पर नहीं पड़ा है। पौराणिक भक्ति की व्याख्या और नीति के उपदेश इनके भी उतने ही अच्छे और प्रभावशाली हुए हैं जितने चरनदास जी के।

इनकी भाषा बहुत परिमार्जित और सुबोध है और अधिकतर संत-कवियों की भाँति ये भाषा तथा छंद आदि की कविता के बाह्य रूप के संबंध में असावधान नहीं थे।

शब्द

फूटि गया असमान सबद की धमक में।
लगी गगन में आग सुरति की चमक मैं॥
सेसनाग औ कमठ लगे सब काँपने।
अरे हाँ पलटू सहज समाधि कि दसा खबर नहि आपने॥

अरिल

जो कोइ चाहै नाम तो नाम अनाम है।
लिखन पढ़न में नांहि निअच्छर काम है॥
रूप कहौ अनरूप पवन अनरेख ते।
अरे हाँ पलटू गैब दृष्टि से संत नाम वह देखते॥

कुण्डलिया

खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार।
बीती जात बहार संबत लगने पर आया।

लीजै डफ्फ बजाय सुभग मानुष तन पाया ॥
खेलो घूंघट खोलि लाज फागुन में नाहीं।
जे कोइ करिहै लाज काज ना सुपनेहुँ माहीं ॥
प्रेम की माट भराय सुरति की करु पिचकारी।
ज्ञान अबीर बनाय नाम की दीजै गारी ॥
पलटू रहना है नहीं सुपना यह संसार।
खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार ॥

कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान।
सो ध्यानी परमान सुरत से अंडा सेवै।
आपु रहै जल माहिं सूखे में अंडा देवै ॥
जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै।
कर छोड़े मुख बचन चित्त कलसा में लावै ॥
फनि मनि धरै उतारि आप चरने को जावै।
वह गाफिल न पड़ै सुरत मनि माहिं रहावै ॥
पलटू सब कारज करै सुरत रहै अलगान।
कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान ॥

माया की चक्की चलै पीसि गया संसार।
पीसि गया संसार बचै ना लाख बचावे।
दोऊ पट के बीच कोऊ ना साबित जावै ॥
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे।
तिरगुन डारै झीक पकरि के सबै निकारे ॥
दुरमति बड़ी सयानि सानि कै रोटी पोवै।
करम तवा में धारि सेंकि कै साबित होवै ॥
तृस्ना बड़ी छिनारि जाइ उन सब घर घाला।
काल बड़ा बरियार किया उन एक निवाला ॥
पलटू हरि के भजन बिनु कोऊ न उतरै पार।
माया की चक्की चलै पीसि गया संसार ॥

क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत।
चाला जात बसंत कंत ना घर में आए।
धृग जीवन है तोर कंत बिन दिवस गॅवाये ॥
गर्व गुमानी नारि फिरै जोबन की माती।
खसम रहा है रूठि नहीं तू पठवै पाती ॥
लगै न तेरो चित्त कंत को नाहिं मनावै।
का पर करै सिंगार फूल की सेज बिछावै ॥
पलटू ऋतु भरि खेलि ले फिर पछितैहै अंत।
क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत ॥

प्रेम

प्रेम बान जोगी मारल हो कसकै हिया मोर।
जोगिया कै लालि लालि अँखियाँ हो जस कॅवल कै फूल ॥
हमरी सुरुख चुनरिया हो दूनों भये तूल।
जोगिया कै लेउ मिर्गछलवा हो आपन पट चीर ॥
दूनौं कै सियब गुदरिया हो होइ जाबै फकीर।
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो ताकिन्हि मोरी ओर ॥
चितवन में मन हरि लियो है, जोगिया बड़ चोर।
गंग जमुन के बिचवां हो, बहै झिरहिर नीर ॥
तेहिं ठैयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर।
जोगिया अमर मरै नहिं हो पुजवल मोरी आस ॥
कर लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास ॥

साहिब के दास कहाय यारो, जगत की आस न राखिये जी।
समरथ स्वामी की जब पाया, जगत से दीन न भाखिये जी ॥
साहिब के घर में कौन कमी, किस बात की अंते आखिये जी।
पलटू जो दुख सुख लाख परै, वहि नाम सुधा रस चाखिये जी ॥
चितवनि चलनि मुसकानि नवनि, नहिं राग द्वेष हार जीत है जी।
पलटू छिमा संतोष सरल, तिनको गावै स्रुति नीति है जी ॥

पूरब पुन्न भये प्रगठ सतसंगति के बीच परी।
आनंद भये जब संत मिले वही सुभ दिन वहि सुभ घरी ॥
दरसन करत त्रय ताप मिटे बिन कौड़ी दाम मैं जाय तरी।
पलटू आवागवन छूटा, चरनन की रज सीस धरी ॥

कुंडलिया

पिय को खोजन मैं चली आपुइ गई हिराय।
आपुइ गई हिराय कवन अब कहै सँदेसा।
जेकर पिय में ध्यान भई वह पिय के भेसा ॥
आगि माहिं जो परै सोऊ अगनी ह्वै जावै।
भृंगी कीट को भेंटि आपु सम लेइ बनावै ॥
सरिता बहि के गई सिंधु में रही समाई।
सिव सक्ती के मिले नहीं फिर सक्ती आई ॥
पलटू दिवाल कहकहा मत कोउ झाँकन जाय।
पिय को खोजन में चली आपुइ गई हिराय ॥

रेखता

बिना सतसंग न कथा हरिनाम की, बिना हरिनाम ना मोह भागै।
मोह भागे बिना मुक्ति ना मिलैगी, मुक्ति बिनु नाहि अनुराग लागै ॥
बिना अनुराग के भक्ति न होयगी, भक्ति बिनु प्रेम उर नाहिं जागै।
प्रेम बिनु राम ना राम बिनु संत ना, पलटू सतसंग बरदान माँगै ॥

जिन जिन पाया वस्तु को तिन तिन चले छिपाय।
तिन तिन चले छिपाय प्रगट में होय हरकत।
भीड़ भाड़ से डरै भीड़ में नहीं बरकत ॥
धनी भया जब आप मिली हीरा की खानी।
ठग है सब संसार जुगत से चलै अपानी ॥
जो ह्वै रहते गुप्त सदा वह मुक्ति में रहते।
उन पर आवै खेद प्रगट जो सब से कहते ॥
पलटू कहिये उसी से जो तन मन दै लै जाय।
जिन जिन पाया वस्तु को तिन तिन चले छिपाय ॥

अरिल

काम कोध बसि कीहा नींद औ भूख को।
लोभ मोह बसि कीहा दुक्ख औ सुक्ख को ॥
पल में कीस हजार जाय यह डोलता।
अरे हाँ पलटू वह ना लगा हाथ जौन यह बोलता ॥
आठ पहर की मार बिना तरवार की।
चूके सो नहिं ठाँव लड़ाई धार की ॥
उस ही से यह बनै सिपाही लाग का।
अरे हाँ पलटू पड़ै दाग पर दाग पंथ बैराग का ॥

कुंडलिया

काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं।
ताकन को ढब नाहिं ताकन की गति है न्यारी।
इकटक लेवै ताकि सोई है पिय की प्यारी ॥
ताके नैन मिरोरि नहीं चित अंतै टारै।
बिन ताके केहि काम लाख कोउ नैन संवारै ॥
ताके में है फेर फेर काजर में नाहीं।
भंगि मिली जो नाहिं नफा क्या जोग के माहीं ॥
पलटू सनकारत रहा पिया को खिन खिन माहिं।
काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं ॥

रेखता

नाचना नाचु तो खोलि घूँघट कहैं। खोलि के नाचु संसार देखै ॥
खसम रिझाव तो ओट को छोड़ि दे। भर्म संसार कौ दूरि फेंकै ॥
लाज किसकी करै खसम से काम है। नाचु भरि पेट फिर कौन छेंकै ॥
दास पलटू कहै तुही सुहागिनी। सोव सुख सेज तू खसम एकै ॥
सुंदरी पिया की पिया को खोजती। भइ बेहोस तू पिया के कै ॥
बहुत सी पदमिनी खोजती मरि गईं। रटत ही पिया पिया एक एकै ॥
सती सब होत हैं जरत बिनु आगि से। कठिन कठोर वह नाहिं झाँकै ॥
दास पलटू कहै सीस उतारि के। सीस पर नाचु जो पिया ताकै ॥

झूलना

केतिक जुग गये बीति माला के फेरते ।
छाला परि गये जीभ राम के टेरते ॥
माला दीजै डारि मनै को फेरना ॥
अरे हाँ पलटू मुँह के कहै न मिलै दिलै बिच हेरना ॥

अरिल

जीवन है दिन चारि भजन करि लीजिये ।
तन मन धन सब वारि संत पर दीजिये ॥
संतहि से सब होइ जो चाहै सो करैं ।
अरे हाँ पलटू संग लगे भगवान संत से वे डेरैं ॥

कुंडलिया

दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान ।
भक्ति दई तेहि जान नाम पर पकरयो मोकहँ ।
गिरा परा धन पाय छिपायौं मैं ले ओकहँ ॥
लिखा रहा कुछ आन कर्म में दीन्हा आनै ।
जानौं मही अकेल कोऊ दूसर नहिं जानै ॥
पाछे भा फिर चेत देय पर नाहीं लीन्हा ।
आखिर बड़े की चूक जोई निकसा सोई कीन्हा ॥
पलटू मैं पापी बड़ा भूल गया भगवान ।
दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान ॥

अरिल

माता बालक कहैं राखती प्रान है ।
फनि मनि धरै उतारि ओही पर ध्यान है ॥
माली रच्छा करै सींचता पेड़ ज्यों ।
अरे हां पलटू भक्त संग भगवान गऊ औ बच्छ त्यौं ॥

कुंडलिया

धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय ।
चादर लीजै धोय मैल है बहुत समानी ।

चल सतगुरु के घाट भरा जहं निर्मल पानी ॥
चादर भई पुरानि दिना दिन बार न कीजे।
सतसंगत में सौंद ज्ञान का साबुन दीजै ॥
छूटै कलमल दाग नाम का कलप लगावै ।
चलिये चादर ओढ़ि बहुर नहिं भव जल आवै ॥
पलटू ऐसा कीजिये मन नहिं मैला होय ।
धुविया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय ॥

नाम

मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारै जान ।
पियत निकारै जान मरै की करै तयारी ।
सो वह प्याला पियै सीस को धरै उतारी ॥
आंख मूंदि कै पियै जियन की आसा त्यागै ।
फिरि वह होवै अमर मुये पर उठ कै जागै ॥
हरि से वे हैं बड़े पियो जनि हरि रस जाई ।
ब्रह्मा बिस्नु महेस पियत कै रहे डेराई ॥
पलटू मेरे बचन को ले जिज्ञासू मान ।
मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारै जान ॥

दीपक बारा नाम का महल भया उजियार ।
महल भया उजियार नाम का तेज बिराजा ।
सब्द किया परकास मानसर ऊपर छाजा ॥
दसो दिसा भई सुद्ध बुद्ध भई निर्मल साची ।
छुटी कुमति की गांठि सुमति परगट होय नाची ॥
होत छतीसो राग दाग तिर्गुन का छूटा ।
पूरा प्रगटे भाग करम का कलसा फूटा ॥
पलटू अंधियारी मिटी बाती दीन्हीं टार ।
दीपक बारा नाम का महल भया उजियार ॥

हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेट अमीर ।
लै लै भेट अमीर नाम का तेज बिराजा ।

सब कोऊ रगरै नाक आइ कै परजा राजा ॥
सकलदार मैं नहीं नीच फिर जाति हमारी।
गोड़ धोय षट करम बरन पावै लै चारी ॥
बिन लसकर बिन फौज मुलुक मैं फिरी दुहाई।
जन महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई ॥
सतनाम के लिहे से पलटू भया गँभीर।
हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेट अमीर ॥

सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत।
तैसे सीतल संत जगत की ताप बुझावैं।
जो कोई आवै जरत मधुर मुख बचन सुनावैं ॥
धीरज सील सुभाव छिमा ना जात बखानी।
कोमल अति मृदु बैन बज्र को करते पानी ॥
रहन चलन मुसकान ज्ञान को सुगँध लगावैं।
तीन ताप मिट जाय संत के दरसन पावैं ॥
पलटू ज्वाला उदर की रहै न मिटै तुरंत।
सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत ॥

हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय।
जन की सही न जाय दुर्वासा की क्या गत कीन्हा।
भुवन चतुर्दस फिरै सबै दुरियाय जो दीन्हा ॥
त्राहि त्राहि कर परे जबै हरि चरनन जाई।
तब हरि दीन्ह जवाब मोर बस नाहिं गुसाईं ॥
मोर द्रोह करि बचै करौं जन द्रोहक नासा।
माफ करै अँबरीक बचोगे तब दुर्वासा ॥
पलटू द्रोही संत कर इन्है सुदर्सन खाय।
हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय ॥

पाखंडी

पिसना पीसै रांड री पिउ पिउ करै पुकार।
पिउ पिउ करै पुकार जगत को प्रेम दिखावै।

कहवै कथा पुरान पिया के तनिक न भावै ॥
खिन रोवै खिन हँसै ज्ञान की बात बतावै ।
आप न रीझै भाँड और के बैठि रिझावै ॥
सुनै न वा की बात तनिक जे अंतर ज्ञानी ।
चाहै भेंटा पीव चलै ना सुपथ रहानी ॥
पलटू ऊपर से कहै भीतर भरा बिकार ।
पिसना पीसै रांड री पिउ पिउ करै पुकार ॥

पर दुख कारन दुख सहै सन असंत है एक ।
सन असंत है एक काट के जल में सारै ।
कूंचै खैंचै खाल उपर से मुँगरा मारै ॥
तेकर बटि के भाँज भाँजि कै बरता रसरा ।
नर की बाँधै मुसुक बाँधते गउ और बछरा ॥
अमरजाल फिर होय बझावै जलचर जाई ।
खग मृग जीवा जंतु तेही में बहुत बझाई ॥
जिउ दै जिउ संतावते पलटू उनकी टेक ।
पर दुख कारन दुख सहै सन असंत है एक ॥

बिसवा किये सिंगार है बैठी बीच बजार ।
बैठी बीच बजार नजारा सब से मारै ।
बातें मीठी करै सबन की गाँठ निहारै ॥
चोवा चंदन लाइ पहिरि के मखमल खासा ।
पंचभतारी भई करै औरन की आसा ॥
लेइ खसम को नाँव खसम से परिचै नाहीं ।
बेंचि बड़न को नाँव सभन के ठगि ठगि खाहीं ॥
पलटू तेकर बात है जेकरे एक भतार ।
बिस्वा किये सिंगार है बैठी बीच बजार ॥

हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फकीर
नाहक भये फकीर पीर को सेवा नहीं ।

अपने मुँह से बड़े कहावैं सब से जाहीं ॥
धमधूसर होइ रहै बात में सब से लड़ते ।
लाम काफ वो कहै इमान को नाहीं डरते ॥
हमहीं हैं दुरबेस और ना दूसर कोई ।
सब को देहि मुराद यकीन से ओकरे होई ॥
मन मुरीद होवै नहीं आप कहावैं पीर ।
हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फकीर ॥

जौं लगि फाटै फिकिर ना गई फकीरी खोय ।
गई फकीरी खोय लगी है मान बड़ाई ।
मोर तोर में परा नाहिं छूटी दुचिताई ॥
दुख सुख संपति बिपति सोच दोऊ की लागी ।
जीवन की है चाह मरन की डर नहिं त्यागी ॥
कौड़ी जिव के संग रैन दिन करै कल्पना ।
दुष्ट कहै दुख देइ मित्र को जानै अपना ॥
पलटू चिंता लगी है जनम गँवाये रोय ।
जौं लगि फाटै फिकिर ना गई फकीरी खोय ॥

चितावनी

धूआं का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत ।
ज्यों बालू की भीत ताहि को कौन भरोसा ।
ज्यों पक्का फल डारि गिरत से लगै न दोसा ॥
कच्चे घड़े ज्यो नीर पानी के बीच बतासा ।
दारू भीतर अगिनि जिवन की ऐसी आसा ॥
पलटू नर तन जात है घास के ऊपर सीत ।
धूआं का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत ॥

यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग ।
सुनहु मुसाफिर लोग भेंट फिर बहुरि न होना ।
को तुम को हम आय मिले सपने में सोना ॥
हिल मिल दिन दस रहे ताहि को सोच न कीजै ।

कोऊ है थिर नाहि दोस ना हमको दीजै ॥
अहिर बाँधि के गाय एक लेहडे में आनी।
कूवां की पनिहारि गई ले घर घर पानी ॥
पलटू मछरी आम ज्यों नदी नाँव संजोग।
यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग ॥

आग लगी लंका दहै उनचासौं वही बयार।
उनचासौं वही बयार ताहि को कौन बचावै।
घर के प्रानी रहे सोऊ आगी गुहरावैं ॥
फूटी घर की नारि सगा भाई अलगाना।
बड़े मित्र जो रहे भये सब सत्रु समाना ॥
कंचन को सब नगर रती को रावन तरसै।
दिया सिंधु ने थाह ऊपर से परवत बरसै ॥
पलटू जेहि ओर राम हैं तेहि ओर सब संसार।
आग लगी लंका दहै उनचासौं वही बयार ॥

ज्यों ज्यों सूखे ताल हैं त्यों त्यों मीन मलीन।
त्यों त्यो मीन मलीन जेठ में सूख्यो पानी।
तीनों पन गये बीति भजन का मरम न जानी ॥
कँवल गये कुम्हिलाय हंस ने किया पयाना।
मीन लिया कोउ मारि ठाँव ढेला चिहराना ॥
ऐसी मानुष देह वृथा में जात अनारी।
भूला कौल करार आप से काम बिगारी ॥
पलटू बरस औ मास दिन पहर घड़ी पल छीन।
ज्यों ज्यों सूखै ताल है त्यों त्यों मीन मलीन ॥

की तौ इक ठौरै रहै की दुइ में इक मर जाय।
दुइ में इक मर जाय रहत है दुविधा लागी।
सुचित नहीं दिन रात उठत बिरहा की आगी ॥
तुम जीवो भगवान मरन है मेरो नीका।

तुम बिन जीवन धिक्क लगै कारिख को टीका ॥
की तुम आवो लेव इहां की प्रान अपाना ।
दोऊ को दुख होय हंस जोड़ी अलगाना ॥
कह पलटू स्वामी सुनो चिन्ता सही न जाय ।
की तौ इक ठौरे रहै की दुइ में इक मर जाय ॥

आसिक का घर दूर है पहुँचे बिरला कोय ।
पहुँचे बिरला कोय होय जो पूरा जोगी ।
बिंद करै जो छार नाद के घर में भोगी ॥
जीते जी मरि जाय मुए पर फिर उठि जागै ।
ऐसा जो कोई होइ सोई इन बातन लागै ॥
पुरजे पुरजे उड़ै अन्न बिनु बस्तर पानी ।
ऐसे पर ठहराय सोई महबूब बखानी ॥
पलटू आप लुटावही काला मुँह जब होय ।
आसिक का घर दूर है बिरला पहुँचे कोय ॥

जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान ।
छोड़ि देतु है प्रान जहाँ जल से बिलगावै ।
देइ दूध में डारि रहै ना प्रान गँवावै ॥
जा को वही अहार ताहि को का लै दीजै ।
रहै न कोटि उपाय और सुख नाना कीजै ॥
यह लीजै दृष्टांत सकै सो लेइ बिचारी ।
ऐसा करै सनेह ताहि को मैं बलिहारी ॥
पलटू ऐसी प्रीति करु जल और मीन समान ।
जहां तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान ॥

ध्यान

जैसे कामिनि के विषय कामी लावै ध्यान ।
कामी लावै ध्यान रैन दिन चित्त न टारै ।
तन मन धन मर्जाद कामिनि के ऊपर वारै ॥
लाख कोऊ जो कहै कहा ना तनिक मानै ।

बिन देखे ना रहै वाहि के सरबस जानै ॥
लेय वाहि को नाम वाहि की करै बड़ाई ।
तनकि बिसारै नाहि कनक ज्यों किरपिन पाई ॥
ऐसी प्रीति अब दीजिए पलटू को भगवान ।
जैसे कामिनि से बिषय कामी लावै ध्यान ॥

घट मठ

साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ।
साहिब तेरे पास याद करु होवै हाजिर ।
अंदर धसि कै देखु मिलैगा साहिब नादिर ॥
मान मनी हो फना नूर तब नजर में आवै ।
बुरका डारै टारि खुदा बाखुदा दिखरावै ॥
रूह करै मेराज कुफ़र का खोलि करावा ।
तीसौ रोजा रहै अंदर में सात रिकावा ॥
लामकान में रब्ब को पावै पलटूदास ।
साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ॥

खोजत खोजत मरि गये घर ही लागा रंग ।
घर ही लागा रंग कीन्ह जब संतन दाया ।
मन में भा विस्वास छूटि गइ सहजै माया ॥
वस्तु जो रही हिरान ताहि का लगा ठिकाना ।
अब चित चलै न इत उत आपु में आपु समाना ॥
उठती लहर तरंग हृदय में सीतल लागे ।
भरम गई है सोय बैठि के चेतन जागे ॥
पलटू खातिर जमा भइ सतगुरु के परसंग ।
खोजत खोजत मरि गये घर ही लागा रंग ॥

सूरमा

संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ग्यान ।
तरकस बाँधे ज्ञान मोह दल मारि हटाई ।

मारि पाँच पच्चीस दिहा गढ़ आगि लगाई ॥
काम क्रोध को मारि कैद में मन को कीन्हा।
नव दरवाजे छोड़ि सुरत दसएं पर दीन्हा ॥
अनहद बाजै दूर अटल सिंहासन पाया।
जीव भया संतोष आय गुरु नाम लखाया ॥
पलटू कफ्फन बाँधि कै खेंचो सुरति कमान।
संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ग्यान ॥

लागी गाँसी सबद की पलटू मुआ तुरंत।
पलटू मुआ तुरंत खेत के ऊपर जाई।
सिर पहिले उड़ि गया रुंड से करै लड़ाई ॥
तन में तिल तिल घाव परदा खुलि लटकत जाई।
हैफ खाइ सब लोग लड़ैं यह कठिन लड़ाई ॥
सतगुरु मारा तीर बीच छाती में मेरी।
तीर चला होइ पवन निकरि गा तारू फेरी ॥
कहने वाले बहुत हैं कथनी कथै बेअंत।
लागी गाँसी सबद की पलटू मुआ तुरंत ॥

पतिब्रता

पतिबरता को लच्छन सब से रहै अधीन।
सब से रहै अधीन टहल वह सब की करती।
सास ससुर औ भसुर ननद देवर से डरती ॥
सब का पोषन करै सभन की सेज बिछावै।
सब को लेय सुताय पास तब पिय के जावै ॥
सूतै पिय के पास सभन को राखै राजी।
ऐसा भक्त जो होय ताहि की जीती बाजी ॥
पलटू बोलै मीठे बचन भजन में है लौलीन।
पतिबरता को लच्छन सब से रहै अधीन ॥

सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ ॥
जरै पिया के साथ सोई है नारि सयानी।

रहै चरन चित लाय एक से और न जानी ॥
जगत करै उपहास पिया का संग न छोड़ै ।
प्रेम की सेज बिछाय मेहर की चादर ओढ़ै ॥
ऐसी रहनी रहै तजै जो भोग बिलासा ।
मारै भूख पियास आदि संग चलती स्वासा ॥
रैन दिवस बेहोस पिया के रंग में राती ।
तन की सुधि है नहीं पिया संग बोलत जाती ॥
पलटू गुरु परसाद से किया पिया को हाथ ।
सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ ॥

उपदेस

जाकी जैसी भावना तासे तस ब्यौहार ।
तासे तस ब्यौहार परसपर दूनौं तारी ।
जो जेहि लाइक होय सोई तस ज्ञान बिचारी ॥
जो कोइ डारै फूल ताहि को फूल तयारी ।
जो कोइ गारी देत ताहि को हाजिर गारी ॥
जो कोइ अस्तुति करै आपनी अस्तुति पावै ।
जो कोइ निंदा करै ताहि के आगे आवै ॥
पलटू जस मैं पीव का वैसे पीव हमार ।
जाकी जैसी भावना तासे तस ब्यौहार ॥

तो कहं कोई कछु कहै कीजै अपनो काम ।
कीजै अपनो काम जगत को भूकन दीजै ।
जाति बरन कुल खोय संतन को मारग लीजै ॥
लोक बेद दे छोड़ि करै कोउ कितनौं हाँसी ।
पाप पुन्न दोउ तजौ यही दोउ गर की फांसी ॥
करम न करिहौ एक मरम कोउ लाख दिखावै ।
टरै न तेरी टेक कोटि ब्रह्मा समुझावै ॥
पलटू तनिक न छोड़िहौ जिउ कै संगै नाम ।
तो कहँ कोऊ कछु कहै कीजै अपनो काम ॥

मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम।
और मौज किहि काम मोज जौ ऐसी आवै।
आठौ पहर अनन्द भजन में दिवस बितावै॥
ज्ञान समुद्र के बीच उठत है लहर तरंगा।
तिरबेनी के तीर सुरसती जमुना गंगा॥
संत सभा के मध्य शब्द की फड जब लागै।
पुलकि पुलकि गलतान प्रेम में मन के पागै॥
पलटू रहै बिबेक से छूटै नहिं सतनाम।
मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम॥

ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय।
त्यों त्यो गरुई होय सुनै संतन की बानी।
ठोपै ठोप अघाय ज्ञान के सागर पानी॥
रस रस बाढ़े प्रीति दिनों दिन लागन लागी।
लगत लगत लगि जाय भरम आपुइ से भागी॥
रस रस चलै सो जाय गिरै जो आतुर धावै।
तिल तिल लागै रंग भंगि तब सहजै आवै॥
भक्ति पोढ पलटू करै धीरज धरै जो कोय।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यो गरुई होय॥

हस्ती बिनु मारै मरै करै सिंघ को संग।
करै सिंघ को संग सिंघ की रहनी रहना।
अपनो मारा खाय नहीं मुरदा को गहना॥
नहिं भोजन नहिं आस नहीं इंद्री को तिष्ठा।
आठ सिद्धि नौ निद्धि ताहि को देखत बिष्ठा॥
दुष्ट मित्र सब एक लगै ना गरमी पाला।
अस्तुति निंदा त्यागि चलत है अपनी चाला॥
पलटू झूठा ना टिकै जब लगि लगै न रंग।
हस्ती बिनु मारै मरै करै सिंघ को संग॥

पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोइ।
मित्र न कीजै कोय चित दै बैर बिसाहै।
निस दिन होय बिनास और वह नाहिं निबाहै॥
चिंता बाढ़ै रोग लगा छिन छिन तन छीजै।
कम्मर गरुआ होय ज्यों ज्यों पानी से भीजै॥
जोग जुगत की हानि जहाँ चित अंतै जावै।
भक्ति आपनी जाय एक मन कहूँ लगावै॥
राम मिताई ना चलै और मित्र जो होय।
पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोय॥

भेद

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग।
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती॥
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वाको दरसावै॥
निकसै एक अवाज चिराग की जोतिहि माहीं।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं॥
पलटू जो कोई सुनै ताके पूरे भाग।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥

बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर।
मगन गया मन मोर महल अठवें पर बैठा।
जहं उठै सोहंगम शब्द शब्द के भीतर पैठा॥
नाना उठैं तरंग रंग कुछ कहा न जाई।
चाँद सुरज छिप गये सुषमना सेज बिछाई॥
छूटि गया तन येह नेह उनहीं से लागी।
दसवाँ द्वारा फोडि जोति बाहर ह्वै जागी॥
पलटू धारा तेल की मेलत ह्वै गया भोर।
बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर॥

चढ़े चौमहले महल पर कुंजी आवे हाथ।
कुंजी आवे हाथ शब्द का खोलै ताला।
सात महल के बाद मिलै अठएं उजियाला॥
बिनु कर बाजै तार नाद बिनु रसना गावे।
महा दीप इक बरै दीप में जाय समावे॥
दिन दिन लागै रंग सफाई दिल की अपने।
रस रस मतलब करै सिताबी करै न सपने॥
पलटू मालिक तुही है कोई न दूजा साथ।
चढ़े चौमहले महल पर कुंजी आवे हाथ॥

चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात।
नहीं दिवस नहिं रात नाहिं उतपति संसारा।
ब्रह्मा बिस्नु महेस नाहिं तब किया पसारा॥
आदि ज्योति बैकुंठ सुन्य नाहीं कैलासा।
सेस कमठ दिगपाल नाहिं धरती आकासा॥
लोक बेद पलटू नहीं कहौं मैं तबकी बात।
चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात॥

झंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार।
हद बेहद के पार तूर जहँ अनहद बाजैं।
जगमग जोति जड़ाव सीस पर छत्र बिराजैं॥
मन बुधि चित रहे हार नहीं कोउ वह घर पावैं।
सुरत शब्द रहै पार बीच से सब फिरि आवैं॥
वेद पुरान की गम्म सबै ना उहवां जाई।
तीन लोक के पार तहां रोसन रोसनाई॥
पलटू ज्ञान के परे है तकिया तहां हमार।
झंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार॥

जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख।
मोहिं पड़ा है देखि नदी इक बड़ी है गहिरी।

ता में धारा तीन बीच में सहर बिलौरी ॥
महल एक अँधियार बरै तहँ गैब की बाती ।
पुरुष एक तहँ रहै देखि छबि वाकी माती ॥
पुरुष अलापै तान सुना मैं एकठो जाई ।
वाहि तान के सुनत तान में गई समाई ॥
पलटू पुरुष परान वह रंग रूप नहिं रेख ।
जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख ॥

अद्वैत

जल से उठत तरंग है जल ही माहिं समाय ।
जल ही माहिं समाय सोई हरि सोई माया ।
अरुझा बेद पुरान नहीं काहू सुरझाया ॥
फूल मंहै ज्यों बास काठ में आग छिपानी ।
दूध मंहैं घिउ रहै नीर घट माहिं लुकानी ॥
जो निर्गुन से सर्गुन और न दूजा कोई ।
दूजा जो कोइ कहै ताहि को पातक होई ॥
पलटू जीव और ब्रह्म से भेद नहीं अलगाय ।
जल से उठत तरंग है जल ही माहिं समाय ॥

उलटबाँसी

गंगा पाछे को बही मछरी बही पहार ।
मछरी बही पहार चूल्ह में फंदा लाया ।
पुखरा भीटै बाँधि नीर में आग छिपाया ॥
अहिरिनि फेंकै जाल कुहारिन भैंस चरावे ।
तेलि कै मरिगा बैल बैठि के धुबइनि गावै ॥
महुवा में लागा दाख भाँग में भया लुबाना ।
सांप के बिल के बीच जाय के मूस लुकाना ॥
पलटू संत बिबेकी बुझिहैं सब्द सम्हार ।
गंगा पाछे को बही मछरी चढ़ी पहार ॥

खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ।
सिर की गई बलाय बहुत सुख हम ने माना ।
लागे मंगल होन बजन लागे सदियाना ॥
दीपक बरै अकास महल पर सेज बिछाया ।
सूतौं महीं अकेल खबर जब मुए की पाया ॥
सूतौं पाँव पसारि भरम की डोरी टूटी ।
मने कौन अब करै खसम बिनु दुविधा छूटी ॥
पलटू सोई सुहागिनी जियतै पिय को खाय ।
खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ॥

माया

नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ।
आपुइ नागिनि खाय नागिन से कोऊ ना बाँचै ।
नेजा धारी संभु नागिनि के आगे नाचे ॥
सिंगी ऋषि को जाय नागिनि ने बन में खाई ।
नारद आगे पड़े लहर उनहूँ को आई ॥
सुर नर मुनि गनदेव सभन को नागिन लीलै ।
जोगी जती औ तपी नहीं काहू को ढीलै ॥
संत बिबेकी गरुड़ हैं पलटू देखि डेराय ।
नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ॥

कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसंग ।
नागिनि के परसंग जीव के भच्छक सोई ।
पहरू कीजै चोर कुसल कहवां से होई ॥
रूई के घर बीच तहां पावक लै राखै ।
बालक आगे जहर राखि करिके वा चाखै ॥
कनक धार जो होय ताहि ना अंग लगावै ।
खाया चाहै खीर गाँव में सेर बसावै ॥
पलटू माया से डरै करै भजन में भंग ।
कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसंग ॥

अज्ञानता

घर में जिंदा छोड़ि के मुरदा पूजन जायं।
मुरदा पूजन जायँ भीति को सिरदा नावैं।
पान फूल औ खांड जाइ कै तुरत चढ़ावैं ॥
ताल कि माटी आनि ऊँच के बाँधिनि चौरी।
लीपि पोति कै धरिनि पूरी औ बरा कचौरी ॥
पीयर लूगा पहिरि जाय के बैठिनि बूढ़ा।
भरमि भरमि अभुवाइ मांगत हैं खसी कै मूंड़ा ॥
पलटू सब घर बाँटि के लै लै बैठे खायं।
घर में जिंदा छोड़ि के मुरदा पूजन जायं ॥

जगजीवनदास

बाबा जगजीवनदास जी बाबा धरनीदास जी के समकालीन माने गये हैं। इनकी जन्म तथा मरण तिथि अनिश्चित है। मिश्रबंधुओं तथा पादरी जॉन टामस का अनुमान है कि ये ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में रहे होंगे। किंतु इनके अनुयायी 'सत्तनामी' पंथ वाले इनकी जन्मतिथि माघ सुदी सप्तमी, मंगलवार, सं० १७२७ तथा मरण बैशाख बदी सप्तमी, मंगलवार सं० १८१७ को मानते हैं। ये जाति के चंदेल क्षत्रिय थे और बाराबंकी ज़िले के सरयू तीर के सरदहा गाँव में उत्पन्न हुए थे। पादरी जॉन टामस साहब कदाचित् भ्रम से इन्हें खत्री समझते हैं।

इनके पिता किसान थे और ये भी आरंभ में अपना समय गाय-बैल चराने तथा कृषकोचित अन्य कार्यों में बिताते थे। इनके गुरु से दीक्षित होने के संबंध में एक विचित्र कथा प्रसिद्ध है। एक बार इन्हें बैल चराते समय दो संत मिले। इनमें से एक बुल्ला साहब थे और दूसरे गोविंद साहब। इन लोगों ने इनसे चिलम भरने के लिए आग माँगी। ये आग तो लाए ही पर साथ ही इनकी थकावट दूर करने के अभिप्राय से घर का थोड़ा-सा दूध भी लेते आये पर मन में डर रहे थे कि पिता जी को अगर मालूम हो गया तो मार पड़ेगी। बुल्ला साहब ने यह कहते हुए दूध ले लिया कि डरो मत हमें दूध पिलाने से तुम्हारे घर का दूध घटा नहीं बल्कि बहुत बढ़ गया होगा। इन्होंने घर जाकर देखा तो सब बर्तन दूध से लबालब भरे हुए पाये। उल्ट पाँव तुरंत उन दोनों का पीछा किया और कुछ दूर जाकर उन्हें पाया भी। उसी समय इन्होंने उनसे अपने को दीक्षित कर लेने का आग्रह किया। उन्होंने कहा इसकी कोई आवश्यकता नहीं, हम लोग तो सिर्फ़ तुम्हें अपने स्वरूप का ज्ञान कराने भर आये थे, तुम उस जन्म के पहुँचे हुए फ़कीर हो। इतना कहकर उन्होंने एक विचित्र दृष्टि से इनकी ओर

देखा और देखते ही इनकी अवस्था बदल गई। पर इतने पर भी इन्होंने कुछ चिन्ह देने का बड़ा आग्रह किया। इस पर बुल्ला साहब ने अपने हुक्के से एक काला धागा और गोविंद साहब ने भी अपने हुक्के से एक सफ़ेद धागा निकाल कर दिया जिसे इन्होंने अपनी कलाई पर बाँध लिया। इन्होंने बाद में जब अपना 'सत्तनामी' नामक पंथ चलाया तो उनका प्रधान चिन्ह दाहनी कलाई पर यही दोरंगा धागा हुआ जिसे, 'आँदू' कहते हैं। कुछ विद्वान् विश्वेश्वर पुरी को इनका गुरु मानते हैं।

इसके बाद इनकी प्रसिद्धि होने लगी जिससे गाँव वाले ईर्ष्यावश इन्हें बड़ा तंग करने लगे। अंत में उनसे तंग आकर ये सरदहा छोड़ कर पास ही के एक दूसरे गाँव काटवा में चले गये। कहते हैं उसी साल सरयू में बाढ़ आई और सरदहा गाँव बह गया।

इसी प्रकार की कई कथाएँ इनके संबंध की प्रसिद्ध हैं। इनके कोई स्वतंत्र ग्रंथ अभी तक हमारे देखने में नहीं आए हैं, पर जॉन टामस का कहना है कि उन्हें इनके दो ग्रंथ 'ज्ञानप्रकाश' और 'महाप्रलय' मिले हैं। इनकी रचनाओं का एक संग्रह दो भागों में बेलवेडियर प्रेस से निकला है और संगृहीत पद्य उसी से लिये गये हैं। इनकी शैली की विशेषता है इनकी सरलता और नम्रता। ये दैन्य भाव का परिचय बहुत कराते हैं। इनके पद्यों में भी प्रसादगुण का प्राधान्य है। इनके बहुत से पद गाने योग्य हैं और बड़े मधुर हैं। इनकी कविता में प्रायः उसी प्रकार की आत्म-ग्लानि, क्षोभ, अपने को घोर पापी समझने का भाव, तथा नितांत असहायता के भाव मिलते हैं जैसे तुलसीदास जी ने अपनी विनयपत्रिका में प्रगट किये हैं। इस दृष्टि से यह अन्य संत कवियों से पृथक् कहे जा सकते हैं कि यह सगुणोपासक भक्त-कवियों की भाँति परमात्मा में सर्वस्व समर्पण कर देने के पक्षपाती हैं। यों तो इनकी रचना में धार्मिक भाव कम हैं पर जो हैं वह सूर, तुलसी आदि वैष्णव-कवियों की विचारधारा के अधिक निकट हैं। कबीर के विचारों से कदाचित् यह अधिक प्रभावित नहीं हो सके थे।

चितावनी

कहाँ गयो मुरली कौ बजइया, कहाँ गयो रे ॥ टेक ॥
एक समय जब मुरली बजायो, सब सुनि मोहि रह्यो रे ।
जिनके भाग्य भये पूर्बज के, ते वहि संग गह्यो रे ॥
खबरि न कोई केहुँ की पाई, को धौं कहाँ गयो रे ।
ऐसे करता हरता यहि जग, तेऊ थिर न रह्यो रे ॥
रे नर बौरे तैं कितना है, केहिं गनती माँ है रे ।
जगजीवनदास गुमान करहु नहि, सत्त नाम गहि रहु रे ॥

मैं तैं जग त्यागि मन, चलिये सिर नाई ।
नाम जानि दीन हीन, करिये दीनताई ॥
अहंकार गर्व तें सब गये हैं बिलाई ।
रावन के सीस काटि, राम की दुहाई ॥
जिन जिन गुमान कीन्ह, मारि गर्द ही मिलाई ।
साधि साधि बाँधि प्रीति, ताहि पर सहाई ॥
परसहु गुरु सीस डारि, दुनिया बिसराई ।
जगजीवन आस एक, टेक रहिये लगाई ॥

अरे मन देहु तजि मतवारि ।
जे जे आये जगत मँह इहि गये ते ते हारि ॥
नाहिं सुमिरयौ नाम काँ, सब गयो काम बिगारि ।
आपु काँ जिन बड़ा जान्यो, काल खायो गारि ॥
जानि आपुहिँ छोट जग, रहि रहौ डोरि सँभारि ।
बैठि कैं चौगान निरखहु, रूप छबि अनुहारि ॥
रहौ थिर सतसंग बासी, देहु सकल बिसारि ।
जगजीवन सतगुरु कृपा करि, लेहिं सबै सँवारि ॥

मन महँ नाहिँ बूझत कोय ।
नहीं बसि कछु अहै आपन, करै करता होय ॥
कहत मैं तैं सूझि नाहीं भर्म भूला सोय ।

पड़े धारा मोह की बसि डारि सर्वस खोय ॥
करै निंदा साध की, परि पाप बूड़ैं सोय ।
अंत फजीहत होहिंगे, पछिताय रहिहैं रोय ॥
कहौं समुझि बिचारि के, गहि नाम दृढ़ धरु टोय ।
जगजीवन ह्वै रहहु निर्भय, चरन चित्त समोय ॥

होली

कौनि बिधि खेलौं होरी, यहि बन माँ भुलानी ।
जोगिन ह्वै अंग भसम चढ़ायो, तनहिं खाक करि मानी ।
ढुँढ़त ढुँढ़त मैं थकित भई हौं, पिया पीर नहिँ जानी ॥
औगुन सब गुन एकौ नाहीं, माँगन ना मैं जानीं ।
जगजीवन सखि सुखित होहु तुम, चरनन में लपटानी ॥

बिरह

उनहीं सो कहियो मोरी जाय ।
ए सखि पैयाँ परि मैं बिनवौं, काहे हमैं डारिन बिसराय ।
मैं का करौं मोर बस नाहीं, दीन्ह्यो अहै मोहिं भटकाय ॥
ए सखि साईं मोहिं मिलावहु, देखि दरस मोर नैन जुड़ाय ।
जगजीवन मन मगन होउँ मैं, रहौं चरन कमल लपटाय ॥

सखि बाँसुरी बजाय कहाँ गयो प्यारो ।
घर की गैल बिसरि गइ मोहिं तें, अंग न बस्तु सँभारो ।
चलत पाँव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत मतवारो ॥
घर आँगन मोहिं नीक न लागै, सबद बान हिये मारो ।
लागि लगन मैं मगन वहां सों, लोक लाज कुल कानि बिसारो ॥
सुरत दिखाय मोर मन लीन्ह्यो, मैं तौ चहौं होय नहिं न्यारो ।
जगजीवन छबि बिसरत नाहीं, तुम से कहौं सो इहै पुकारो ॥

अरी मोरे नैन भयो बैरागी ।
भसम चढ़ाय मैं भइउँ जोगिनियां, सबै अभूषन त्यागी ।
तलफि तलफि मैं तन मन जारयो, उनहिँ दरद नहिं लागी ॥

निसु बासर मोहिं नींद हरी है, रहत एक टक लागी।
प्रीति सों नैनन नीर बहतु हैं, पी पी पी बिनु जागी॥
सेज आय समुझाय बुझावहु, लेंउ दरस छबि मांगी।
जगजीवन सखि तृप्त भये हैं, चरन कमल रस पागी॥

सखी री करौं मैं कौन उपाई।
मैं तो ब्याकुल निसि दिन डोलौं उनहिं दरद नहिं आई॥
काह जानि कै सुधि बिसराई कछु गति जानि न जाई।
मैं तौ दासी कलपौं पिय बिनु घर आँगन न सुहाई॥
तलफि तलफि जल बिना मीन ज्यों अस दुख मोहिं अधिकाई।
निर्गुन नाह बाँह गहि सेजिया सूतहि हियरा जुड़ाई॥
बिन सँग सूते सुख नहिं कबहूँ जैसे फूल कुम्हलाई।
ह्वै जोगिनि मैं भस्म लगायौं रहिउं नयन टक लाई॥
पैयां परौं मैं निरखि निरखि कै महिं का देहु मिलाई।
सुरति सुमति करि मिलहिं एक ह्वै गगन मँदिल चलि जाई॥
रहि यहि महल टहल मँह लागी सत की सेज बिछाई।
हम तुम उनके सूति रहहिं सँग मिटै सबै दुचिताई॥
जगजीवन सिव ब्रह्मा बिस्नू मन नहिं रहि ठहराई।
रबि ससि करि कुरबान ताहि छबि पीवो दरस अघाई॥

प्रेम

जोगिया भंगिया खवाइल, बौरानी फिरौं दिवानी।
ऐसे जोगिया की बलि बलि जैहौं जिन्ह मोहिं दरस दिखाइल।
नहिं करतें नहिं मुखहिं पियावै नैनन सुरति मिलाइल॥
काह कहौं कहि आवत नाहीं जिन्ह के भाग तिन्ह पाइल।
जगजीवन दास निरखि छबि देखै जोगिया मुरति मन भाइल॥

साईं तुम सों लागो मन मोर॥
मैं तौ भ्रमत फिरौं निसुबासर, चितवौ तनिक कृपा करि कोर॥
नहिं बिसरावहु नहिं तुम बिसरहु, अब चित राखहु चरनन ठौर॥

गुन ऐगुन मन आनहु नाही, मैं तो आदि अंत को तोर ॥
जगजीवन बिनती कर माँगै, देहु भक्ति बर जानि कै थोर ॥

ऐसे साईं की मैं बलिहरियाँ री ।
ए सखि संग रंग रस मातिउँ देखि रहिंउ अनुहरियाँ री ॥
गगन भवन माँ मगन भइउँ मैं बिनु दीपक उजियरियाँ री ।
झलकि चमकि तंह रूप बिराजै मिटी सकल अँधियरियाँ री ॥
काह कहौं कहिबे को नाहीं लागि जाहि मन मँहियाँ री ।
जगजीवन वह जोती निर्मल मोती हीरा वरियाँ री ॥

गुरु बलिहारियाँ मैं जाउँ ॥
डोरि लागी पोढ़ि अब मैं जपहुँ तुम्हरो नाउँ ॥
नाहि इत उत जात मनुवाँ गगन बासा गाउँ ।
महा निर्मल रूप छबि सत निरखि नैन अन्हाउँ ।
नाहिं दुख सुख भर्म व्यापै तप्त नीचे आउँ ॥
मारि आसन बैठि थिर ह्वै काहु नाहिँ डेराउँ ।
जगजीवन निरबान भे सत सदा संगी आउँ ॥

बिनय

अब की वार तारु मोरे प्यारे, बिनती करि कै कहौं पुकारे ।
नहिं बसि अहै केतौ कहि हारे, तुम्हरे अब सब बनहि सवारे ॥
तुम्हरे हाथ अहै अब सोई, और दूसरो नाहीं कोई ।
जो तुम चहन करत सो होई, जल थल मँह रहि जोति समोई ॥
काहुक देत हो मंत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दृढ़ाई ।
कहौं तो कछू कहा नहिँ जाई, तुम जानत तुम देत जनाई ॥
जगत भगत केते तुम तारा, मैं अजान के तान बिचारा ।
चरन सीस मैं नाहीं टारौं, निर्मल सुरति निर्बान निहारौं ॥
जगजीवन काँ अब बिस्वास, राखहु सत गुरु अपने पास ॥

अब मैं कवन गनती आउँ ।
दियो जबहिँ लखाइ महिँ कहँ तबहिँ सुमिरौ नाउँ ॥

समुझि ऐसे परत महिँ कहँ, बसे सरबस ठाउँ।
अहो न्यारे कहूँ नाहीं रूप की बलि जाउँ॥
नाम का बल दियो जेहि कहँ राखि निर्भय गाउँ।
काल को डर नाहिँ उहवाँ भला पायो दाउँ॥
चरन सीसहि राखि निरखी चाखि दरस अघाउँ।
जगजीवन गुर करहु दाया दास तुम्हरा आउँ॥

प्रभु गति जानि नाहीं जाइ।
अहै केतिक बुद्धि केहिँ महँ कहै को गति गाइ॥
सेस सम्भू थके ब्रह्मा बिस्नु तारी लाइ।
है अपार अगाध गति प्रभु केहु नाहीं पाइ॥
भान गन ससि तीनि चौथौ लियो छिनहिँ बनाइ।
जोति एकै कियौ बिस्तर जहाँ तहाँ समाइ॥
सीस दैकै कहौं चरनन कबहुँ नहिँ बिसराइ।
जगजीवन के सत्य गुरु तुम चरन की सरनाइ॥

प्रभु जी का बस अहै हमारी।
जब चाहत तब भजन करावत, चाहत देत बिसारी॥
चाहत पल छिन छूटत नाहीं, बहुत होत हितकारी।
चाहत डारि सूखि पल डारत, डारि देत संहारी॥
कहं लहि बिनय सुनावौं तुम तेँ, मैं तो अहौं अनारी।
जगजीवन दास पास रहे चरनन, कबहूँ करहु न न्यारी॥

साँई को केतानि गुन गावै।
सूझि बूझि तस आवै तेहि काँ, जेहि काँ जौन लखावै॥
आपुहि भजत है आपु भजावत, आपु अलेख लखावै।
जेहि कहँ अपनी सरनहिँ राखै, सोई भगत कहावै॥
टारत नहीं चरन तेँ कबहूँ, नहिं कबहूँ बिसरावै।
सूरति खैंचि ऐंचि जब राखत, जोतिहिँ जोति मिलावै॥
सतगुर कियो गुरुमुखी तेहि काँ, दूसर नाहिँ कहावै।
जगजीवन ते भे सँग बासी, अंत न कोऊ पावै॥

गजब ख्याल अपार लीला, अंत काहु ना पाय।
जीव जंत पतंग जग मँह, काहु ना बिलगाय॥
करौं बिनती जोरि दोउ कर, कहत अहौं सुनाय।
जगजीवन गुरु चरन सरने, है तुम्हार कहाय॥

चरनन तर दियो माथ, करिये अब मोहिं सनाथ,
दास करि के जानी।
बूड़ा सब जगतसार, सूझै नहिं वार पार,
देखि नैनन बूझिय हित आनी॥
सुमति मोहिं देउ सिखाय, आनि में न रहि लुभाय,
बुद्धिहीन भजन हीन सुद्धि नाहिं आनी।
सहसफन तें सेस गावैं, संकर तेहिं ध्यान लावै,
ब्रह्मा बेद प्रगट कहै बानी॥
कहौं का कहि जात नाहिं, जोती वह सर्व माहिं,
जगजीवन दरस चहै दीजै बरदानी॥

साहिब अजब कुदरत तोर।
देखि गति कहि जात नाहीं, केतिक मति है मोर॥
नचत सब कोउ काछि कछनी, भ्रमत फिर बिन डोर।
होत औगुन आप तें, सब देत साहिब खोर॥
कौल करि जग पठै दीन्ह्यौ, तौन डारयो तोर।
करत कपट संत तेतीं, कहैं मोरी भोर॥
ऐसी जग की रीति आहै, कहा कहिये टेर।
जगजीवनदास चरन गुरु के, सुरत करिये पौढ़॥

केतिक बूझि का आरति करऊँ, जैसे रखिहहिं तैसे रहऊँ।
नाहीं कछु बसि आहै मोरी, हाथ तुम्हारे आहै डोरी॥
जस चाहौ तस नाच नचावहु, ज्ञान बास करि ध्यान लगावहु।
तुमहिं जपत तुमहीं बिसरावत, तुमहिं चिताई सरन लै आवत॥
दूसर कवन एक हौ सोई, जेहिँ का चाहौ भक्त सो होई।
जगजीवन करि बिनय सुनावैं, साहिब समरथ नहिं बिसरावै॥

आरत अरज लेहु सुनि मोरी, चरनन लागि रहै दृढ़ डोरी ।
कबहुँ निकट तें टारहु नाहीं, राखहु मोहिँ चरन की छाहीं ॥
दीजै केतिक बास यहं कीजै, अब कर्म मेटि सरन करि लीजै ।
दासन दास ह्वै कहौं पुकारी, गुन मोहिं नहिं तुम लेहु सँवारी ॥
जगजीवन का आस तुम्हारी, तुम्हरी छबि मूरति पर वारी ॥

होली

यहि जग होरी, अरी मोहिं तें खेलि न जाई ।
साईं मोहिं बिसराय दियो है, तब तें परयौं भुलाई ॥
सुख परि सुद्धि गई हरि मोरी, चित्त चेत नहिं आई ।
अनहित हित करि जानि बिषै महं रह्यो ताहि लपटाई ॥
यहि साँचे महं पाँचौ नाचैं, अपनि अपनि प्रभुताई ।
मैं का करौं मोर बस नाहीं, राखत हैं अरुझाई ॥
गगन मंदिल चल थिर ह्वै रहिये तकि छबि छकि निरथाई ।
जगजीवन सखि साईं समरथ, लेहैं सबै बनाई ॥

साध

गऊ निकसि बन जाहीं, बाछा उन घर ही माहीं ।
तृन चरहि चित सुत पासा, एहि युक्ति साध जग बासा ॥
साधु तें बड़ा न कोई, कहि राम सुनावत सोई ।
राम कही हम साधा, रस एक मता औराधा ॥
हम साध साध हम माहीं, कोउ दूसर जानै नाहीं ।
जिन दूसर करि जाना, तेहि होइहि नरक निदाना ॥
जगजीवन चरन चित लावै, सो कहि के राम समुझावै ॥

जब मन मगन भा मस्तान ।
भयो सीतल महा कोमल, नाहिं भावै आन ॥
डोरि लागी पोढ़ि गुरु तें, जग्त तें बिलगान ।
अहै मता अगाध तिनका, करै को पहिचान ॥
अहैं ऐसे जगत माँ कोइ, कहत आहैं ज्ञान ।
ऐसे निर्मल ह्वै रहे हैं, जैसे निर्मल भान ॥

बड़ा बल है ताहि के रे, थमा है असमान।
जगजीवन गुरु चरन परि कै, निर्गुन धरि ध्यान ॥

भेद

गगरिया मोरी चित सों उतरि न जाय।
इक कर करवा एक करि उबहनि, बतियाँ कहौ अरथाय ॥
सास ननद घर दारुन आहैं, तासों जियरा डेराय।
जो चित छुटै गागर फूटै, घर मोरि सासु रिसाय ॥
जगजीवन अस भक्ती मारग, कहत अहौं गोहराय ॥

जाके लगी अनहद तान हो, निरबान निरगुन नाम की।
जिकर करके सिखर हेरे, फिकर रारंकार की ॥
जाके लगी अजपा गगन झलकै, जोति देख निसान की।
मद्ध मुरली मधुर बाजै, बाँए किंगरी सारंगी ॥
दहिने जे घंटा संख बाजै, गैब धुन झनकार कीं।
अकह की यह कथा न्यारी, सीखा नाहीं आन है ॥
जगजीवन प्रानहि सोधि के, मिलि रहे सतनाम है ॥

ज्ञान

आनंद के सिंध में आन बसे, तिन को न रह्यो तन को तपनो।
जब आपु में आपु समाय गये, तब आपु में आपु लह्यो अपनो।
जब आपु में आपु लह्यो अपनो, तब अपनो ही जाप रह्यो जपनो।
जब ज्ञान को भान प्रकास भयो, जगजीवन होय रह्यो सपनो ॥

उपदेश

अरे मन चरन तें रहु लागि।
जोरि दुइ कर सीस दैके, भक्ति बर ले माँगि ॥
और आसा झूँठि आहै, गरम जैसे आगि।
परहिंगे सो जरहिंगे पै, देहु सर्ब तियागि ॥
समौ फिरि एहु पाइहै नहिं, सोउ नहिं गहि जागि।
चेतु पाछिल सुद्धि करि कै, दरस रस रहु पागि ॥

कठिन माया है अपरबल, संग सब के लागि।
सूल तें कोइ बचे बिरले, गगन बैठे भागि॥

मन में जेहिं लागी जस भाई।
सो जानै तैसे अपने मन, का सों कहै गोहराई।
साँची प्रीति की रीति है ऐसी, राखत गुप्त छिपाई॥
झूँठे कहुँ सिखि लेत अहहिं पढ़ि, जहँ तहँ झगरा लाई।
लागे रहत सदा रस पागे, तजे अहहिं दुचिताई॥
ते मस्ताने तिनहीं जाने, तिनहिं को देइ जनाई।
राखत सीस चरन तें लागा, देखत सीस उठाई॥
जगजीवन सतगुरु की मूरति, सूरति रहै मिलाई॥

सत्त नाम बिना कहौ, कैसे निस्तरि हौ॥
कठिन अहै मायाजार, जा को नहिं वार पार,
कहौ काह करिहौ॥
हो सचेत चौंकि जागु, ताहि त्यागि भजन लागु,
अंत भरम परि हौ॥
डारहि जमदूत फाँसि, आइहिं नहिं रोइ हाँसि,
कौन धीर धरिहौ।
लागहि नहिं कोइ गोहारि, लेइहि नहिं कोइ उबारि,
मनहिं रोइ रहिहौ॥
भगनी सुत नारि भाइ, मातु पितु सखा सहाइ,
तिनहिं कहा कहिहौ॥
काहुक नहिं कोऊ जगत, मनहिं अपने जानु गत,
जीवत मरि जाहु दीन अंतर माँ रहिहौ॥
सिद्ध साध जोगि जती, जाइहि मरि सब कोई,
रसना सतनाम गहि रहिहौ।
जगजीवनदास रहै, बैठे सतगुरु के पास,
चरन सीस धरि रहिहौ॥

मन तन खाक करि कै जानु ।
नीच तें ह्वै नीच तेहि तें, नीच आपुहि मानु ॥
त्याग मैं तैं दीन ह्वै रहु, तजहु गर्ब गुमान।
देतु हौं उपदेस याहै, निरखु सो निर्बान ॥
कर्म धागा लाय बाँधा, हिंदु मुसलमान ।
खैंचि लीन्ह्यो तोरि धागा, बिरल कोई बिलगान ॥
खाक है सब खाक होइहि, समुझि आपन ज्ञान ।
सबद सत कहि प्रगट भाखौं, रहहि नाम निदान ॥
काल को डर नाहिं तिन्ह काँ, चौथ रहि चौगान ।
जगजीवन दास सतगुरु के, चरन रहि लपटान ॥

जो कोई घरहि बैठा रहै ।
पाँच संगत करि पचीसौ, सबद अनहद लहै ॥
दीन सीतल लीन मारग, सहज बाहनि बहै ।
कुमति कर्म कठोर काठहिं, नाम पावक दहै ॥
मारि मैं तैं लाइ डोरी, पवन थाम्हे रहै ।
चित्त करतँह सुमति साधू, सुरति माला गहै ॥
राति दिन छिन नाहि छूटै, भक्त सोई अहै ।
जगजीवन कोई संत बिरला, सबद की गति कहै ॥

महिं ते करि न बंदगी जाइ ।
सुद्धि तुमहीं बुद्धि तुमहीं, तुमहिं देत लखाइ ॥
केतनि हौं गनती में केती, कहि न सकौं बनाइ ।
चहे चरन लगाइ राखी, चाहिये बिसराइ ॥
देवता मुनि जती सुर सब, रहे तारी लाइ ।
पढ़ें चारिउ बेद ब्रह्मा, गाइ गाइ सुनाइ ॥
भस्म अंग लगाइ संकर, रहे जोति मिलाइ ।
कौन जाने गति तुम्हारी, रहे जहँ जहँ छाइ ॥
जानिये जन आपना मोहि, कबहुँ ना बिसराइ ।
जगजीवन पर करहु दाया, तबहिं भक्ति कहाइ ॥

अब मोहिं जानु आपन दास ॥
सीस चरन में रहे लागी, और करौ न आस।
दियो मोहि उपदेस तुमहीं, आइ तुम्हरे पास ॥
लियो ढिग बैठाइ के जग, जानि सबै निरास।
भला है अस्थान अम्मर, जोति है परगास ॥
करौं बिनती बहुत बिधि ते, दीजिये बिस्वास।
गति तुम्हारी कौन जाने, जगजीवन है दास ॥

बिनती लेहु इतनी मानि।
कहौ का कहि जात नाहीं, कवन कहौं केतानि ॥
कियो जबहीं दया तुमहीं, लियो संतन छानि।
रूप नीक लखाय दीन्ह्यौ, होत लाभ न हानि ॥
रहत लागे सदा आगे, सब्द कहत बखानि।
लागि गा सो पागि गा, पुनि गगन चढ़ि ठहरानि ॥
निरमल जोति निहारि निरखत, होत अनहद बानि।
जगजीवन गुरु की भई दाया, लियो मन महँ छानि ॥

अब मैं करौं कौन बयान।
चहो पल में करहु सोई, होय सो परमान ॥
सहस जिभ्या सेस बरनत, कहत वेद पुरान।
मोहि जैसी करहु दाया, करहु तैसि बखान ॥
संतन कांह सिखाइ लीन्ह्यो कहत सोई ज्ञान।
लागि पागि के रहै अंतर, मस्त रहत निरबान ॥
रहे मिल तुम्ह नहीं न्यारे, कबहुँ नहि बिलगान ॥
जगजीवन धरि सीस चरनन, नहीं भावै आन ॥

अब मैं कहौं का कछु ज्ञान।
बुद्धि हीनं सुद्धि हीनं, हौं अजान हैवान ॥
ब्रह्म सेस महेस सुमिरत, गहै अंतर ध्यान।
संत तंते रहत लागे, कहत ग्रंथ पुरान ॥

जोति एकै अहै निरमल, करै सबै बयान।
जहाँ जैसे भाव आहै, भयो तस परमान ॥
करौ दाया जान आपन, नहीं जानहुँ आन।
जगजीवनदास सत्य समरथ, चरन रहु लिपटान ॥

अब सुन लीजै इतनी हमारी।
लागी रहै प्रीति निसि बासर, दास को अपने नाहिं बिसारी ॥
जो मैं चहौं कहि कहं लौं सुनावों, औगुन कर्म बहुत अधिकारी।
सरन चरन की राखि आपनी, यहु कछु मन में नाहिं बिचारी ॥
काया यहि कर्महि की आहै, आपु ते नाहीं जात सँवारी।
भवसागर हित जानि बूड़ि जग, जेहिं जान्यो तेहिं लियो उबारी ॥
लीजै राखि भाखि कहौं तुम ते, केतिक बात लियो अनगन तारी।
जगजीवन के साईं समरथ, अपने निकट ते कबहुँ न टारी ॥

तुम सों मन लागो है मोरा।
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा ॥
सत की सेज बिछाय सूति रहि, सुख आनंद घनेरा।
करता रहता तुमहीं आहहु, करौं मैं कौन निहोरा ॥
रह्यो अजान अब जानि परयो है, जब चितयो एक कोरा।
अब निर्वाह किये बनि आइहि, लाय प्रीति नहिं तोरिय डोरा ॥
आवागमन निवारहु साईं, आदि अंत का आहिउ चोरा।
जगजीवन बिनती करि माँगै, देखत दरस सदा रहौं तोरा ॥

साईं मोहिं ते सुमिर न जाई।
पाँच अपरबल जोर अहैं एइ, तन ते कछु न बिसाई ॥
निसि बासर कल देहि नहीं एइ, मोहिं औरै राह लगाई।
जो मैं चहौं गहौं तुव चरना, इन छिन छिन भरमाई ॥
साथ सहेली लिये पचीसों, अपन अपन प्रभुताई।
जो मन आवै सोई ठानै, हठ हटकि देहिं भटकाई ॥
महल माँ टहल करै नहिं पावा, केहि बिधि आवहुँ धाई।

ऊँचे चढ़त आनि के रोकै, मानहिं नहीं दुहाई ॥
अब करु दाया जानि आपना, बिनय कै कहउं सुनाई ।
जगजीवन कै इतनी बिनती, तुम सब लेहु बनाई ॥

हम तें चूकि परत बहुतेरी ।
मैं तौ दास अहौं चरनन का, हम हूँ तन हरि हेरी ॥
बाल ज्ञान प्रभु अहै हमारा, झूंठ साँच बहुतेरी ।
सो औगुन गुन का कहौं तुम तें, भौसागर तें निबेरी ॥
भव तें भागि आयौं तुव सरने, कहत अहौं अस टेरी ।
जगजीवन की बिनती सुनिये, राखौं पत जन केरी ॥

बिनती सुनिये कृपा निधान ।
जानत अहौं जनावत तुमहीं, का करि सकौं बयान ॥
खात पियत जो डोलत बोलत, और न दूसर आन ।
ब्यापि रह्यो कहुँ चेत सरन करि, काहू भरम भुलान ॥
माया प्रबल अंत कछु नाहीं, सो मन समुझि डरान ।
अब तो सरन और ना जानौं करिहौं सो परमान ॥
सुद्धि बुद्धि कछु नाहीं मोरे, बालक जैसे अजान ।
मात सुतहि प्रतिपाल करत है, राखत हित करि प्रान ॥
मैं केतानि कवनि गिनती महँ, गावत बेद पुरान ।
जगजीवन का आपन जानहु, चरन रहे लिपटान ॥

साईं मैं तुम्हरी बलिहारी ।
कहौं काह कहि आवत नाहीं, मन तन तुम पर वारी ॥
देखत अहौं खरो ताम्रोवर, झलकै जोति तुम्हारी ।
केहु भरमाय देत माया महँ, केहु करत हितकारी ॥
देखत अहहूँ खेलत सब महं, को करि सकै बिचारी ।
करता हरता तुमहीं आहौं, अजब बनी फुलवारी ॥
दासन दास कै मोहिं जानिये, जानत अहौ हमारी ।
जगजीवन दियो सीस चरन तर, कबहूँ नाहिं बिसारी ॥

अब मैं कासों कहौं सुनाई ।
केहू घट की छापी नाहीं, जोति रही सब छाई ॥
तुम ही ब्रह्मा तुमही बिस्नू, सम्भू तुमही कहाई ।
सक्ती सेस गनेस तुमहीं हौ, दूजा नहिं कहि जाई ॥
बासा सब महं अहै तुम्हारो, नहीं कहूँ बहराई ।
जानि ऐसी परत मोहिं का, चरन सरन मह आई ॥
दुक्ख दे फिर दुक्ख मेटत, सुक्ख देत अधिकाई ।
दास आपन जानौ जिनका, तिन के रहौ सहाई ॥
तुम ही करता तुम ही हरता, सृष्टी तुमहिं बनाई ।
जगजीवन कै सत्तगुरु तुम, कौन कहै गोहराई ॥

नैना चरनन राखहूँ लाय ।
केती रूप अनूपम आहै, देऊं सब बिसराय ॥
राति दिना औ सोवत जागत, मोहीं इहै सोहाय ।
नहीं पल पल तजौं कबहूँ, अनत नाहीं जाय ।
मोरि बस कछु नाहिं है, जब देत तुमहिं बहाय ।
चहत खैंचि कै ऐंचि राखत, रहत हौं ठहराय ॥
दियो नाथ सनाथ करि अब, कहत अहौं सुनाय ।
जगजीवन के सतगुरू तुम, सदा रहहु सहाय ॥

चेतावनी

अरे मन देहु तजि मतवारि ।
जे जे आये जगत महं एहि, गये ते ते हारि ॥
नहीं सुमिरयौ नाम कां, सब गयो काम बिगारि ।
आपु कां जिन बड़ा जान्यो, काल खायो मारि ॥
जानि आपुहिं छोट जग, रहि रहौ डोरि सँभारि ।
बैठि कै चौगान निरखहु, रूप छबि अनुहारि ॥
रहौ थिर सतसंग बासी, देहु सकल बिसारि ।
जगजीवन सतगुरु कृपा करि कै, लेहैं सबै संवारि ॥

अरे मन समुझ करु पहिचान ।
को तैं अहसि कहां ते आयसि, काहे मर्म भुलान ॥
सुधि सँभारि बिचार करिकै, बूझु पाछिल ज्ञान ।
नाचु एहि दुइ चारि दिन का, अचल नहिं अस्थान ॥
लोक गढ़ एहु कोट काया, कठिन माया बान ।
लाग सब कैं बचे कोउ नहिं, हरयो सब का ध्यान ॥
खबरदार बेखबर हो नहिं ओट नाम निर्वान ।
जगजीवन सतगुरु राखि लेहैं, चरन रहु लिपटान ॥

मन तैं काहे का करत गुमान ।
रहहु अधीन नाम वह सुमिरहु, तोहिं सिखावहुँ ज्ञान ॥
आये जे जे फूलि भूलि गे, फिर पाछे पछितान ।
फिरि तो कोई काम न आवा, ह्वैगा जबै चलान ॥
जो आवा सो खाकहिं मिलिगा, उड़ि उड़ि खेह उड़ान ।
बृथा गयो आय जग जनमें, जो पै नाहीं जान ॥
सुद्धि संभारि संवारि लेहु करि, अधरम बरहु अज्ञान ।
जगजीवन गुरु चरन गहे रहु, निरगुन तकु निरबान ॥

अरे मन देहु सबै बिसराय ।
दीन ह्वै लवलीन करि कै नाम रहु लौ लाय ॥
नाम अमृत जपहु रसना गुप्त अंतर पाय ।
मैल छूटि कै होय निरमल सुद्धि पाछिल आय ॥
निर्गुन निहारि निरखहु अनत नाहीं जाय ।
सीस दुइ कर परहु चरनन छूटि नाहीं जाय ॥
सदा रहहु सचेत हेत लगाइ नहिं बिसराय ।
जगजीवन परकास मूरति सूरिति सुरति मिलाय ॥

दुनिया जानि बूझि बौरानी ।
झूठै कहै कपट चतुराई, मनहिं न आनहिं कानी ॥
नहिं डरपत है सत्तनाम कहं, ऐसे हहिं अभिमानी ।
है बिबाद निंदा कहि भाषहिं, तेही पाप ते आगे हानी ॥

जानत हैं मन मानत नाहीं, बड़े कहावत ज्ञानी।
नवहिं नहिं न साधु ते दीनता, बूड़ि मुए बिनु पानी ॥
मैं तै त्यागि अंतर माँ सुमिरै, परगट कहौं बखानी।
जगजीवन साधन ते नय चलु इहै सुक्ख के खानी ॥

मन तैं नाहिं इत उत धाव।
रटत रहु दुइ अच्छर अंतर, अपथ गैल न जाव ॥
उहां ते निर्बिंदु आयो, पिंड बाता गाँव।
चेति सुद्धि सँभार ले तैं, चूकु नाहीं दाव ॥
समुझि फिरि पछिताइ है, परि जोनि बहु डरुपाव।
सत्त सरसौं बाँटि उबटन, अंग अपने लाव ॥
छूटि मैलं होय निर्मल, नूर नीर अन्हाव।
जगजीवन निर्बान होवै, मिटैं सब दुखिताव ॥

जग की कही जात नहिं भाई।
नैनन देखि परखि करि लीन्ह्यो, तऊ न रह्यो चुपाई ॥
आहै साँच झूँठि कहि भाखहिं, झूठेह साँच गोहराई।
ताहि पास संताप परैंगे, भर्म परे ते जाई ॥
निंदा करत है जानि बूझि के, जहाँ तहाँ कुटिलाई।
जानत अहैं बनाउ ताहि का, देइहि ताहि सजाई ॥
मैं तौ सरन हौं ताहि चरन की, सूरत नहिं बिसराई।
जगजीवन हैं ताहि भरोसे, कहै सो तैसे जाई ॥

यहु मन गगन मंदिल राखु।
सबद की चढ़ देखु सीढ़ी, प्रेम रस तहँ चाखु ॥
रहहु दृढ़ करि मारि आसन, मंत्र अजपा भाखु।
मते गुरुमुख होहु तहवां, जगत आस न राखु ॥
पाँच बसि बसि बैठि रहि के, मानु कबहुँ न माखु।
ईस अहहि पचीस इनके, सदा मन हित बाखु ॥
देहु सब बिसराइ करि के, एही धंधे लागु।
जगजीवनदास निरखि करिके, नयन दर्शन मांगु ॥

चरनन में लागी रहिहौं री ॥
और रूप सब तिरथ बतावै, जल नहिं पैठ नहैहौं री।
रहिहौं बैठि नयन तें निरखत, अनत न कतहूँ जैहौं री ॥
तुमहीं तें मन लाइ रहिहौं, और नहीं मन अनिहौं री।
जगजीवन के सतगुरु समरथ, निर्मल नाम गहिं रहिहौं री ॥

चलु चढ़ी अटरिया धाई री।
महल न टहल करै नहिं पाई, करिये कौन उपाई री ॥
यहं तो बैरी बहुत हमारे, तिन तें कछु न बिसाई री।
पांच पचीस निस दिन संतावहि, राखा इन अरुझाई री ॥
साईं तो निकट बैठि सुख बिलसहि, जोतिहि जोति मिलाई री।
जगजीवन दास अपनाय लेहिं बे, नाहीं जीव डेराई री ॥

मन महं जाइ फकीरी करना।
रहै एकंत तंत में लागा, राग नित्य नहिं सुनना ॥
कथा चरचा पढ़े सुने नहिं, नाहिं बहुत बक बोलना।
ना थिर रहै जहां तहं धावै, यह मन अहै हिंडोलना ॥
मैं तैं गर्व गुमान विवादहिं, सबै दूर यह करना।
सीतल दीन रहै भरि अंतर, गहै नाम की सरना ॥
जल पषान की करै आस नहिं, आहै सकल भरमना।
जगजीवनदास निहारि निरखि के, गहि रहु गुरु की सरना ॥

इत उत आसा देहु त्यागि, सत्त सुकृत तें रहहु लागि।
मन तुम नाम रटहु रट लाई, रहु सचेत नहिं बिसरि जाई ॥
काया भीतर तीरथ कोटि, जानि परत नहिं मन की खोटि।
ठाढ़े बैठे पग चलाइ, तस पौढे चित अनत न जाइ ॥
रात दिवस धुनि छुटे नाहिं, ऐसे जपत रहहु मन माहिं।
गगन पवन गहिं करहु पयान, तहवां बैठि रहहु निर्बान ॥
गुरु के चरन गहहु लिपटाइ, निरखहु सूरति सीस उठाइ।
या है ब्यापि रहै सब माहिं, देखत न्यारा कतहूँ नाहिं ॥
जगजीवन कहि मथि पुरान, यहि तें सनमत और न आन ॥

भीखा साहिब

भीखादास का जन्म ज़िला आज़मगढ़ के खानपुर बोहना नाम के गाँव में हुआ था। इनका समय निश्चय रूप से नहीं ज्ञात है। कहते हैं कि ग़ाज़ीपुर ज़िले के भुरकुड़ा नामक गाँव में इनकी उपस्थिति में ही इनके गुरु गुलाल साहब की लिखी हुई एक हस्तलिखित पुस्तक मौजूद है। इसी ग्रंथ के अनुसार इसकी रचना सं० १७८८ से आरंभ होकर फागुन सुदी ५ बृहस्पतिवार सं० १७९२ में समाप्त हुई। इसी के आधार पर बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'भीखा साहब की बानी' के संपादक का अनुमान है कि भीखा साहब का समय सं० १७७० से १८२० के बीच में रहा होगा। गुलाल साहब लिखित उक्त ग्रंथ की प्रति अलभ्य है किन्तु उपर्युक्त संपादक महोदय का कथन है कि उन्हें दोनों ग्रंथों के मिलान करने पर बहुत से पद समान मिले। जो हो, यह अनुमान मात्र है, पर इतना कह सकते हैं कि यह तिथि भीखा के वास्तविक समय से बहुत भिन्न नहीं हो सकती।

इनकी जीवनी के संबंध में प्रसिद्ध है कि बाल्यावस्था में ही यह गुरु की खोज में काशी चले गए, पर वहाँ से निराश होकर लौट रहे थे कि रास्ते में इन्हें ग़ाज़ीपुर ज़िले के भुरकुड़ा ग्रामनिवासी महात्मा गुलाल जी का पता चला और इन्होंने वहाँ जाकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। गुलाल साहब की मृत्यु के बाद इन्हीं को उनकी गद्दी मिली और इसके बाद इन्होंने अपना सारा जीवन भुरकुड़ा में ही बिता दिया। १२ वर्ष की अवस्था में ये वहाँ गए थे और लगभग ५० वर्ष की अवस्था में वहीं इनका स्वर्गवास हुआ। भुरकुड़ा में इनके गुरु गुलाल साहिब और दादा गुरु बुल्ला साहिब की समाधि के बगल में ही इनकी समाधि भी मौजूद है।

अन्य संत-कवियों की भाँति इन्होंने भी अपना एक पंथ चलाया था और इनके बहुत से अनुयायी अब भी ग़ाज़ीपुर और बलिया ज़िलों में

मिलते हैं। इनके प्रधान अड्डे भुरकुड़ा और बलिया ज़िले के बड़ेगाँव में हैं। भुरकुड़े में अब भी विजयादशमी के दिन इनकी स्मृति में एक बड़ा भारी मेला होता है। बड़ेगाँव के महंत के पास भीखा साहब के गुरु-घराने का एक वंश-वृत्त है जिसकी नकल 'भीखा-साहब की बानी' में दी गई है। उसी की प्रतिलिपि हम नीचे दे रहे हैं :—

इनके कई ग्रंथों के नाम मिलते हैं जिनमें सबसे प्रसिद्ध 'राम-जहाज' है। प्रस्तुत संग्रह 'संतबानी-संग्रह' और 'भीखा साहब की बानी' की सहायता से किया गया है।

इनकी कविता बहुत स्पष्ट होती थी और उसमें प्रसाद-गुण का प्राधान्य कहा जा सकता है। विषय इनके वही सद्गुरु, शब्द-महिमा, नाम-महिमा तथा सृष्टितत्व के विवेचन आदि हैं, जिन्हें प्रायः सभी संत-कवियों ने अपनाया है।

गुरुदेव

मेरो हित सोइ जो गुरु ज्ञान सुनावै ।
दूजी दृष्टि दुष्ट सम लागै, मन उनमेख बढ़ावै ॥
आतम राम सूछम सरूप, केहि पटतर दै समभावै ।
सवद प्रकास बिनाहिं जोग बिधि, जगमग जोति जगावै ॥
धन्य भाग ता चरन रेनु ले, भीखा सीस चढ़ावै ॥

अनहद शब्द

धुनि बजत गगन महँ बीना, जँह आपु रास रस भीना ।
भेरी ढोल संख सहनाई, ताल मृदंग नवीना ॥
सुर जहँ बहुते मौज सहज उठि, परत है ताल प्रबीना ।
बाजत अनहद नाद गहागह, धुधुकि धुधुकि सुर झीना ॥
अँगुरी फिरत तार सातहुँ पर, लय निकसत भिन भीना ।
पाँच पचीस बजावत गावत, निर्त चारु छबि दीन्हा ॥
उघटत तननन थ्रितां थ्रितां, कोउ ताथेइ थेइ तत कीन्हा ।
बाजत ताल तरंग बहु, मानो जंत्री जंत्र कर लीन्हा ॥
सुनत सुनत जिव थकित भयो, मानो ह्वै गयो सवद अधीना ।
गावत मधुर चढ़ाय उतारत, रुनझुन रुनझुन धूना ॥
कटि किंकिनि पगु नूपुर की छबि, सुरति निरति लौलीना ।
आदि सवद ओंकार उठतु है, अटुट रहत सब दीना ॥
लागी लगन निरंतर प्रभु सों, भीखा जल मन मीना ॥

प्रेम

कहा कोउ प्रेम बिसाहन जाय ।
महँग बड़ा गथ काम न आवै, सिर के मोल विकाय ॥
तन मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सुहाय ।
तजि आपा आपुहिं ह्वै जीवै, निज अनन्य सुखदाय ॥
यह केवल साधन को मत है, ज्यों गूँगे गुड़ खाय ।
जानहि भले कहै सो कासों, दिल की दिलहिं रहाय ॥
बिनु पग नाच नैन बिनु देखै, बिन कर ताल बजाय ।

बिन सरवन धुनि सुनै बिबिध बिधि, बिन रसना गुन गाय ॥
निर्गुन में गुन क्योंकर कहियत, ब्यापकता समुदाय ।
जंह नाहीं तंह सब कुछ दिखियत, अंधरन की कठिनाय ॥
अजपा जाप अकथ की कथनी, अलख लखन किनपाय ।
भीखा अविगत की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय ॥

प्रीति की यह रीति बखानैं ।
कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन कमल कर ध्यानौ ॥
हो चेतन्य बिचारि तजो भ्रम, खाँड़ धूर जनि सानौ ।
जैसे चात्रिक स्वाँत बुंद बिनु, प्रान समरपन ठानौ ॥
भीखा जेहि तन राम भजन नहिं, काल रूप तेहि जानौ ।

बिनती

अस करिये साइब दाया ।
कृपा कटाच्छ होइ जेहितें प्रभु, छूटि जाय मन माया ॥
सोवत मोह निसा निसबासर, तुमहीं मोहिं जगाया ।
जनमत मरत अनेक बार, तुम सतगुरु होय लखाया ॥
भीखा केवल एक रूप हरि, ब्यापक त्रिभुवन राया ॥

मोहिं राखो जी अपनी सरन ।
अपरम्पार पार नहिं तेरो, काह कहौं का करन ॥
मन क्रम बचन आस इक तेरी, होउ जनम या मरन ।
अविरल भक्ति के कारन तुम पर, ह्वै बाम्हन देउं धरन ॥
जन भीखा अभिलाख इही, नहिं चहौं मुक्ति गति तरन ॥

प्रभु जी करहु अपनो चेर ।
मैं तो सदा जनम की रिनिया, लेहु लिखि मोहिं केर ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह यह, करत सबहिन जेर ।
सुर नर मुनि सब पचि पचि हारे, परे करम के फेर ॥
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक, ऐसे ऐसे ढेर ।
खोजत सहज समाधि लगाये, प्रभु को नाम न नेर ॥

अपरंपार अपार है साहिब, ह्वै अधीन तन हेर।
गुरु परताप साध की संगति, छूटे सो काल अहेर ॥
त्राहि त्राहि सरनागत आयो, प्रभु दरवो यहि बेर।
जन भीखा को उरिन कीजिये, अब कागद जिनि हेर ॥

साध महिमा

भजन ते उत्तम नाम फकीर।
छिमा सील संतोष सरल चित, दरदवंत पर पीर ॥
कोमल गदगद गिरा सुहावन, प्रेम सुधा रस छीर।
अनहद नाद सदा फल पायो, भोग खाँड घृत खीर ॥
ब्रह्म प्रकास को भेष बनायो, नाम मेखला चीर।
चमकत नूर जहूर जगामग, ढाँके सकल सरीर ॥
रहनि अचल इस्थिर कर आसन, ज्ञान बुद्धि मति धीर।
देखत आतम राम उघारे, ज्यों दरपन मधि हीर ॥
मोह नदी भ्रम भँवर कठिन है, पाप पुन्य दोउ तीर।
हरि जन सहजे उतरि गये ज्यों, सूखे ताल को झीर ॥
जग परपंच करम बहतो है, जैसे पवन रु नीर।
गुरु गम सबद समुद्रहिं जावे, परत भयो जल थीर ॥
केलि करत जिय लहरि पिया संग, मति बड़ गहिर गँभीर।
ताहि काहि पटतरो दीजिए, जिन तन मन दियो सीर ॥
मन मतंग मतवार बड़ो है, सब ऊपर बलबीर।
भीखा हीन मलीन ताहि को, छीन भयो जस जीर ॥

रेखता

करो बिचार निर्धार अवराधिये, सहज समाधि मन लाव भाई।
जब जक्त कि आस तें होहु नीरास, तब मोच्छ दरबार की खबर पाई।
न तो भर्म अरु कर्म बिच भोग भटकन लग्यो, जरा अरु मरन तन बृथा जाई।
भीखा मानै नहीं कोटि उपदेस सठ, थक्यो बेदान्त जुग चारि गाई ॥

उपदेश

मन तूँ राम से लौ लाव ।
त्यागि के परपंच माया, सकल जगहिं नचाव ॥
साच की तू चाल गहि ले, झूठ कपट बहाव ।
रहनि सों लौलीन ह्वै, गुरु ग्यान ध्यान जगाव ॥
जोग की यह सहज जुक्ति, बिचार कै ठहराव ।
प्रेम प्रीति सों लागि के घट, सहज हीं सुख पाव ॥
दृष्टि तें अदृष्ट देखो, सुरति निरति बसाव ।
आतमा निर्धार निर्भै, बानि अनुभव गाव ॥
अचल इस्थिर ब्रह्म सेवो, भाव चित अरुझाव ।
भीखा फिर नहिं कबहुँ पैहौ, बहुरि ऐसो दाव ॥

मन तुम राम नाम चित धारो ।
जो निज कर अपनी भल चाहो, ममता मोह बिसारो ॥
अंदर में परपंच बसायो, बाहर भेख सँवारो ।
बहु बिपरीति कपट चतुराई, बिन हरि भजन बिकारो ॥
जब तप मख करि बिधि बिधान, जततत उदबेग निवारो ।
बिन गुरु लच्छ सुदृष्टि न आवै, जन्म मरन दुख भारो ॥
ग्यान ध्यान उर करहु धरहु दृढ़ि, सब्द सरूप बिचारो ।
कह भीखा लवलीन रहो उत, इत मति सुरति उतारो ॥

जग के करम बहुत कठिनाई तातें भरमि भरमि जहंडाई ।
ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ़ करत लड़िकाई ॥
परमारथ तजि स्वारथ सेबहि, यह धौं कौन बड़ाई ।
बेद बेदांत को अर्थ बिचारहिं, बहु बिधि रुचि उपजाई ॥
माया मोह ग्रसित निस बासर, कौन बड़ो सुखदाई ।
लेहि बिसाहि काँच को सौदा, सोना नाम गँवाई ॥
अमृत तजि बिष अँचवन लागे, यह धौं कौन मिठाई ।
गुरु परताप साध की संगति, करहु न काहे भाई ॥
अंत समय जब काल गरसि है, कौन करौ चतुराई ।

मानुष जनम बहुरि नहिं पैहौ, बादि चला दिन जाई ॥
भीखा को मन कपट कुचाली, धरन धरै मुरखाई ॥

मन तुम लागहु सुद्ध सरूपे ।
तन मन धन न्यौछावरि वारो, बेगि तजो भव कूपे ॥
सतगुरु कृपा तहाँ लै लावो, जहाँ छाँह नहि धूपे ।
पइया करम ध्यान सों फटको, जोग जुक्ति करि सूपे ॥
निर्मल भयो ज्ञान उंजियारो गंग भयो लखि चूपे ।
भीखा दिब्य दृष्टि सों देखत सोंह बोलत मू पे ॥

समुझि गहो हरि नाम, मन ते समुझि गहो हरि नाम ।
दिन दस सुख यहि तन के कारन, लपटि रहो धन धाम ॥
देखु बिचारि जिया अपने, जत गुनना गुनन बेकाम ।
जोग जुक्ति अरु ज्ञान ध्यान तें, निकट सुलभ नहिं लाम ॥
इत उत की अब आसा तजि के, मिलि रहु आतम राम ।
भीखा दीन कहां लगि बरनै, धन्य घरी वहि जाम ॥

मनुवां नाम भजत सुख लीया ।
जन्म जन्म के उरझनि पुरझनि, समुझत करकत हीया ।
यह तो माया फांस कठिन है, का धन सुत बित तीया ॥
सत्त शब्द तन सागर माहीं, रतन अमोलक पीया ।
आपा तजै धँसै सो पावै, ले निकसै मरजीया ॥
सुरति निरति लौलीन भयो जब, दृष्टि रूप मिलि थीया ।
ज्ञान उदित कल्पद्रुम को तरु, जुक्ति जमावो बीया ॥
सतगुरु भये दयाल ततच्छिन, करना था सो कीया ।
कहै भीखा परकासी कहिये, पर अरु बाहर दीया ॥

कोउ लखि रूप सब्द सुनि आई ।
अविगत रूप अजायब बानी, ता छबि का कहि जाई ॥
यह तौ सब्द गगन घहरानो, दामिनि चमक समाई ।
वह तौ नाद अनाहद निसदिन, परखत अलख सोहाई ॥

यह तौ बादर उठत चहूँ दिसि, दिवसहिं सूर छिपाई ।
वह तौ सुन्न निरंतर धुधुकत, निज आतम दरसाई ॥
यह तौ झरतु है बूंद झराझर, गरजि गरजि झरलाई ।
वह तौ नूर जहूर बदन पर, हर दम तूर बजाई ॥
यह तौ चारि मास को पाहुन, कबहुं नाहिं थिरताई ।
वह तौ अचल अमर की जै जै, अनंत लोक जस आई ॥
सत गुरु कृपा उभै बर पायो, स्रवन दृष्टि सुखदाई ।
भीखा सो है जन्म सँघाती, आवहि जाहि न भाई ॥

चेतत बसंत मन चित चैतन्य । जोग जुगति गुरु ज्ञान धन्य ॥
उरध पधार्‌यो पवन घोर । दृष्टि पलान्यो पुरुब ओर ॥
उलटि गयो थकि मिटलि दाह । पच्छिम दिसि कै खुललि राह ॥
सुन्न मँडल में बैठु जाय । उदित उजल छबि सहज पाय ॥
जोति जगामग झरत नूर । ह्वां निसु दिन नौबति बजत तूर ॥
झलक झनक जिव एक होय । मत प्रान अपान को मिलन सोय ॥
रूह अलख नभ फूल्यो फूल । सोइ केवल आतम राम मूल ॥
देखत चकित अचर्ज आहि । जो वह सो यह कहौं काहि ॥
भीखा निज पहिचान लीन्ह । वह साबिक ब्रह्म सरूप चीन्ह ॥

मन में आनँद फाग उठो री ।
इँगला पिंगला तारा देवै, सुखमन गावत होरी ॥
बाजत अनहद डंक तहां धुनि, गगन में ताल परो री ।
सतसंगति चोवा अबीर करि, दृष्टि रूप लै घोरी ॥
गुरु गुलाल जी रंग चढ़ायो, भीखा नूर भरो री ।

आनँद उठत झकोरी फगुवा, आनँद उठत झकोरी ।
अनहद ताल पखावज बाजै, मनमत राग मरोरी ॥
काया नगर में होरी खेल्यो, उलटि गयो तेहिं खोरी ।
नैनन नूर रंग भरि उमग्यो, चुवत रहत निज ओरी ॥
गुरु गुलाल जी दाया कीन्हों, भीखा चरन लगो री ।

निरमल हरि को नाम सजीवन, धन सो जन जिन के उर फरेऊ ।
जस निरधन धन पाइ संचतु है, करि निग्रह किरपिनि मति धरेऊ ॥
जल बिनु मीन फनी मनि निरखत, एकौ घरी पलक नहिं टरेऊ ।
भीखा गूँग औ गुड़ को लेखा, पर कछु कहे बने ना परेऊ ॥

गये चारि सनकादि पिता लोक आदि धाम,
किये परनाम भाव भगति दृढ़ायऊ ।
पूँछ्यो हँसि प्रीति भाव माया ब्रह्म बिलगाव,
बिधि जग ब्यौहारी प्रति उत्तर न आयऊ ।
कियो बहुत समास भयो अरथ न भास,
हरि हरि सुमिरन ध्यान आरत सुनायऊ ।
प्रभु हँस तन लियो द्विज दरसन दियो,
भीखा अज सनकादि कर जोरि माथ नायऊ ॥

पाप औ पुन्न नर झुलत हींडोलना, ऊंच अरु नीच सब देह धारी ।
पाँच अरु तीनि पच्चीस के बस परो, राम को नाम सहजै बिसारी ।
महा कवलेस दुख वार अरु पार नहिं, मारि जमदूत दें त्रास भारी ।
मन तोहिं धिरकार धिरकार है तोहिं, धृग बिना हरि भजन जीवत भिखारी ॥
भयो अचेत नर चित्त चिन्ता लग्यो, काम अरु क्रोध मद लोभ राते ।
सकल परपंच में खूब फ़ाजिल हुआ, माया मद चाखि मन मगन माते ।
बढ्यो दीमाग मगरूर हय गज चढ़ा, कह्यो नहिं फौज तूमार जाते ।
भीखा यह ख्वाब की लहरि जग जानिये, जागि कर देखु सब झूँठ नाते ॥
दूजे वह अमल दस्तूर दिन दिन बढ़्यो, घटा अँधियार उँजियार भाया ।
अर्ध से उर्ध भरि जाय अजपा जप्यो, चाँद अरु सूर मिलि त्रिकुटि आया ।
झरत जहं नूर जहूर असमान लौं, रूह अफताब गुरु कीन्ह दाया ।
भीखा यह सत्त सो ध्यान परवान है, सुन्न धुनि जोति परकास छाया ॥
सकल बेकार की खानि यह देंहि है, मल दुर्गंध तेहि भरी माही ।
मन अरु पवन यह जोर दोनों बड़े, इन को जीत कै पार जाहीं ।
जाहि गुरु ज्ञान अनुमान अनुभव करे, भयो आपु आप मिलि नाम पाहीं ।
भीखा आधार आपार अद्वैत है, समुंद अरु बुंद कोइ और नाहीं ॥

जहां तक समुंद दरियाव जल कूप है, लहरि अरु बुंद को एक पानी।
एक सूबर्न को भयो गहना बहुत, देखु बीचार यह हेम खानी।
पिरथवी आदि घट रच्यो रचना बहुत, मिर्तिका एक खुद भूमि जानी।
भीखा इत आतमा रूप बहुतै भयो, बोलता ब्रह्म चीन्हें सो ज्ञानी ॥

सो हरि जन जो हरि गुन गैनो।
मन क्रम बचन तहां लै लावे, गुरु गोबिन्द को पैनो ॥
तापर होहिं दयाल महाप्रभु, जुक्ति बतावैं सैनो।
बूझि बिचारि समझि ठहरावत, तुरत भयो चित चैनो।
काम क्रोध मद लोभ पखेरू, टूटि जात तब डैनो।
आतम राम अभ्यास लखन करि, जब लेवे निज ऐनो ॥
ब्रह्म सरूप अनूप की सोभा, नहिं कहि आवत बैनो।
भीखा गुरु गुलाल सिर ऊपर, खुंदत है बिनु नैनो ॥

देखो प्रभु मन कर अजगूता।
राम को नाम सुधा सम छोड़त बिषया रस ले सूता ॥
जैसे प्रीति किसान खेत सों दारा धन औ पूता।
ऐसी गति जो प्रभु पद लावै सोई परम अवधूता ॥
सोई जोग जोगेसुर कहिये जा हिये हरि हरि हूता।
भीखा नीच ऊँच पद चाहत मिलै कवन करतूता ॥

मन मोर बड़ अवरेबिया।
हरि भजि सुख नहिं लेत, मन मोर बड़ अवरेबिया ॥
दिव्य दृष्टि नहिं रूप निरेखत, नूर देत बहु जेबिया।
सतगुरु खेत जोति लै बोवल, भीखा जम लियो हिसबिया ॥

मन अनुरागल हो सखिया।
नाहीं संगत औ सौ ठकठक, अलख कौन बिधि लखिया ॥
जन्म मरन अति कष्ट करम कहं, बहुत कहां लगि झँखिया।
बिनु हरि भजन को भेष लियो, कहा दिये तिलक सिर तखिया ॥
आतम राम सरूप जाने बिन, होहु दूध के मखिया।

सतगुरु सब्दहिं सांचि गहो, तजि झूँठ कपट मुख भखिया ॥
बिन मिलले सुनले देखले बिन, हिया करत सुर्ति अँखिया।
कृपा कटाच्छ करो जेहिं छिन भरि कोर तनिक इक अँखिया ॥
धन धन सो दिन पहर घरी पल जब नाम सुधा रस चखिया।
काल कराल जंजाल डरहिंगे, अबिनासी की धकिया ॥
जन भीखा पिया आपु भइल, उड़ि उड़ि गैलि भरम की रखिया ॥
राम नाम भजि ले मन भाई।
काहे कै रोस करहु घर ही में, एकै तुम हमरे पितु भाई ॥
देखहु सुमति संग के भायप, छिमा सील संतोष समाई।
एकै रहनि गहनि एकै मति ज्ञान विवेक विचार सदाई ॥
होहु परम पद के अधिकारी, संत सभा महं बहुत बड़ाई।
कुमति प्रपंच कुचाल सकल यह, तुम्हरी देखि बहुत मुसकाई ॥
अब तुम भजहु सहाय समेतो, पांच पचीस तीन समुदाई।
तुम अनादि सुत बड़े प्रतापी, छोट कर्म करि होहिं हंसाई ॥
तुम मोंहि कीन्ह हाल को गेंदो, इत उत यह भरमाई।
तेहिं दुख सुख को अंत कहे की, तन धरि धरि मोहिं बहुत निचाई ॥
अब अपनी उनमेख तजन की, सपथ करों दृढ़ मोहिं सोहाई।
जन भीखा कै कहा मानु अब, मन तोहिं राम के लाख दोहाई ॥
जान दे करौं मनुहरिया हो।
अनेक जतन करके समझाओ, मानत नाहिं गँवरिया हो।
करत करेरी नैन बैन संग, कैसे के उतरब दरिया हो ॥
या मन तें सुर नर मुनि थाके, नर बपुरा कित धरिया हो।
पार भइलौं पिव पीव पुकारत, कहत गुलाल भिखरिया हो ॥
हमरो मनुवां बड़ो अनारी, साहब निकट न करत चिन्हारी।
प्रानायाम न जुक्ति बिचारी, अजपा जाप न लावै तारी ॥
खोलै न भ्रम तें बज्र किवारी, निज सरूप नहिं देखि मुरारी।
प्रान अपान मिलन न सँवारी, गगन गवन नहिं सब्द उचारी ॥
सुन्न समाधि न चेत बिसारी, यह लालसा उर बड़ी हमारी ॥

सर्व दान गुरु दाता भारी, जाचक सिस्य सो लेत भिखारी ॥

सब भूला किधौं हमहिं भुलाने, सो न भुला जाके आतम ध्याने ।
सब घट ब्रह्म बोलता आही, दुनिया नाम कहौं मैं काही ॥
दुनिया लोक बेद मति थापे, हमरे गुरु गम अजपा जापे ।
घमासान भये सूर कहावे, हरिजन जे हरि रूप समावे ।
कहे भीखा क्यों नाहीं नाहीं, जब लगि साँच झूँठ तन माहीं ॥

रे मन ह्वै है कवन गति मेरी, मेरी समझ बूझ होत देरी ॥
यह संसार आये गति माया लागी धाये, रामनाम नहिं जान्यो मतिगति न निबेरी ।
भजन करारे आये कबहीं न साँचि गाये, करम कुटिल करे मति गइ तेरी ॥
भीखा चरनों में लीजै मन माया दूरि कीजै, बार बार मांगै इहै प्रीत लागे तेरी ॥

अधम मन राम नाम पद गहो, ताते यह तन धरि निरबहो ।
अलख न लखि जाय अजपा न जपि जाय, अनहद के हद नाहीं हो ।
कथनी अकथ कवनि विधि होवे, जहं नाही तहं ताही हो ॥
बिन मूल पेड़ फल रूप सोई, निज दृष्टि बिन देखी कही ॥
बिन अकार को रूह नूर हैं, अगिनि बिन भ्रम में दहो ॥
बोलत है आप माहीं आत्मा है हम नाहीं, अविगति की गति महो ॥
पूरन ब्रह्म सकल घट ब्यापक, आदि अंत भरि पूर रहो ॥
सतगुरु सत दियो सुरति निरति लियो, जीव मिलि पिय पहुँच हो ॥
जब भीखा अब कारन छोड़ो, तत्त पदारथ हाथ लहो ॥

उठ्यो दिल अनुमान हरि ध्यान ॥
भर्म करि भूल्यो आपु अपान । अब चीन्हो निज पति भगवान ॥
मन बच क्रम दृढ़ मत परवान । वारो प्रभु पर तन मन प्रान ॥
सब्द प्रकाश दियो गुरु दान । देखत सुनत नैन बिनु कान ॥
जा को सुख सोई जानत जान । हरि रस मधुर कियो जिन पान ॥
निर्गुन ब्रह्म रूप निर्बान । भीखा जल ओला लग तान ॥

मन चाहत दृष्टि निहारी।
सुरति निरति अंतर लै जावं सरूप अनुहारी॥
जोग जुक्ति मिलि परखन लागी पूरन ब्रह्म बिचारी।
पुलकि पुलकि आपा महँ चीन्हत देखत छवि उँजियारी॥
सुखमन के घर आसन मांडी इँगल पिंगलहिं सुढारी।
सुन्न निरंतर साहब आये सब घट सब तें न्यारी॥
प्रेम प्रीति तन मन धन अरपो प्रभु जी की बलिहारी।
गुरु गुलाल के चरन कमल रज लावत माथ भिखारी॥

चरनदास

चरनदास का जन्म मेवात (अलवर) प्रांत के डेहरा नामक गाँव में भादों सुदी तृतीया, मंगलवार, सं० १७६० में हुआ था। इनके पिता का नाम मुरलीधर जी और माता का नाम कुंजी देवी था। यह लोग प्रसिद्ध ढूसर (धूसड़) कुलोत्पन्न थे। इस कुल के संबंध में थोड़ा-सा मतभेद है। कुछ ढूसर अपने को क्षत्रिय कहते हैं, पर विशेष कर यह कलवार माने जाते हैं। इनके पिता का स्वर्गवास इनके शैशव-काल में ही हो गया था। कहा जाता है कि यह भी एक पहुँचे हुए फ़क़ीर थे और इनकी मृत्यु के बारे में कहा जाता है कि इसे किसी ने देखा नहीं। एक दिन भजन के लिये जंगल में जाकर यह यकायक अदृश्य हो गए थे। पिता की मृत्यु के बाद ही चरनदास का मन भी सब ओर से विरक्त-सा होकर भगवद्भक्ति में ही रम गया। कहते हैं कि १९ वर्ष की अवस्था में जंगल में घूमते हुए इन्हें शुकदेव जी मिले और उन्होंने ही इन्हें दीक्षित किया और उन्होंने ही इनका नाम चरनदास रक्खा, पहले इनका नाम रणजीत था। इन सब बातों का संक्षिप्त विवरण चरनदास जी ने स्वयं ही अपने निम्नलिखित पद में दे दिया है।

डेहरे मेरो जनम नाम रणजीत बखानो।
मुरली को सुत जान जात ढूसर पहिचानो॥
बाल अवस्था माँहि बहुरि दिल्ली में आयो।
रमत मिले शुकदेव नाम चरणदास धरायो॥
जोग जुगति कर भक्ति कर ब्रह्मज्ञान दृढ़ कर गह्यो।
आतम तन विचार के अजपा तें तनमन रह्यो॥

गुरु से दीक्षित होने के बाद यह दिल्ली में स्थायी रूप से रहने लगे और वहीं ७९ वर्ष की अवस्था पाकर सं० १८३९ में सुरधाम सिधारे। इनके ५२ प्रधान शिष्य थे और उन की गद्दियाँ अब तक चल रही हैं।

सहजोबाई और दयाबाई नाम की इनकी दो शिष्याएं भी प्रसिद्ध हैं। ये दोनों ही बहुत पहुँची हुई साध्वी कवि हो गई हैं। इन्होंने अधिक भ्रमण और सत्संग आदि नहीं किया था और न इनकी शिक्षा ही बहुत विस्तृत थी। इन के विचार कबीर के विचारों से मिलते-जुलते थे। ढोंगियों, पाखंडियों तथा भिन्न-भिन्न मतों की प्रायः कटु आलोचना इन्होंने भी की है। वेद, पुराण तथा स्मृति आदि की निःसारता पर इन्होंने भी कटाक्ष करना उचित समझा है।

नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज' (प्रथम भाग पृ० ५८६-७) में इन के ११ ग्रंथों की सूची दी हुई है। परंतु हमारे सामने केवल बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित 'चरनदास जी की बानी' नामक संग्रह ह। इस में लगभग ६०० पद्य हैं और इन्हीं में से प्रस्तुत संग्रह तैयार किया गया है।

अनहद शब्द

जब से अनहद घोर सुनी।
इंद्री थकित गलित मन हूवा, आसा सकल भुनी॥
घूमत नैन सिथिल भइ काया, अमल जु सुरत सनी।
रोम रोम आनंद उपज करि, आलस सहज भनी॥
मतवारे ज्यों सबद समाये, अंतर भींज कनी।
करम भरम के बंधन छूटे, दुबिधा बिपति हनी॥
आपा बिसरि जक्त कूं बिसरो, कित रहिं पाँच जनी।
लोक भोग सुधि रही न कोई, भूले ज्ञान गुनी॥
हो तहँ लीन चरनहीं दासा, कहै सुकदेव मुनी।
ऐसा ध्यान भाग सूँ पैये, चढ़ि रहै सिखर अनी॥

चितावनी

कछु मन तुम सुधि राखौ वा दिन की।
जा दिन तेरी देह छुटैगी, ठौर बसौगे बन की॥
जिन के संग बहुत सुख कीन्हें, मुख ढकि ह्वैहैं न्यारे।
जम का त्रास होय बहु भांती, कौन छुटावन हारे॥

देहरी लौं तेरी नारि चलैगी, बड़ी पौरि लौं माई।
मरघट लौं सब बीर भतीजे, हंस अकेलो जाई॥
द्रव्य गड़े अरु महल खड़े ही, पूत रहैं घर माहीं।
जिन के काज पचे दिन राती, सो सँग चालत नाहीं॥
देव पितर तेरे काम न आवैं, जिन की सेवा लावै।
चरनदास सुकदेव कहत है, हरि बिन मुक्ति न पावै॥

अरे नर हरि का हेत न जाना।
उपजाया सुमिरन के काजे, तैं कछु औरै ठाना॥
गर्भ माहिं जिन रच्छा कीन्हीं, ह्वाँ खाने कूँ दीन्हा।
जठर अगिन सों राखि लियो है, अंग सँपूरन कीन्हा॥
बाहर आय बहुत सुधि लीन्हीं, दसनबिन पय प्यायो।
दांत भये भोजन बहु भांती, हित सों तोहिं खिलायो॥
और दिये सुख नाना बिधि के, समुझि देखु मन माहीं।
भूलो फिरत महा गर्बायो, तू कछु जानत नाहीं॥
तुव कारन सब कुछ प्रभु कीन्हो, तू कीन्हा निज काजा।
जग ब्यौहार पगो ही बोलै, तोहि न आवै लाजा॥
अजहूँ चेत उलट हरि सौंही, जन्म सुफल करु भाई।
चरनदास सुकदेव कहैं यों, सुमिरन है सुखदाई॥

अपना हरि बिन और न कोई।
मातु पिता सुत बंधु कुटुंब सब, स्वारथ ही के होई॥
या काया कूँ भोग बहुत दै, मरदन करि करि धोई।
सो भी छूटत नेक तनिक सी, संग न चाली वोई॥
घर की नारि बहुत ही प्यारी, तिन में नाहीं दोई।
जीवत कहती साथ चलूँगी, डरपन लागी सोई॥
जो कहिये यह द्रव्य आपनी, जिन उज्जल मति खोई।
आवत कष्ट रखत रखवारी, चलत प्रान लै जोई॥
या जग में कोइ हितू न दीखै, मैं समझाऊँ तोई॥
चरनदास सुकदेव कहैं यों, सुनि लीजै नर लोई।

बिरह

हमारो नैना दरस पियासा हो।
तन गयो सूखि हाय हिये बाढ़ी, जीवत हूँ वोहि आसा हो।
बिछुरन थारो मरन हमारो, मुख में चलै न ग्रासा हो॥
नींद न आवै रैनि बिहावै, तारे गिनत अकासा हो।
भये कठोर दरस नहिं जाने, तुम कूँ नेक न साँसा हो॥
हमरी गति दिन दिन औरे ही, बिरह बियोग उदासा हो।
सुकदेव प्यारे रहु मत न्यारे, आनि करो उर बासा हो॥
रनजीता अपनो करि जानी, निज करि चरनन दासा हो।

प्रेम

गुरु हमरे प्रेम पियायो हो।
ता दिन तें पलटो भयो, कुल गोत नसायो हो॥
अमल चढ़ो गगनैं लगो, अनहद मन छायो हो।
तेज पुंज की सेज पै, प्रीतम गल लायो हो॥
गये दिवाने देसड़े, आनँद दरसायो हो।
सब किरिया सहजै छुटी, तप नेम भुलायो हो॥
त्रैगुन तें ऊपर रहूँ, सुकदेव बसायो हो।
चरनदास दिन रैन नहिं, तुरिया पद पायो हो॥

विनती

पतित उधारन बिरद तुम्हारो।
जो यह बात साँच है हरि जू, तौ तुम हमकूँ पार उतारो॥
बालपने औ तरुन अवस्था, और बुढ़ापे माहीं।
हम से भई सभी तुम जानौ, तुम से नेक छिपानी नाहीं॥
अनगिन पाप भये मनमाने, नखसिख औगुन धारी।
हिरिफिरि कै तुम सरनै आयौ, अब तुमको है लाज हमारी॥
सुभ करमन को मारग छूटो, आलस निद्रा घेरो।
एकहिं बात भली बनि आई, जग में कहायो तेरो चेरो॥

दीन दयाल कृपाल बिसंभर, स्त्री सुकदेव गुसाईं ।
जैसे और पतित घन तारे, चरनदास की गहियो बाहीं ॥

राखो जी लाज गरीब निवाज ।
तुम बिन हमरे कौन सँवारे, सबही बिगरे काज ॥
भक्त बछल हरि नाम कहावो, पतित उधारन हार ।
करो मनोरथ पूरन जन को, सीतल दृष्टि निहार ॥
तुम जहाज में काग तिहारो, तुम तज अंत न जाऊँ ।
जो तुम हरिजू मारि निकासो, और ठौर नहिं पाऊँ ॥
चरनदास प्रभु सरन तिहारी, जानत सब संसार ।
मेरी हँसी सो हँसी तुम्हारी, तुम हू देखु विचार ॥

करो नर हरि भक्तन को संग ॥
दुख बिसरे सुख होय घनेरो तन मन फाटे अंग ॥
ह्वै निःकाम मिलो संतन सूं नाम पदारथ मंग ।
जेहि पाये सब पातक नासैं उपजै ज्ञान तरंग ॥
जो वे दया करैं तेरे पर प्रेम पिलावैं भंग ।
जाके अमल दरस हो हरि को नैनन आवै रंग ॥
उनके चरन सरन ही लागौ सेवा करौ उमंग ।
चरनदास तिनके पग परसन आस करत हैं गंग ॥

राग बिहागरा

सुधि बुधि सब गई खोय री मैं इस्क दीवानी ।
तलफत हूँ दिन रैन ज्यों मछली बिन पानी ॥
बिन देखे मोहिं कल न परत है देखत आँख सिरानी ।
सुधि आये हिय में दव लागै नैनन बरखत पानी ॥
जैसे चकोर रटत चंदा को जैसे पपिहा स्वाती ।
ऐसे हम तलफत पिय दरसन बिरह बिथा यहि भाँती ॥
जब ते मीत बिछोहा हूवा तब ते कछु न सुहानी ।
अंग अंग अकुलात सखी री रोम रोम मुरझानी ॥

बिन मनमोहन भवन अँधेरो भरि भरि आवै छाती।
चरनदास सुकदेव मिलावो नैन भये मोहि वाती॥

राग सोरठा

अँखिया गुरु दरसन की प्यासी।
इक टक लागी पंथ निहारूं तन सूँ भई उदासी॥
रैन दिना मोहिं चैन नहीं है चिंता अधिक सतावै।
तलफत रहूँ कल्पना भारी निःचल बुधि नहि आवै॥
तन गयो सूख हूक अति लागै हिरदै पावक वाढ़ी।
खिन में लेटी खिन में बैठी घर अँगना खिन ठाढ़ी॥
भीतर बाहर संग सहेली बातन ही समझावैं।
चरनदास सुकदेव पियारे नैनन ना दरसावैं॥

अरे नर परनारी मत तक रे।
जिन जिन ओर तकी डायन की बहुतन कूं गइ भखरे॥
दूध आक को पात कठैया झाल अगिन की जान।
सिंह मुछारे विष कारे को वैसे ताहि पिछान॥
खानि नरक की अति दुखदाई चौरासी भरमावै।
जनम जनम कूँ दाग लगावै हरि गुरु तुरत छुटावै॥
जग में फिर फिरि महिमा खोवै राखै तन मन मैला।
चरनदास सुकदेव चितावैं सुमिरौं राम सुहेला॥

आसावरी

सतगुरु निज पुर धाम वसाये।
जित के गये अमर ह्वै बैठे भवजल बहुरि न आये॥
जोगी जोग जुक्ति करि हारे ध्यानी ध्यान लगावै।
हरिजन गुरु की दया विना यो दृष्टि नहीं दरसावै॥
पंडित मुंडित चुंडित ढूंढै, पढ़ि सुनि बेद पुरानै।
जासूं वै सब पायो चाहैं सो तौ नेति बखानै॥
जंगम जती तपी संन्यासी सब हीं वा दिसि धावैं।
सुरति निरति की मन जहँ नाहीं वै कहि कैसे पावैं॥

देस अटपटा बेगम नगरी निगुरे राह न पाया।
चरनदास सुकदेव गुरू ने किरपा करि पहुंचाया॥

नट व बिलावल

सो नैना मोरे तुरिया तत पद अटके।
सुरति निरति की गम नहिं सजनी जहां मिलन को लटके॥
भूलो जगत बकत कछु औरै बेद पुरानन ठटके।
प्रीति रीति की सार न जानै डोलत भटके भटके॥
किरिया कर्म भर्म उरझे रे ये माया के झटके।
ज्ञान ध्यान दोउ पहुँचत नाहीं राम रहीमा फटके॥
जग कुल-रीति लोक-मर्यादा मानत नाहीं हटके।
चरनदास सुकदेव दया सूँ त्रैगुन तजि के सटके॥

राग मलार

सतगुरु भौसागर डर भारी।
काम क्रोध मद लोभ भँवर जित लरजत नाव हमारी॥
तिस्ना लहर उठत दिन राती लागत अति झकझोरा।
ममता पवन अधिक डरपावै काँपत है मन मोरा॥
और महा डर नाना बिधि के छिन छिन में दुख पाऊँ।
अंतरजामी बिनती सुनिये यह मैं अरज सुनाऊँ॥
गुरु सुकदेव सहाय करो अब धीरज रहा न कोई।
चरनदास को पार उतारो सरन तुम्हारी सोई॥

राग केदारा

अब की तारि देव बलबीर।
चूक मो सूँ परी भारी कुबुधि के सँग सीर॥
भौ सागर को धार तीच्छन महा गंधीलो नीर।
काम क्रोध मद लोभ भँवर में चित न धरत अब धीर॥
मच्छ जहँ बलबंत पाँचौ थाह गहिर गँभीर।
मोह पवन झकोर दारुन दूर पै लव तीर॥

नाव तौ मँझधार भरमी हिये बाढ़ा पीर।
चरनदास कोउ नाहिं संगी तुम बिना हरि हीर॥

राग बिलावल

प्रभु जू सरन तिहारी आयो।
जो कोइ सरन तिहारी नाहीं भरम भरम दुख पायो॥
औरन के मन देवी देवा मेरे मन तुहि भायो।
जब सों सुरति सम्हारी जग में और न सीस नवायो॥
नरपति सुरपति आस तुम्हारी यह सुनि के मैं धायो।
तीरथ बरत सकल फल त्यागयौ चरन कमल चित लायो॥
नारद मुनि अरु सिव ब्रह्मादिक तेरो ध्यान लगायो।
आदि अनादि जुगादि तेरो जस बेद पुरानन गायो॥
अब क्यों न बाँह गहो हरि मेरी तुम काहे बिसरायो।
चरनदास कहैं करता तूही गुरु सुकदेव वतायो॥

राग काफी

तुव गुन करूं बखान यह मोरि बुद्धि कहाँ है।
चतुर मुखी ब्रह्मा गुन गावैं तिनहुँ न पायौं जान॥
गुन गावत संकर जब हारे करने लागे ध्यान।
गुन अपार कछु पार न पायो सनकादिक कथि ज्ञान॥
गुन गावत नारद मुनि थाके सहस मुखन सूं सेस।
लीला को कछु वार न पायो ना परमान न भेष॥
सक्ति घनी अनगिनित तुम्हारी बहुत रूप बहु नावँ।
जबहिं बिचारूं हिये में हारूं अचरज हेरि हिरावँ॥
अति अथाह कछु थाह न पाऊँ सोच अचक रहि जावँ।
गुरु सुकदेव थके रनजीता मैं कहु कौन कहावँ॥

राग गौरी

अरे नर क्या भूतन की सेवा॥
दृष्टि न आवै मुख नहिं बोलै ना लेवा ना देवा॥

जेहिं कारन घी जोति जलावै बहु पकवान बनावै।
सो खर्चै तू अधिक चाव सूं वह सुपने नहि खावै ॥
राति जगावैं भोपा गावैं झूटैं मूंड हिलावैं।
कुटुंब सहित तोहिं पैर पड़ावैं मिथ्या बचन सुनावैं ॥
ताहि भरोसे जन्म गँवावै जीवत मरत न साथा।
बड़ भागन नर देही पाई खोवै अपने हाथा ॥
चारि बरन में मैली बुधि का ऊँच नीच किन होई।
जो कोइ झूठी आसा राखै अगत जायगा सोई ॥
तातें सत बिस्वास टेक गहि भक्ति करो हरि केरी।
चरनदास सुकदेव कहत हैं होय मुक्ति गति तेरी ॥

राग सोरठा

साधो भरमा यह संसारा।
गति मति लोक बड़ाई उरझे कैसे हो छुटकारा।
मर्म पड़े नाना बिधि सेती तीरथ बर्त अचारा ॥
देह कर्म अभिमानी भूले छूंछ पकरि तत डारा।
जोगी जोग जुक्ति करि हारे पंडित बेद पुराना ॥
षट दरसन पग आप पुजावैं पहिरि पहिरि रंग बाना।
जानत नाहिं आप हमको हैं को है वह भगवाना ॥
को यह जगत कौन गति लागै सँभलै ना अज्ञाना।
जा कारन तुम इत उत डोलो ताको पावत नाहीं ॥
चरनदास सुकदेव बतायो हरि हैं अंतर माहीं ॥

सुनु राम भक्ति गति न्यारी है।
जोग जज्ञ संजम अरु पूजा, प्रेम सबन पर भारी है।
जाति बरन पर जो हरि जाते, तौ गनिका क्यों तारी है ॥
सेवरी सरस करी सुर मुनि ते, हीन कुचील जो नारी है।
दुस्सासन पत खोवन लागेव, सब हीं ओर निहारी है ॥
होय निरास कृश्न कहं टेरी, बाढ़ो चीर अपारी है।
टेढ़ी लौंडी कंस राजा का, दीन्ही रूप करारी है ॥

एक सों एक अधिक ब्रजनारी, कुबिजा कीन्ही प्यारी है।
पांचो पँडवन जाय सजो है, सगरी सजी सँवारी है॥
बाल्मीक बिन काज न हो तो, बाजो संख मुरारी है।
साधौं की सेवा में राचौ, भूप की सुरति बिसारी है॥
सेना भक्त के कारन हरि जू, वाकी सूरत धारी है।
दास कबीरा जाति जुलाहा, भए संत उपकारी है॥
साखि सुनो रैदास चमारा, सो जग में उजियारी है।
कनक जनेऊ काढ़ि देखायो, विप्र गये सब हारी है॥
अजामील सदना तिरलोचन, नाभा नाम अधारी है।
धना जाट कालू अरु कूवा, बहुत किये भौ पारी है॥
प्रीत बराबर और न देखै, बेद पुरान बिचारी है।
चरनदास सुकदेव कहत है, ता बस आप मुरारी है॥

राग रामकली

चारि बरन सूं हरिजन ऊँचे।
भये पवित्तर हरि के सुमिरे तन के उज्जल मन के सूचे॥
जो न पतीजै साखि बताऊँ सबरी के जूठे फल खाये।
बहुत अपीसर ह्वांई रहते तिन के घर रघुपति नहिं आये॥
भिल्लनि पाँव दियो सरिता में सुद्ध भयो जल सब कोइ जाने।
मंद हुतो सो निरमल हूवो अभिमानी नर भयो खिसाने॥
ब्राह्मन छत्री भूप हुते बहु बाजो संख सुपच जब आयो।
बाल्मीक जब पूरन कीन्हो जैजैकार भयो जस गायो॥
जाति बरन कुल सोई नीको जाके होय भक्ति परकास।
गुरु सुकदेव कहत हैं तो को हरिजन सेव चरन हीं दास॥

राग सोरठ व आसावरी

साधू पैज गहै सोइ सूरा।
काके मुख पर नूर है जब बाजै मारू तूरा॥
कलँगी अरु गजगाह बनावै इनका परन दुहेला।
सावंत भेख बनाय चलत है यह नहिं सहज सुहेला॥

या बाने को नेम यही है पग धरि फिरि न उठावै ।
जो कुछ होय सो आगेहिं आगे आगे हीं को धावै ॥
रन में पैठि झड़ाझड़ि खेलै सन्मुख सस्तर खावै ।
खेत न छोड़ै ह्वांई जूझै तबहीं सोभा पावै ।
चरनदास बाना संतन का तौलै सीस चढ़ावै ॥

साधो टेक हमारी ऐसी ।
कोटि जतन करि छूटै नाहीं कोऊ करी अब कैसी ॥
यह पग धरो सँभाल अचल होइ बोल चुके सोइ बोलै ।
गुरु मारग में लेन न देनो अब इत उत नहिं डोलै ॥
जैसे सूर सती अरु दाता पकरी टेक न टारैं ।
तन करि धन करि मुख नहिं मोड़ैं धर्म न अपनो हारैं ॥
पावक जारों जल में बोरो टूक टूक करि डारो ।
साध सँगति हरि भक्ति न छोड़ूँ जीवन प्रान हमारो ॥
पैज न हारूं दाग न लागे नेक न उतरे लाजा ।
चरनदास सुकदेव दया से सब बिधि सुधरैं काजा ॥

राग सोरठा

जो नर इकछत भूप कहावै ।
सत्त सिंहासन ऊपर बैठे जत ही चँवर ढुरावै ॥
दया धर्म दोउ फौज महा लै भक्ति निसान चलावै ।
पुन्न नगारा नौबत बाजै दुरजन सकल हलावै ॥
पाप जलाय करै चौगाना हिंसा कुबुधि नसावै ।
मोह मुकद्दम काढ़ि मलुक सूं ला बैराग बसावै ॥
साधन नायब जित तित भेजै दै दै संजम साथा ।
राम दोहाई सिगरे फेरै कोइ न उठावै माथा ॥
निरभय राज करै निस्चल ह्वै गुरु सुकदेव सुनावै ।
चरनदास निस्चै करि जानौ विरला जन कोइ पावै ॥

राग मलार

चहुँ दिस झिलमिल झलक निहारी ।
आगे पीछे दहिने बायें तल ऊपर उँजियारी ॥
दृष्टि पलक त्रिकुटी ह्वै देखै आसन पद्म लगावै ।
संजम साधै दृढ़ आराधै जब ऐसी सिधि पावै ॥
बिन दामिनि चमकार बहुत हीं सीप बिना लर मोती ।
दीपमालिका बहु दरसावैं जगमग जगमग जोती ॥
ध्यान फलै तब नभ के माहीं पूरन हो गति सारी ।
चाँद घने सूरज अनकी ज्यों सूभर भरिया भारी ॥
यह तौ ध्यान प्रतच्छ बतायौ सरधा होय तो कीजै ।
कहि सुकदेव चरन ही दासा सो हम सूँ सुनि लीजै ॥

राग सोरठ

अवधू ऐसी मदिरा पीजै ।
बैठि गुफा में यह जग बिसरै चंद सूर सम कीजै ॥
जहां कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल पर जारी ।
भरि भरि प्याला देत कुलाली बाढ़ै भक्ति खुमारी ॥
माता ह्वै करि ज्ञान खड़्ग लै काम क्रोध कूं मारै ।
घूमत रहै गहै मन चंचल दुबिधा सकल बिडारै ॥
जो चाखै यह प्रेमसुधा रस निज पुर पहुँचै सोई ।
अमर होय अमरा हद पावै आवागवन न होई ॥
गुरु सुकदेव किया मतवारा तीन लोक तृन बूझा ।
चरनदास रनजीत भये जब आनंद आनंद सूझा ॥

राग बिहागरा

साधो निंदक मित्र हमारा ।
निंदक कूं निकटे ही राखों होन न देउँ नियारा ॥
पाछे निंदा करि अघ धोवै सुनि मन मिटैं बिकारा ।
जैसे सोना तापि अगिन में निरमल करै सोनारा ॥
घन अहरन कसि हीरा निबटैं कीमत लच्छ हजारा ।

अमल चढ़ो गगनै लगो अनहद मन छायो हो ।
तेज पुंज की सेज पै प्रीतम गल लायो हो ॥
गये दिवाने देसड़े आनँद दरसायो हो ।
सब किरिया सहजै छूटी तप नेम भुलायो हो ॥
त्रैगुन तें ऊपर रहूँ सुखदेव बसायो हो ।
चरनदास दिन रैन नहिं तुरिया पद पायो हो ॥

राग सोरठ

भाई रे समझ जग व्यवहार ।
जब ताईं तेरे धन पराक्रम करैं सब हीं प्यार ॥
अपने सुख कूं सबहि चाहै मित्र सुत अरु नारि ।
इनहीं तो अप बस कियो है मोह बेड़ी डारि ॥
सबन तो कूं भय दिखायो लाज लकुटी मार ।
बाजीगर के बांदरा ज्यों फिरत घर घर द्वार ॥
जबै तो को विपत्ति आवै जरा कोर बिकार ।
तबै तो सूं लाज मानैं करैं ना तेरि सार ॥
इनकी संगति सदा दुख है समझ मूढ़ गँवार ।
हरि प्रीतम कूं सुमिरि ले कहैं चरनदास पुकार ॥

राग बिहागरा

ये सब निज स्वारथ के गरजी ।
जग में हेत न कर काहू सूं अपने मन को बरजी ॥
रोपैं फंद घात बहु डारैं इन तें रहु डरता जी ।
हिरदे कपट बाहर मिठ बोलैं यह छल हैगो कहा जी ॥
दुख सुख दर्द दया नहिं बूझै इनसे छुटावो हरि जी ।
सौगँद खाय झूठ बहु बोलैं भवसागर कस तरि जी ॥
बैरि मित्र सबै चुनि देखे दिल के मरहम कहँ जी ।
इनको दोष कहा कहा दीजै यह कलजुग की झर जी ॥
दुनिया भगल कुटिल बहु खोटी देखि छाती मेरी लरजी ।
चरनदास इनकूं तजि दीजै चल बस अपने घर जी ॥

राग आसावरी

साधो राम भजै ते सुखिया ।
राजा परजा नेमी दाता सबहीं देखे दुखिया ॥
जो कोई धनवंत जगत में राखत लाख हजारा ।
उनकूं तौ संसय है निसि दिन घटत बढ़त व्यौहारा ॥
जिनके बहु सुत नाती कहिये और कुटुंब परिवारा ।
वे तो जीवन मरन के काजै भरत रहैं दुख भारा ॥
नेमी नेम करत दुख पावैं कर अस्नान सबेरा ।
दाता कूं देवे का दुख है जब मँगतौं ने घेरा ॥
च्यारि बरन में कोउ न देखा जाको चिंता नाहीं ।
हरि की भक्ति बिना सब दुख है समझ देख मन माहीं ॥
सत संगति अरु हरि सुमिरन झरि सुकदेवा गुरु कहिया ।
चरनदास बिपदा सब तजि के आनंद में नित रहिया ॥

राग सोरठ

अब घर पाया हो मोहन प्यारा ।
लखा अचानक अज अबिनासी उघरि गये दृग तारा ॥
झूमि रह्यो मेरे आँगन में टरत नहीं कहुँ टारा ।
रोम रोम हिय माहीं देखा होत नहीं छिन न्यारा ॥
भयो अचरज चरनदासन पै ये खोज कियो बहुबारा ॥

राग आसावरी

है मन आतम पूजा कीजै ।
जितनी पूजा जग के माहीं सब हुत को फल लीजै ॥
जो जो देहीं ठाकुरद्वारे तिन में आप बिराजै ।
देवल में देवत है परगट आछी बिधि सू राजै ॥
त्रैगुन भवन सँभारि पूजिये अनरस होन न पावै ।
जैसे कूं तैसा ही परसै प्रेम अधिक उपजावै ॥
और देवता दृष्टि न आवै धोखे कूं सिर नावै ।
आदि सनातन रूप सदा हीं मूरख ताहि न ध्यावै ॥

घट घट सूझै कोइ इक बूझै गुरु सुकदेव बतावैं।
चरनदास यह सेवन्ह कीन्हे जीवन मुक्ति फल पावैं ॥

जब सू मन चंचल घर आया।
निर्मल भया मैल गये सगरे तीरथ ध्यान जो न्हाया ॥
निर्बासा ह्वै आनंद पाये या जग सूं मुख मोड़ा।
पाँचौ भई सहज बस मेरे जब इनका रस छोड़ा ॥
भय सब छूटै अब को लूटै दूजी आस न कोई।
सिमिटि सिमिटि रहा अपने माहिं सकल विकल नाहिं होई ॥
निज मन हूआ मिटिगा दूआ को बैरी को मीता।
बंध मुक्ति का संसय नाहीं जन्म मरन की चीता ॥
गुरु सुकदेव भेव मोहि दोनों जब सूँ यह गति साधी।
चरनदास सूँ ठाकुर हूए बुटि गये बाद बिवादी ॥

हम तो आतम पूजा धारी।
समझि समझि कर निस्चय कीन्ही, और सवन पर भारी ॥
और देवल जहं धुँधली पूजा, देवल दृष्टि न आवै।
हमरा देवत परगट दीखै बोलै चालै खावै ॥
जित देखौं तित ठाकुरद्वारे करों जहां नित सेवा।
पूजा की बिधि नीके जानों जासूँ परसन देवा ॥
करि सन्मान अस्नान कराऊं चंदन नेह लखीऊं।
मीठे बचन पुष्प सोइ जानो ह्वै करि दीन चढ़ाऊं ॥
परसन करि करि दरसन पाऊं बार बार बलि जाऊं।
चरनदास सुखदेव बतावैं आठ पहर सुख पाऊं ॥

सवैया

आदिहुं आनंद अंतहुं आनंद मध्यहुँ आनंद ऐसे हिं जानौ।
बंधहुँ आनंद मुक्तिहुं आनंद आनंद ज्ञान अज्ञान पिछानौ।
लेटेहुँ आनंद बैठेहुँ आनंद डोलत आनंद आनंद आनौ।
चरनदास बिचारि सबै कुछ आनंद आनंद छांड़ि के दुक्ख न ठानौ ॥

कबित्त

मंदिर क्यों त्यागै अरु भागै क्यों गिरिवर कूं,
हरि जी कूं दूर जानि कल्पै क्यों बावरे।
सब साधन बतायो अरु चारि बेद गायो,
आपन कूं आप देखि अंतर लौ लाव रे।
ब्रह्म ज्ञान हिये धरौ बोलते की खोज करौ,
माया अज्ञान हरौ आपा बिसराव रे।
जैहै जब आप धाप कहा पुन्न कहा पाप,
कहैं चरनदासजू निस्चल घर आव रे॥

रैदास जी

संत कवियों में रैदास जी का एक विशेष स्थान है
चमार थे पर इन की भक्ति बहुत उच्च कोटि की थी न
बड़ी मधुर करते थे। इनकी जन्मतिथि अज्ञात है
धारणा है कि यह कबीर साहब के समकालीन और
शिष्य थे। साथ ही यह भी प्रसिद्ध है कि मीरा बाई ने
थी और मीराबाई तुलसीदास की समकालीन थीं।
कबीर का समकालीन बतलाते हैं उनका कहना है वि
चित्तौड़ की झाली रानी ने इन से दीक्षा ली थी। सब
आधार पर है। ऐसी अवस्था में कुछ निश्चयपूर्वक नहं
और फिर यह भी किंवदंती है कि रैदास जी १२० व
अवस्था में इन का शैशव में कबीर और वृद्धावस्था
से साक्षात्कार होना संभव है।

कहा जाता है कि ये पूर्व-जन्म में ब्राह्मण और र
शिष्य थे, पर इन्होंने किसी बात से चिढ़ कर इन्हें
तू चमार के यहाँ जन्म ले। इसी शाप के फलस्व
चमार के यहाँ उस की स्त्री घुरबिनियाँ के गर्भ से इन
जन्म के बाद ही स्वामी रामानंद ने स्वयं जाकर इस
रक्खा और इन्हें दीक्षित किया। ये अधिकतर काशी
इन की प्रतिष्ठा बढ़ती ही गई यद्यपि जात्याभिमानी
पर इन का अपमान और विरोध करने में कभी नहीं न

इन की मुख्य रचनायें 'बानी' और 'पद' हैं। इ
आदिग्रंथ में भी संग्रहीत हैं। भक्तिरस के अतिरि
में अच्छी काव्य-कला का परिचय भी मिलता है।
कि संत-समागम के सिवा उन्होंने साहित्यिक शिक्षा
भी परिश्रम किया होगा।

साधु

आज दिवस लेऊँ बलिहारा, मेरे गृह आया राम का प्यारा।
आँगन बँगला भवन भयो पावन, हरिजन बैठे हरिजस गावन॥
करूँ डंडवत चरन पखारूँ, तन मन धन उन ऊपरि वारूँ।
कथा कहैं अरु अर्थ बिचारैं, आप तरैं औरन को तारैं॥
कह रैदास मिलैं निज दास, जनम जनम कै काटैं पास॥

चितावनी

कहु मन राम नाम सँभारि।
माया के भ्रम कहाँ भूल्यो, जाहुगे कर झारि॥
देखि धौं इहाँ कौन तेरो, सगा सुत नहिं नारि।
तोर उतँग सब दूरि करिहैं, देहिंगे तन जारि॥
प्रान गये कहो कौन तेरा, देखि सोच बिचारि।
बहुरि येहि कलिकाल नाहीं, जीति भावै हारि॥
यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रतिहारि।
कह रैदास सत बचन गुरु के, सो जिवतें न विसारि॥

प्रेम

साँची प्रीति हम तुम सँग जोड़ी, तुम सँग जोड़ि अवर संग तोड़ी।
जो तुम बादर तो हम मोरा, जो तुम चंद हम भये चकोरा॥
जो तुम दीवा तो हम बाती, जो तुम तीरथ तो हम जात्री।
जहाँ जाउं तहं तुम्हरी सेवा, तुमसा ठाकुर और न देवा॥
तुम्हरे भजन कटे भय फाँसा, भक्ति हेतु गावै रैदासा।

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला।
हे रे कलाली तैं क्या किया, सिरका सा तैं प्याला दिया॥
कहै कलाली प्याला देऊं, पीवन हारे का सिर लेऊं।
चंद सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई।
सहज सुन्न में भाठी सरवै, पीवैं रैदास गुरुमुख दरवै॥

अब कैसे छुटै नाम रट लागी।
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अँग अँग बास समानी॥

प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा ॥
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिन राती ॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ॥
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

जो तुम तोरौ राम मैं नहिं तोरूँ। तुम सों तोरि कवन सों जोरूँ ॥
तीरथ बरत न करूँ अँदेसा। तुम्हरे चरन कमल क भरोसा ॥
जहँ जहँ जाऊँ तुम्हरी पूजा। तुम सा देव और नहिं दूजा ॥
मैं अपनो मन हरि सों जोर्‌यों। हरि सों जोरि सबन से तोर्‌यों ॥
सब ही पहर तुम्हारी आसा। मन क्रम बचन कहै रैदासा ॥

विनय

नरहरि चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी ॥
तूं मोहि देखै हौं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई।
तूँ मोहि देखै तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई ॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर मोर सब अवगुन, कृत उपकार न माना ॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा।
कह रैदास कृष्ण करुनामय, जै जै जगत अधारा ॥

रामा हो जग जीवन मोरा। तूँ न बिसारौ मैं जन तोरा ॥
संकट सोच पोच दिन राती। करम कठिन मोरि जाति कुजाती ॥
हरहु बिपति भावै करहु सो भाव। चरन न छाँड़ौं जाव सो जाव ॥
कह रैदास कछु देहु अलंबन। बेगि मिलौ जनि करौ बिलंबन ॥

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ। फल अरु फूल अनूप न पाऊँ ॥
थनहर दूध जो बछरु जुठारी। पुहुप भँवर जल मीन बिगारी ॥
मलयागिरि बेधियो भुअंगा। विष अमृत दोउ एकै संगा ॥
मन ही पूजा मनही धूप। मन ही सेऊँ सहज सरूप ॥
पूजा अरचा न जानूँ तेरी। कह रैदास कवन गति मेरी ॥

भक्ति

भगती ऐसी सुनहु रे भाई, आई भगति तब गई बड़ाई ॥
कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हे।
कहा भयो जे चरन पखारे, जौलों तत्त न चीन्हे ॥
कहा भयो जे मूँड़ मुड़ाये, कहा तीर्थ ब्रत कीन्हे।
स्वामी दास भगत अरु सेवक, परम तत्त नहिं चीन्हे ॥
कह रैदास तेरी भगति दूर है, भाग बड़े सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपलक ह्वै चुनि खावै ॥

उपदेश

परिचै राम रमै जो कोई। या रस परसे दुबिधि न होई ॥
जे दीसे ते सकल बिनास। अनदीठे नाहीं बिसवास ॥
बरन कहंत कहैं जे राम। सो भगता केवल निःकाम ॥
फल कारन फूले बनराई। उपजै फल तब पुहुप बिलाई ॥
ज्ञानहिं कारन करम कराई। उपजै ज्ञान तो करम नसाई ॥
बट क बीज जैसा आकार। पसरयो तीन लोक पासार ॥
जहां क उपजा तहाँ बिलाइ। सहज सुन्नि में रह्यो लुकाइ ॥
जे मन बिंदै सोई बिंद। अमा समय ज्यों दीसै चंद ॥
जल में जैसे तूँबा तिरै। परिचै पिंड जीव नहिं मरै ॥
सो मन कौन जो मन को खाइ। बिन छोरे तिरलोक समाइ ॥
मन की महिमा सब कोइ कहै। पंडित सो जो अनतै रहै ॥
कह रैदास यह परम बैराग। राम नाम किन जपहु सभाग ॥
घृत कारन दधि मथैं सयान। जीवन मुक्ति सदा निरबान ॥

मलूकदास

बाबा मलूकदास जी का जन्म लाला सुंदरलाल खत्री के यहाँ बैशाख कृष्ण ५, सं० १६३१ में कड़ा, ज़िला इलाहाबाद में हुआ था। इनके संबंध की जो कथाएँ प्रसिद्ध हैं, उन में सब से मार्के की बात यह है कि इनको परमात्मा के साक्षात् दर्शन हुए थे। इनकी मृत्यु १०८ वर्ष की अवस्था में हुई थी। इनकी गद्दियाँ कड़ा, जयपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, नैपाल और काबुल तक में स्थापित हैं। इनके संबंध की सब बातों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि यह अपने समय में बड़े ख्यातनामा संत रहे होंगे। यह औरंगज़ेब के समय में विद्यमान थे और इनके किए हुए बहुत से लोकोत्तर कार्य भी प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि एक बार इन्होंने एक डूबते हुए शाही जहाज़ को पानी के ऊपर उठा कर बचा लिया था और रुपयों का तोड़ा गंगा जी में तैरा कर कड़े से इलाहाबाद भेजा था। यह संसार के सब काम छोड़ कर हरिभजन में मग्न रहना ही एकमात्र कर्त्तव्य समझते थे और अपने शिष्यों आदि को भी यही उपदेश देते थे। निम्नलिखित दोहा, जिसे आलसी लोग हमेशा ज़बान पर रखते हैं, इन्हीं का है--

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम॥

इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं--'रत्नखान' और 'ज्ञानबोध'। ये निर्गुण मार्ग का उपदेश देते थे और हिंदू तथा मुसलमान सभी को समान-रूप से उपदेश देते थे। कदाचित् इसी कारण इनकी भाषा में अरबी-फ़ारसी आदि के शब्द काफ़ी बड़ी संख्या में मिलते हैं। इनकी भाषा यों तो पूरबी हिंदी है पर बोलचाल के ढंग की खड़ीबोली का प्रयोग भी पर्याप्त है। कहीं-कहीं साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की रचना भी देखने में आ जाती है। इनकी सर्वोत्तम कविताएं आत्मबोध, वैराग्य, तथा प्रेम पर हैं।

तेरा मैं दीदार दिवाना।
घड़ी घड़ी तुझे देखा चाहूँ, सुन साहिब रहिमाना ॥
हुवा अलमस्त खबर नहिं तन की, पीया प्रेम पियाला।
ठाढ़ होउँ तो गिरि गिरि परता, तेरे रँग मतवाला ॥
खड़ा रहूँ दरबार तुम्हारे, ज्यों घर का बंदाजादा।
नेकी की कुलाह सिर दीये, गले पैरहन साजा ॥
तौजी और निमाज न जानूँ, ना जानूँ धरि रोजा।
बाँग जिकिर तबही से बिसरी, जब से यह दिल खोजा ॥
कहैं मलूक अब कजा न करिहौं, दिलही सों दिल लाया।
मक्का हज्ज हिये में देखा, पूरा मुरसिद पाया ॥

दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा ॥
प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, ज्यों माता हाथी ॥
उनकी नजर न आवते, कोई राजा रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते हैं निहसंक ॥
साहिब मिल साहिब भये, कछु रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई ॥

विनय

अब तेरी सरन आयो राम।
जबै सुनिया साध के मुख, पतित पावन नाम ॥
यही जान पुकार कीन्ही, अति सतायो काम।
बिषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम ॥

दीन दयाल सुने जब तें तब तें मन में कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ तुम्हरे हित की पट खैंचि कसी है।
तेरो ही आसरो एक मलूक नहीं प्रभु सों कोउ दूजो जसी है।
ए हो मुरार पुकार कहौं अब मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है ॥

दीन-बंधु दीनानाथ, मेरी तन हेरिये ॥
भाई नाहिँ बंधु नाहिँ, कुटुम परिवार नाहिँ ।
ऐसा कोई मित्र नाहिँ, जाके ढिग जाइये ॥
सोने की सलैया नाहिँ, रूपे का रुपैया नाहिँ ।
कौड़ी पैसा गाँठि नाहिं, जासे कछु लीजिये ॥
खेती नाहिं बारी नाहिँ, बनिज ब्यौपार नाहिँ ।
ऐसा कोई साहु नाहिँ, जा सों कछु माँगिये ॥
कहत मलूकदास, छोड़ दे पराई आस ।
राम धनी पाइके, अब काकी सरन जाइये ॥

उपदेश

ना वह रीझै जप तप कीन्हे, ना आतम को जारे ।
ना वह रीझै धोती नेती, ना काया के पखारे ॥
दाया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी ।
अपना सा दुख सब का जानै, ताहि मिलै अबिनासी ॥
सहै कुसबद बाद हू त्यागै, छाड़ै गर्ब गुमाना ।
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना ॥

माया

हम से जनि लागै तू माया ।
थोरे से फिर बहुत होयगी, सुनि पैहैं रघुराया ॥
अपने में है साहिब हमरा, अजहूं चेतु दिवानी ।
काहू जन के बस परि जैहौ, भरत मरहुगी पानी ॥
तर ह्वै चितै लाज करु जन की, डारु हाँथ की फाँसी ।
जन तें तेरो जोर न लहिहै, रच्छपाल अबिनासी ॥
कहै मलूका चुप करु ठगनी, औगुन राखु दुराई ।
जो जन उबरै राम नाम कहि, तातें कछु न बसाई ॥

मिश्रित

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम ।
दास मलूका यों कहै, सब के दाता राम ॥

जहाँ जहाँ दुख पाइया, गुरु को थापा सोय।
जबहीं सिर टक्कर लगै, तब हरि सुमिरन होय॥
आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
ये चारों तब ही गये, जबहिं कहा कछु देह॥
प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय॥
मानुष बैठे चुप करे, कदर न जानै कोय।
जबहीं मुख खोलै कली, प्रगट बास तब होय॥
सब कलियन में बास है, बिना बास नहिं कोय।
अति सुचित्त में पाइये, जो कोइ फूली होय॥

माँस अहार

पीर सभन की एक सी, मूरख जानत नाय।
काँटा चूभे पीर होय, गला काट कोउ खाय॥
कुंजर चींटी पसू नर, सब में साहिब एक।
काटै गला खुदाय का, करै सूरमा लेख॥
सब कोउ साहिब बंदते, हिन्दू मूसलमान।
साहिब तिनको बंदता, जिस का ठौर इमान॥

मूर्तिपूजा, तीर्थ

आतम राम न चीन्हही, पूजत फिरै पषान।
कैसेहु मुक्ति न होइगी, कोटिक सुनो पुरान॥
किरतिम देव न पूजिए, ठेस लगे फुटि जाय।
कहै मलूक सुभ आतमा, चारो जुग ठहराय॥
देवल पूजै कि देवता, की पूजै पाहाड़।
पूजन को जाँता भला, जो पीस खाय संसार॥
हम जानत तीरथ बड़े, तीरथ हरि की आस।
जिनके हिरदे हरि बसै, कोटि तिरथ तिन पास॥
संध्या तर्पन सब तजा, तीरथ कबहुँ न जाउँ।
हरि हीरा हिरदें बसै, ताही भीतर न्हाउँ॥

मक्का मदीना द्वारिका, बद्री और केदार।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक बिचार ॥
राम राय घट में बसैं, ढूँढत फिरैं उजाड़।
कोइ कासी कोई प्राग में, बहुत फिरैं झख मार ॥

मन

कोई जीति सकै नहीं, यह मन जैसे देव।
याके जीते जीत है, अब मैं पायी भेव ॥
तैं मत जानै मन मुवा, तन करि डारा खेह।
ता का क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह ॥

गुरुदेव

जीती बाजी गुर प्रताप तें, माया मोह निवार।
कह मलूक गुरु कृपा तें, उतरा भवजल पार ॥
सुखद पंथ गुरुदेव यह, दीन्हों मोहिं बताय।
ऐसो ऊपट पाय अब, जग मग चलै बलाय ॥
भ्रम भागा गुरु बचन सुनि, मोह रहा नहिं लेस।
तब माया छल हित किया, महा मोहिनी भेस ॥
ताको आवत देखि कै, कही बात समुझाय।
अब मैं आया गुरु सरन, तेरी कछु न बसाय ॥
मलुका सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानही, सो काफिर बे पीर ॥
बहुतक पीर कहावते, बहुत करत हैं भेस।
यह मन कहर खुदाय का, मारै सो दुरबेस ॥

नाम

जीवहुँ तें प्यारे अधिक, लागौ मोहीं राम।
बिन हरि नाम नहीं मुझे, और किसी से काम ॥
कह मलूक हम जबहिं तें, लीन्ही हरि की ओट।
सोवत हैं सुख नींद भरि, डारि भरम की पोट ॥

राम नाम एकै रती, पाप के कोटि पहाड़ ।
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छार ॥
धर्महि का सौदा भला, दाया जग ब्योहार ।
राम नाम की हाट लै, बैठा खोल किवार ॥
साहिब मेरा सिर खड़ा, पलक पलक सुधि लेइ ।
जबहीं गुरु किरपा करी, तबहिं राम कछु देइ ॥
मोदी सब संसार है, साहिब राजा राम ।
जापर चिट्ठी ऊतरै, सोई खरचै दाम ॥

प्रेम

प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन ।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन ॥
कठिन पियाला प्रेम का, पियै जो हरि के हाथ ।
चारो जुग माता रहै, उतरै जिय के साथ ॥
बिना अमल माता रहै, बिन लस्कर बलवंत ।
बिना बिलायत साहिबी, अंत माँहि बेअंत ॥
रात न आवै नींदड़ी, थरथर काँपे जीव ।
ना जानूँ क्या करैगा, जालिम मेरा पीव ॥
मलूक सो माता सुंदरी, जहाँ भक्त औतार ।
और सकल बाँझै भईं, जनमे खर कतवार ॥
सोई पूत सपूत है, (जो) भक्ति करै चित लाय ।
जरा मरन तें छुटि परै, अजर अमर ह्वै जाय ॥
सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार ।
मंदिर ढूँढ़त को फिरै, मिल्यो बजावन हार ॥
करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार ।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिस का मता अपार ॥
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव ।
अंतरजामी जानिहै, अंतरगत का भाव ॥

दया

दुखिया जनि कोई दूखवै, दुखए अति दुख होय।
दुखिया रोम पुकारि है, सब गुड़ माटी होय ॥
हरी डारि ना तोड़िये, लागै छूरा बान।
दास मलूका यौं कहै, अपना सा जिव जान ॥
जे दुखिया संसार में, खोवो तिन का दुक्ख।
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख ॥
दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥
सब पानी की चूपरी, एक दया जग सार।
जिन पर आतम चीन्हिया, तेही उतरे पार ॥

साधू

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ तहाँ फिरै गाय।
कहै मलूक जँह संत जन, तहाँ रमैया जाय ॥
भेष फकीरी जे करै, मन नहिं आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहै, साहिब तिनके साथ ॥

चितावनी

गर्ब भुलाने देंह के, रचि रचि बाँधे पाग।
सो देही नित देखि के, चोंच सँवारे काग ॥
उतरे आइ सराय में, जाना है बड़ कोह।
अटका आकिल काम बस, ली भठियारी मोह ॥
जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोरि।
कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोरि ॥
इस जीने का गर्व क्यां, कहाँ देँह की प्रीत।
बात कहत ढह जात है, बारू की सी भीत ॥
मलूक कोटा झाँझरा, भीत परी भहराय।
ऐसा कोई ना मिला, (जो) फेर उठावै आय ॥

देंही होय न आपनी, समुझि परी है मोहिँ ।
अबहीं तें तजि राख लूँ, आखिर तजिहै तोहिं ॥

बिनय

नमो निरंजन निरंकार, अविगत पुरुष अलेख ॥
जिन संतन के हित धरयो, जुग जुग नाना भेष ॥
हरि भक्तन के काज हित, जुग जुग करी सहाय ।
सो सिव सेस न कहि सकै, कहा कहौं मैं गाय ॥
राम राय असरन सरन, मोहिं आपन करि लेहु ।
संतन सँग सेवा करौं, भक्ति मजूरी देहु ॥
भक्ति मजूरी दीजिये, कीजै भवजल पार ।
बोरत है माया मुझे, गहे बाँह बरियार ॥

सुमिरन

सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखै न कोय ।
ओंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय ॥
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम ।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम ॥

दयाबाई

दयाबाई महात्मा चरनदास जी की शिष्या थीं। प्रसिद्ध संतक-वयित्री सहजोबाई भी इन्हीं की शिष्या और दयाबाई की गुरुबहन थीं।

दयाबाई अपने गुरु की सजातीय थीं अर्थात् धूसर कुल में ही इनका भी जन्म हुआ था। कुछ विद्वानों का तो कथन है कि चरनदास जी के ही वंश में उनका जन्म हुआ था। इन का जन्म सं० १७५० और १७७५ के बीच माना जाता है। इन के प्रथम ग्रंथ 'दयाबोध' का रचनाकाल सं० १८१८ है।

इन का मृत्युकाल निश्चित नहीं है। 'विनयमालिका' नामक एक और ग्रंथ दयाबाई का रचा हुआ माना जाता है, परंतु कुछ लोगों को इस के दयाबाई द्वारा लिखित होने में संदेह है। इस संदेह का कारण यही है कि लेखक या लेखिका ने अपना नाम एक जगह (सुमिरन के अंग, साखी नं० ३) 'दयादास' लिखा है। परंतु ग्रंथ की सब बातों पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि 'दयाबाई' और 'दयादास' एक ही व्यक्ति रहे होंगे। 'दयाबोध' और 'विनयमालिका' दोनों की भाषा और लेखनप्रणाली एक ही ढंग की है। दोनों ही ने गुरु के रूप में महात्मा चरनदास जी का गुणगान किया है। और फिर दोनों ही की विचारधारा और कथनप्रणाली आदि में इतनी समानता है कि दोनों को भिन्न-भिन्न लेखकों की कृति मानना कठिन है।

दयाबाई की कविता बहुत सरल, सुबोध और मधुर है। विचार स्पष्ट और भाव स्वाभाविक हैं। उन में जटिलता कहीं नहीं आने पाई है। निम्नलिखित पद्य 'दयाबाई की बानी' से लिए गए हैं।

गुरु महिमा

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहीं होवै । गुरु बिन चौरासी मग जोवै ॥
गुरु बिन राम भक्ति नहीं जागै । गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै ॥
गुरु ही दीन दयाल गुसाईं । गुरु सरनै जो कोई जाई ॥
पलटैं करैं काग सूँ हंसा । मन की मेटत हैं सब संसा ॥
गुरु है सब देवन के देवा । गुरु की कोउ न जानस भेवा ॥
करुना सागर कृपा निधाना । गुरु हैं ब्रह्म रूप भगवाना ॥
दै उपदेश करैं भ्रम नासा । दया देत सुख सागर बासा ॥
गुरु को अहिनिसि ध्यान जु करिये । विधिवत सेवा में अनुसरिये ॥
तन मन सूँ आज्ञा में रहिए । गुरु अज्ञा बिन कछू न करिये ॥

साध

जगत सनेही जीव है, राम सनेही साध ।
तन मन धन तजि हरि भजैं, जिनका मता अगाध ॥
दया दान अरु दीनता, दीनानाथ दयाल ।
हिरदै सीतल दृष्टि सम, निरखत रहै निहाल ॥
साध संग संसार में, दुरलभ मनुष सरीर ।
सत संगति सूं मिटत है, त्रिबिध ताप की पीर ॥
साध रूप हरि आप है, पावन परम पुरान ।
भेटैं दुबिधा जीव की, सबका करि कल्यान ॥

विनयमालिका

किस बिधि रीझत हौ प्रभू, का कहि टेरूँ नाथ ।
लहर मेहर जबहीं करो, तब ही होउँ सनाथ ॥
कर्म फाँस छूटै नहीं, थकित भयो बल मोर ।
अबकीं बेर उबार लो, ठाकुर बंदी छोर ॥
मलयागिर के निकट हीं, सब चंदन होइ जात ।
छूटै करम कुबासना, महा सुगँध महकात ॥

सहजोबाई

सहजोबाई राजपूताना के एक प्रतिष्ठित धूसर कुल में उत्पन्न हुई थीं। धूसर कुलोत्पन्न प्रसिद्ध महात्मा चरनदास जी इनके गुरु और दयाबाई इनकी गुरुबहिन थीं। इनके जीवनचरित्र के संबंध में अधिक कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। केवल इतना कहा जा सकता है कि ये सं० १८०० में विद्यमान थीं। सभी संतकवियों की भाँति इनके संबंध के भी कुछ चमत्कार प्रसिद्ध हैं। इनकी रचना से इतना अवश्य स्पष्ट है कि इनकी गुरुभक्ति और हरिभक्ति बड़ी गंभीर और सच्ची थी और इनके भाव बड़े कोमल, मधुर और हृदयग्राही होते थे। इनकी भाषा भी बहुत स्वच्छ और सरल है। इनका एकमात्र ग्रंथ 'सहज-प्रकाश' प्राप्त है। कुछ फुटकर पदों का संग्रह 'संतबानीसंग्रह' में भी है और इन्हीं दोनों से निम्नलिखित पद्य लिए गए हैं।

गुरुदेव

हमारे गुरु पूरन दातार।
अभय दान दीनन को दीन्हे, किये भवजल पार॥
जन्म जन्म के बंधन काटे, जन्म को बंध निवार।
रंक हुते सो राजा कीन्हे, हरि धन दियौ अपार॥
देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, जोग बतावन हार।
तन मन बचन सकल सुखदाई, हिरदे बुधि उजियार॥
सब दुख गंजन पातक भंजन, रंजत ध्यान विचार।
साजन दुर्जन जो चलि आवै, एकहि दृष्टि निहार॥
आनंद रूप सरूप भई है, लिपत नहीं संसार।
चरनदास गुरु सहजो केरे, नमो नमो बारंबार॥

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूं। गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवागवन छुटाहीं॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा।
हरि ने कुटंब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी॥

हरि ने रोग भोग उरझायो। गुरु जोगी करि सबै छुटायौ ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतम रूप लखायौ ॥
हरि ने मोसूँ आप छिपायौ। गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ ॥
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये। गुरु ने सब ही भर्म मिटाये ॥
चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ ॥

चितावनी

पानी का सा बुलबुला, यह तन ऐसा होय।
पीव मिलन की ठानिये, रहिये ना पड़ि सोय ॥
रहिये ना पड़ि सोइ, बहुरि नहिं मनुखा देही।
आपन ही कूँ खोजु, मिलै तब राम सनेही ॥
हरि कूँ भूले जो फिरै, सहजो जीवन छार।
सुखिया जब ही होयगो, सुमिरैगो करतार ॥
चौरासी भुगती घना, बहुत सही जम मार।
भरमि फिरे तिहुँ लोक में, तहू न मानी हार ॥
तहू न मानी हार, मुक्ति की चाह न कीन्ही।
हीरा तेही पाइ मोल माटी के दीन्हीं ॥
मूरख नर समझै नहीं, समुझाया बहु बार।
चरनदास कहैं सहजिया सुमिरे ना करतार ॥

प्रेम

मुकट लटक अटकी मन माहीं।
निरतत नटवर मदन मनोहर, कुंडल झलक पलक बिथुराई ॥
नाक बुलाक हलत मुक्ताहल, होठ मटक गति भौंह चलाई।
ठुमक ठुमक पग धरत धरनि पर, बाँह उठाय करत चतुराई ॥
झुनक झुनक नूपुर झनकारत, तता थेई थेई रीझ रिझाई ॥
चरनदास सहजो हिये अंतर, भवन करौ जित रहौ सदाई ॥

विनय

हम बालक तुम माय हमारी। पल पल मोहिं करो रखवारी ॥
निस दिन गोदी ही में राखो। इत वित बचन चितावन भाखो ॥

बिषै ओर जाने नहिं देवो । दुरि दुरि जाउँ तो गहि गहि लेवो ॥
मैं अनजान कछू नहिं जानूँ । बुरी भली को नहिं पहिचानूँ ॥
जैसी तैसी तुमहीं चीन्हेव । गुरु ह्वै ध्यान खिलौना दीन्हेव ॥
तुम्हरी इच्छा ही से जीऊँ । नाम तुम्हारी अमृत पीऊँ ॥
दृष्टि तिहारी ऊपर मेरे । सदा रहूँ मैं सरनै तेरे ॥
मारौ भिड़को तौ नहिं जाऊँ । सरकि सरकि तुमहीं पै आऊँ ॥
चरनदास है सहजो दासी । हो इच्छक पूरन अबिनासी ॥

अब तुम अपनी ओर निहारो ।
हमरे औगुन पै नहिं जावो, तुमहीं अपनी बिरद सम्हारो ॥
जुग जुग साख तुम्हारी ऐसी, वेद पुरानन गाई ।
पतित उधारन नाम तिहारो, यह सुन के मन दृढ़ता आई ॥
मैं अजान तुम सब कछु जानो, घट घट अंतर जामी ।
मैं तो चरन तुम्हारे लागी, हौ किरपाल दयालहि स्वामी ॥
हाथ जोरि के अरज करत हौं, अपनाओ गहि बाँहीं ।
द्वार तिहारे आय परी हौं, पौरुष गुन मो में कछु नाहीं ॥
चरनदास सहजिया तेरी, दरसन की निधि पाऊँ ।
लगन लगी और प्रान अड़े हैं, तुमको छोड़ि कहो कित जाऊँ ॥

उपदेश

सो बसंत नहिं बार बार । तैं पाई मानुष देह सार ॥
यह औसर बिरथा न खोव । भक्ति बीज हिये धरती बोव ॥
सत संगत की सींच नीर । सतगुरु जी सों करौ सीर ॥
नीकी बार बिचार देव । परन राखि या कूँ जु सेव ॥
रखवारी करु हेत देत । जब तेरी होवै जैत जैत ॥
खोट कपट पंछी उड़ाव । मोह प्यास सबही जलाव ॥
संभलै बाडी नऊ अंग । प्रेम फूल फूलै रँग रंग ॥
पुहुप गूँध माला बनाव । आदि पुरुख कूँ जा चढ़ाव ॥
तौ सहजो बाई चरनदास । तेरे मन की पुरवै सकल आस ॥

दरिया साहब

(बिहार वाले)

दरिया साहब का जन्म मुक़ाम धरकंधा जिला आरा में हुआ था। इनके पिता का नाम पीरन शाह था जो कि उज्जैन के एक बड़े प्रतिष्ठित खत्री थे। पर इनकी माँ दर्ज़िन थीं। इनके पूर्वपुरुषों के अधिकार में बकसर के पास जगदीशपुर में एक रियासत भी थी।

इनकी जन्मतिथि अनिश्चित है, पर मरणतिथि इनके मुख्य ग्रंथ 'दरियासागर' के अंत में सं० १८३७ भादों बदी चौथ दी हुई है। दरियापंथियों के अनुसार ये १०६ वर्ष तक जीवित रहे, और इस हिसाब से इनका जन्म सं० १७३१ में माना जाना चाहिए।

ये कबीर के अवतार माने जाते हैं। कहते हैं शैशव-काल में ही साक्षात् भगवान इनके सम्मुख प्रगट हुए थे और इनका नाम दरिया रक्खा था। विवाहित होने पर भी १५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने वैराग्य ले लिया था और स्त्रीसंग से सदा विरत रहे।

इनके अनेक ग्रंथ प्रचलित हैं जिनमें मुख्य 'दरियासागर' और 'ज्ञानबोध' हैं। इनके विचार कबीर के विचारों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। वेद-पुराण, जाति-पाँति, मंदिर-मस्जिद मूर्तिपूजा-नमाज़ तथा तीर्थ-व्रत, रोज़ा आदि को ये भी ढोंग और पाखंड समझते थे और इनकी कटु आलोचना किया करते थे। इन्होंने अपना एक अलग पंथ चलाया था जिसके कुछ रस्म-रिवाज मुसलमानों से मिलते-जुलते हैं।

प्रस्तुत संग्रह के पद्य 'संतबानीसंग्रह' और 'दरियासागर' से लिए गए हैं।

विनय

मैं जानहुँ तुम दीन दयाल। तुम सुमिरे नहिं तपत काल ॥
ज्यों जननी प्रतिपाले सूत। गर्भ बास जिन दियो अकूत ॥
जठर अगिनि तें लियो है काढ़ि। ऐसी वाकी ठवरि गाढ़ि ॥
गाढ़े जो जन सुमिरन कीन्ह। परघट जग में तेहि गति दीन्ह ॥
गरबी मारेउ गैब बान। संत को राखेउ जीव जान ॥
जल में कुमुदिन इन्दु अकास। प्रेम सदा गुरु चरन पास ॥
जैसे पपिहा जल से नेह। बुन्द एक बिस्वास तेह ॥
स्वर्ग पताल मृत मंडल तीनि। तुम ऐसो साहिब मैं अधीन ॥
जानि आयो तुम चरन पास। निज मुख बोलेउ कहेउ उदास ॥
सत पुरुष बचन नहिं होहिं आन। बलु पूरब से पच्छिम उगहि भान ॥
कह दरिया तुम हमहिं एक। ज्यों हारिल की लकड़ी टेक ॥
अब की बार बकस मोरे साहिब, तुम लायक सब जोग है।
गुनह बकसिहौ सब भ्रम नसिहौ, रखि हौ आपन पास है ॥
अछै बिरछि तरि लै बैठेहो, तहवाँ धूप न छाँह है।
चाँद न सुरज दिवस नहिं तहवाँ, नहिं निसु होत विहान है ॥
अमृत फल मुख चाखन देहौ, सेज सुगंधि सुहाय है।
जुग जुग अचल अमर पद देहै, इतनी अरज हमार है ॥
भौसागर दुख दारुन मिटि है, छुटि जैहै कुल परिवार है।
कह दरिया यह मंगल मूला, अनूप फुलै जहाँ फूल है ॥

बिरह

अमर पति प्रीतम काहे न आवो।
तुम सतबर्ग हौ सदा सुहावन, किमि नहिं उर गहि लावो ॥
बरसा बिबिध प्रकार पवन अति, गरजि घुमरि घहरावो।
बुन्द अखंडित मंडित महिं पर, छटा चमकि चहुँ जावो ॥
झींगुर झनकि झनकि झनकारहि, बान बिरह उर लावो।
दादुर मोर सोर सघन बन, पिय बिनु कछु न सुहावो ॥
सरिता उमड़ि घुमड़ि जल छावो, लघु दिर्घ सब बढ़ियावो।
थाके पंथ पथिक नहिं आवत, नैनन में झरि लावो ॥

केहि पूछौं पछितावत दिल में, जो पर होइ उड़ि धावों।
जो पिय मिलैं तो मिलौं प्रेम भरि, श्रमि भाजन भरि लावों ॥
है बिस्वास आस दिल मेरे, फिरि दृग दर्सन पावों।
कह दरिया धन भाग सुहागिनि, चरन कँवल लपटावो ॥

अनहद

होरी सद संत समाज संतन गाइया।
बाजा उमंग झाल झनकारा, अनहद धुन घबराइया ॥
झरि झरि परत सुरंग रंग तहँ, कौतुक नभ में छाइया।
राग रुबाब अघोर तान तहँ, झिन झिन जंतर लाइया ॥
छवो राग छत्तीस रागिनी, गंधर्व सुर सब गाइया ॥
पाँच पचीस भवन में नाचहि, भर्म अबीर उड़ाइया।
कह दरिया चित चंदन चर्चित, सुंदर सुभग सुहाइया ॥

प्रेम

तुम मेरो साईं मैं तेरो दास चरन कँवल चित मेरो बास।
पल पल सुमिरौं नाम सुवास, जीवन जग में देखो दास ॥
जल में कुमुदिन चंद अकास, छाइ रहा छबि पुहुप बिलास।
उन मुनि गगन भया परगास, कह दरिया मेटा जब त्रास ॥

भेद

मानु सबद जो कर बिवेक। अगम पुरप जहँ रूप न रेख ॥
अठदल कँवल सुरति लौ लाय। अजपा जपि के मन समुझाय ॥
भँवर गुफा में उलटि जाय। जगमग जोति रहे छबि छाय ॥
बंक नाल गहि खैंचे सूत। चमके बिजुली मोती बहुत ॥
सेत घटा चहुँ ओर घनघोर। अजरा जहवाँ होय अँजोर ॥
अमिय कँवल निज करो बिचार। चुवत बुंद जहँ अमृत धार ॥
छव चक्र खोजि करो बिवास। मूल चक्र जहँ जिव को बास ॥
काया खोजि जोगी भुलान। काया बाहर पद निरबान।
सतगुर सबद जो करै खोज। कहैं दरिया तब पूरन जोग ॥

उपदेश

भीतरि मैलि चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है ॥
अवगति मुरति महल के भीतर, वा का पंथ न जोवै है ॥

जुगुति बिना कोई भेद न पावै, साधु सँगति का गोवै है ॥
कह दरिया कुटने बे गीदी, सीस पटकि का रोवै है ॥

पेड़ को पकरु तब डारि पालौ मिलै, डारि गहि पकर नहिं पेड़ यारा ।
देखदिब दृष्टि असमान में चंद्र है, चंद्र की जोति अनगिनित तारा ॥
आदि औ अंत सब मध्य है मूल में, मूल में फूल धौं केति डारा ।
नाम निर्गुन निर्लेप निर्मल वरै, एक से अनंत सब जगत सारा ॥
पढ़ि बेद कितेब बिस्तार बक्ता कथै, हारि बेचून वह नूर न्यारा ।
निर्पंच निर्बाच निःकर्म निःभर्म, वह एक सर्वज्ञ सत नाम प्यारा ॥
तजु मान मनी करु काम के काबु यह, खोजु सतगुरू भरपूर सूरा ।
असमान कै बुंद गरकाब हूआ, दरियाव की लहरि कहि बुडुरि मूरा ॥

मिश्रित

सत सुकृत दूनों खंभा हो, सुखमनि लागलि डोरि ।
अरध उरध दूनौं मचवा हो, इंगला पिंगला झकझोरि ॥
कौन सखी सुख बिलसै हो, कौन सखी दुख साथ ।
कौन सखिया सुहागिनी हो, कौन कमल गहि हाथ ॥
सत सनेह सुख बिलसै हो, कपट करम दुख साथ ।
पिया सुख सखिया सुहागिनि हो, राधा कमल गहि हाथ ॥
कौन झुलावै कौन झूलहिं हो, कौन बैठलि खाट ।
कौन पुरुष नहिं झूलहिं हो, कौन रोकै बाट ॥
मन रे झुलावै जिव झूलहिं हो, सक्ति बैठलि खाट ।
सत्त पुरुष नहिं झूलहिं हो, कुमति रोकै बाट ॥
सुर नर मुनि सब झूलहिं हो, झुलहिं तीनि देव ।
गनपति फनपति झूलहिं हो, जोगि जती सुकदेव ॥
जीब जंतु सब झूलहिं हो, झूलहिं आदि गनेस ।
कल्प कोटि लै झूलहिं हो, कोइ कहै न सँदेस ॥
सत्त सब्द ज़िन पावल हो, भयो निर्मल दास ।
कहै दरिया दर देखिप हो, जाय पुरुष के पास ॥

दरिया साहब

(मारवाड़ वाले)

इन दरिया साहब का जन्म मारवाड़ प्रांत के जैतारन गाँव में, एक मुसलमान के कुल में, सं० १७३३ में, और स्वर्गवास अगहन सुदी पूनों सं० १८१५ को हुआ। इनके माता-पिता धुनियाँ थे जैसा कि इनके निम्नलिखित पद से स्पष्ट है—

जो धुनियाँ तौं भी मैं राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मति हीना, तुम तो हो सिरताज हमारा।

सात वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई थी और तब से ये मेड़ते में अपने नाना कमीच के यहाँ रहने लगे थे। उस समय मारवाड़ के राजा बख़्तसिंह जी थे, जिनको इन्होंने अपना एक शिष्य भेज कर एक असाध्य बीमारी से मुक्त किया था। इनके गुरु बीकानेर के खियान्सर गाँव के रहने वाले प्रेम जी नाम के साधु थे। कहते हैं इन्हीं दरिया साहब के संबंध के दादू ने सौ वर्ष पहले यह भविष्यवाणी की थी—

देह पड़ताँ दादू कहै सौ बरसाँ इक संत।
रैन नगर में परगटै, तारै जीव अनंत॥

इनकी बानियों का संग्रह बेलवेडियर प्रेस ने 'दरिया साहब (मारवाड़-वाले) की बानी' नाम से प्रकाशित किया है।

वही सब कुछ

आदि अनादी मेरा साईं।
दृष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर, यह सब माया उनहीं माईं॥
जो वनमाली सींचै मूल, सहजै पिवै डाल फल फूल।
जो नरपति को गिरह बुलावै, सेना सकल सहज ही आवै॥
जो कोई कर भान प्रकासै, तो निस तारा सहजहि नासै।

गरुड़ पंख जो घर में लावै, सर्प जाति रहने नहिं पावै ॥
दरिया सुमिरै एकहि राम, एक राम सारै सब काम ॥
आदि अंत मेरा है राम । उन बिन और सकल बेकाम ॥
कहा करूँ तेरा वेद पुराना । जिन है सकल जगत भरमाना ॥
कहा करूँ तेरी अनुभै बानी । जिनतें मेरी सुद्धि भुलानी ॥
कहा करूँ ये मान बड़ाई । राम बिना सबही दुखदाई ॥
कहा करूँ तेरा सांख औ जोग । राम बिना सब बंधन रोग ॥
कहा करूँ इन्द्रिन का सुक्ख । राम बिना देवा सब दुक्ख ॥
दरिया कहै राम गुर मुखिया । हरि बिन दुखी राम सँग सुखिया ॥

माया

संतो कहा गृहस्थ कहा त्यागी ।
जोहि देखूं तेहि बाहर भीतर, घट घट माया लागी ॥
माटी की भीत पवन का खंभा, गुन औगुन से छाया ।
पाँच तत्त आकार मिलाकर, सहजाँ गिरह बनाया ॥
मन भयो पिता मनसा भइ माई, दुख सुख दोनों भाई ।
आसा तृस्ना बहिने मिलकर, गृह की सौंज बनाई ॥
मोह भयो पुरुष कुबुधि भई घरनी, पाँचो लड़का जाया ।
प्रकृति अनंत कुटुंबी मिलकर, कलहल बहुत उपाया ॥
लड़कों के संग लड़की जाई, ताका नाम अधीरी ।
बन में बैठी घर घर डोलै, स्वारथ संग खपीरी ॥
पाप पुन्न दोउ पाड़ पड़ोसी, अनँत वासना नाती ।
राग द्वेष का बंधन लागा, गिरह बना उतपाती ॥
कोइ गृह मांडि गिरह में बैठा, बैरागी वन वासा ।
जन दरिया इक राम भजन बिन, घट घट में घर वासा ॥

भेद

दरिया दरबारा, खुल गया अजर किवाड़ा ॥
चमकी बीज चली ज्यों धारा, ज्यों बिजली बिच तारा ।

खुल गया चन्द बन्द बदरी का, घोर मिटा अँधियारा ॥
लौ लगी जाय लगन के लारा, चाँदनी चौक निहारा ।
सूरत सैल करै नभ ऊपर, वंकनाल पट फारा ॥
चढ़गइ चांप चली ज्यों धारा, ज्यों मकड़ी मकतारा ।
मैं मिली जाय पाय पिउ प्यारा, ज्यों सलिता जलधारा ॥
देखा रूप अरूप अलेखा, ताका वार न पारा ।
दरिया दिल दरवेश भये तब, उतरे भौजल पारा ॥

गुलाल साहब

गुलाल साहब जगजीवन साहब के समकालीन और गुरु-भाई थे और इनका जीवन-काल सं० १७५० से १८०० तक माना जाता है। यह जाति के खत्री और घर के गृहस्थ ज़मींदार थे। ये ग़ाज़ीपुर ज़िले के भरकुड़ा नामक स्थान में रहते थे और वहीं इन्हों ने भीखा साहब को दीक्षा दी थी। इन के (गुलाल साहब) के गुरु प्रसिद्ध संत बुल्ला साहब थे जिन का असली नाम बुलाकी राम था।

इन का कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिला है, केवल इनके कुछ स्फुट पद्यों का संपादन बेलवेडियर प्रेस से 'गुलाल साहब की बानी' नाम से हुआ है और निम्न-लिखित पद्य उसी से संगृहीत हुए हैं। यारी साहब की शिष्यपरंपरा में गुलाल साहब ही सब से अच्छे कवि कहे जा सकते हैं। यों तो क्रमशः इस शिष्यपरंपरा में ज्ञान की महिमा कम तथा भक्ति और प्रेम की महिमा बढ़ती हुई प्रतीत होती ही है पर गुलाल साहब की कविता में तो प्रेमावेश बहुत ही बढ़ गया है और इसी से इनकी कविता अधिक सरस हो गई है। कुछ आत्मानुभव के पद भी इनकी रचना में बड़े सुंदर बन पड़े हैं।

नाम

नाम रस अमरा है भाई, कोउ साथ संगति तें पाई ॥
बिन घोटे बिन छाने पीवै, कौड़ी दाम न लाई।
रंग रँगीले चढ़त रसीले, कबहीं उतरि न जाई ॥
छके छकाये पगे पगाये, झूमि झूमि रस लाई।
बिमल बिमल बानी गुन बोलो, अनुभव अमल चलाई ॥
जहं जहं जावै थिर नहिं आवै, खोल अमल लै धाई।
जल पत्थल पूजन करि मानत, फोकट गाढ़ बनाई ॥
गुरु परताप कृपा तें पावै, घट भरि प्याल फिराई।
कहै गुलाल मगन ह्वै बैठे, भगिहै हमरि बलाई ॥

अनहद शब्द

रे मन नामहिं सुमिरन करै।
अजपा जाप हृदय लै लावो, पाँच पचीसो तीन मरै॥
अष्ट कमल में जीव बसतु है, द्वादस में गुरु दरस करै।
सोरह ऊपर बानि उठतु है, दुइ दल अमी झरै॥
गंगा जमुना मिली सरसुती, पदुम झलक तहँ करै।
पछिम दिसा है गगन मंडल में, काल बली सों लरै॥
जम जीतो है परम पद पायो, जोती जग मग बरै।
कह गुलाल सोइ पूरन साहिब, हर दम मुक्ति फरै॥

प्रेम

जो पै कोई प्रेम को गाहक होई।
त्याग करै जो मन की कामना, सीस दान दै सोई॥
और अमल की दर जो छोड़ै, आपु अपन गति जोई।
हर दम हाजिर प्रेम पियाला, पुलकि पुलकि रस लेई॥
जीव पीव महँ पीव जीव महँ, बानी बोलत सोई।
सोई सभन महँ हम सबहन महँ, बूझत बिरला कोई॥
वा की गती कहा कोई जानै, जो जिय साचा होई।
कह गुलाल वे नाम समाने, मत भूले नर लोई॥

अबिगत जागल हो सजनी।
खोजत खोजत सतगुरु पावल, ताहि चरनवाँ चितवा लागल हो सजनी॥
साँझि समय उठि दीपक बारल, कटल करमवा मनुवाँ पागल हो सजनी।
चलति उबटि बाट छुटलि दकल घाट, गरजि गगनवा अनहद बाजल हो सजनी॥
गइली अनँदपुर भइली अगम सूर, जितली मैदनवाँ नेजवा गाड़ल हो सजनी।
कहै गुलाल हम प्रभुजी पावल, फरल लिलरवा पपवा भागल हो सजनी॥

विनय

प्रभु जी बरषा प्रेम निहारो।
उठत बैठत छिन नहिं बीतत, यही रीति तुम्हारो॥
समय होय भा असमय होवै, भरत न लागत वारो।

जैसे प्रीति किसान खेत सों, तैसो है जन प्यारो ॥
भक्त बच्छल है बान तिहारो, गुन औगुन न विचारो ।
जहँ जँह जावँ नाम गुन गावत, जम को सोच निवारो ॥
सोवत जागत सरन धरम यह, पुलकित मनहिं बिचारो ।
कह गुलाल तुम ऐसो साहिब, देखत न्यारो न्यारो ॥

भेद

मन मधुकर खेलत बसंत । बाजत अनहद गति अनंत ॥
बिगसत कलम भयो गुँजार । जोति जगामग करि पसार ॥
निरखि निरखि जिय भयो अनंद । बाझल मन तब परल फंद ॥
लहरि लहरि बहै जोति धार । चरन कमल मन मिलो हमार ॥
आवै न जाइ मरै नहिं जीव । पुलकि पुलकि रस अमिय पीव ॥
अगम अगोचर अलख नाथ । देखत नैनन भयो सनाथ ॥
कह गुलाल मोरी पुजलि आस । जम जीत्यो भयो जोति बास ॥

उलटि देखो, घट में जोति पसार ।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार ॥
पैठि पताल सूर ससि बाँधौ, साधौ त्रिकुटी द्वार ।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ॥
इँगला पिंगला सुखमन सोहो, बहत सिखर मुख धार ।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै झनकार ॥
सोहं डोरी मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार ।
कह गुलाल सतगुरु बर पायो, भरो है मुक्ति भँडार ॥

उपदेश

अवधू निर्मल ज्ञान बिचारो ।
ब्रह्म सरूप अखंडित पूरन, चौथे पद सों न्यारो ॥
ना वह उपजै ना वह बिनसै, ना भरमै चौरासी ।
है सतगुरु सतपुरुष अकेला, अजर अमर अबिनासी ॥
ना वाके बाप नहीं वाके माता, वाके मोह न माया ।
ना वाके जोग, भोग वाके नाहीं, ना कहुँ जाय न आया ॥

अद्भुत रूप अपार बिराजै, सदा रहै भरपूरा।
कहै गुलाल सोई जन जानै, जाहि मिलै गुरु सूरा ॥

हरि नाम न लेहु गँवारा हो।
काम क्रोध में रटत फिरत हौ, कबहुँ न आप सँभारा हो ॥
आपु अपन कै सुधि नहिं जानहु, बहुत करत बिस्तारा हो।
नेम धरम व्रत तिरथ करतु हौ, चौरासी बहु धारा हो ॥
तसकर चोर बसहिं घट भीतर, मूसहिं सहन भंडारा हो।
संन्यासी बैरागी तपसी, मनुवां देत पछारा हो ॥
धंधा धोख रहत लपटाने, मोह रतो संसारा हो ॥
कहै गुलाल सतगुरु बलिहारी, जग तें भयो नियारा हो ॥

मन तूँ हरि गुन काहे न गावै तातें कोटिन जनम गँवावै ॥
घर में अमृत छोड़ि कै, फिरि फिरि मदिरा पावै।
छोड़हु कुमति मूढ़ अब मानहु, बहुरि न ऐसो दावै ॥
पाँच पचीस नगर के बासी, तिनहिं लिये संग धावै।
बिन पर उड़त रहै निसि बासर, ठौर ठिकान न आवै ॥
जोगी जती तपी निर्बानी, कपि ज्यों बाँधि नचावै।
संन्यासी बैरागी मौनी, धै धै नरक मिलावै ॥
अबकी बार दाव है मेरो, छोड़ों न राम दुहाई।
जन गुलाल अवधूत फकीरा, राखों जंजीर भराई ॥

माया

संतो कठिन अपरबल नीरा।
सब हीं बरलहि भोग कियो है, अजहूँ कन्या क्वारी ॥
जननी ह्वै के सब जग पाला, बहु बिधि दूध पियाई।
सुंदर रूप सरूप सलोना, जोय होइ जग खाई ॥
मोह जाल सों सबहि बझायो, जहं तक है तन धारी।
काल सरूप प्रगट है नारी, इन कहं चलहु संभारी ॥
आन ज्ञान सब हो हरि लीन्हो, काहु न आप संभारी।
कहै गुलाल कोऊ कोउ उबरे, सतगरु की बलिहारी ॥

मिश्रत

सत्तहिं डोलवा सतगुरु नावल तहवाँ मनुवाँ भुलत हमार ॥
बिन डोरी बिन खंभे पौढ़ल आठ पहर भनकार ।
गावहु सखियाँ हिंडोलवा हो, अनुभौ मंगलचार ॥
अब नहिं अवना जवना हो, प्रेम पदारथ भइल निनार ।
छुटत जगत कर भुलना हो, दास गुलाल मिलो है यार ॥

बुल्ला साहब

यारी साहब के दो शिष्य बुल्ला साहब और केशवदास हुए। बुल्ला साहब जाति के कुनबी थे और इनका असली नाम बुलाकीराम था। इनका सत्संग-स्थान भुरकुड़ा ज़िला ग़ाज़ीपुर था। इनका समय सं० १७५०-१८२५ तक बतलाया जाता है। प्रसिद्ध संत गुलाल इन्हीं के शिष्य थे। गुलाल साहब बसहरि ज़िला ग़ाज़ीपुर के क्षत्रिय ज़मींदार थे और गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही इन्होंने संतों के सत्संग से पूरा लाभ उठाया था। कहते हैं कि इनके गुरु बुलाकीराम साहब पहले इन्हीं के यहाँ हलवाही का काम करते थे, परंतु एक दिन जब ये खेत में गए तो बुलाकीराम को हल छोड़ कर ध्यान में मग्न देखा और क्रोध में आकर इन्हें एक लात मारी जिससे ये चौंक पड़े और इनके हाथ से दही छलक पड़ा। यह आश्चर्यमयी घटना देख कर बड़े आग्रह से गुलाल साहब ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि मैं साधुओं को भोजन करा-कर दही परस रहा था कि इतने ही में तुमने लात मारी और मेरे हाथ से दही गिर पड़ा। गुलाल ने जाँच कराई तो यह घटना सच निकली और तभी से यह उनके (बुलाकीराम) के शिष्य हो गए जो कि बाद में बुल्ले शाह [1] या बुल्ला साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए।

निम्नलिखित पद 'बानी' से संगृहीत हुए हैं।

नाम

साईं के नाम की बलि जावँ।
सुमिरत नाम बहुत सुख पायो, अंत कतहुँ नहिं ठाँव ॥
नाम बिना मन स्वान मँजारी, घर घर चित लै जाँव।
बिन दरसन परसन मन कैसो, ज्यों लूले को गाँव ॥
पवन मथानी हिरदे ढूँढो, तव पावै मन ठाँव।
जन बुल्ला बोलहि कर जोरें, सतगुरु चरन समाँव ॥

---

[1] बुल्ले शाह बुल्ला साहब से भिन्न व्यक्ति थे। प० च०

अनहद

सोहं हंसा लागलि डोर। सुरति निरति चढु मनुवाँ मोर ॥
झिलमिलि झिलमिलि त्रिकुटी ध्यान। जगमग जगमग गगन तान ॥
गह गह गह अनहद निसान। प्रान पुरुष तँह रहत जान ॥
लहरि लहरि उठि पछिंव घाट। फहरि फहरि चल उतर बाट ॥
सेत बरन तहँ आवै आप। कह बुल्ला सोइ माई बाप ॥

प्रेम

साची भक्ति गोपाल की, मेरो मन माना।
मनसा बाचा कर्मना, सुनु संत सुजाना ॥
लँगरा लुंजा ह्वै रहो, बहिरा अरु काना।
राम नाम सों खेल है, दीजै तन दाना ॥
भक्तिहेतु गृह छोड़िये, तजि गर्व गुमाना।
जन बुल्ला पायो वाक है, सुमिरो भगवाना ॥

भेद

सुखमनि सुरति डोरि बनाव।
मेटिहै सब कर्म जियके, बहुरि इतहिं न आव ॥
पैठि अंदर देखु कंदर, जहां जियको वास।
उलटि प्रान अपान मेटो, सेत सबद निवास ॥
गंग जमुना मिलि सरसुती, उमँगि सिखर बहाव।
लवकंति बिजुली दामिनी, अनहद गरज सुनाव ॥
जीति आया आपहीं, गुरु यारी सबद सुनाव।
तब दास बुल्ला भक्ति ठानो, सदा रामहिं गाव ॥

होली

होरी खेलो रंग भरी, सब सखियन संग लगाई ॥टेक॥
फागुन आयो मास अनँद भो, खेलि लेहु नरनारी।
ऐसा समय बहुरि नहिं पैहो, जैहो जनम जुवा हारी ॥
तीर त्रिवेनी होरी खेलो, अनहद डंक बजाई।

ब्रह्मा बिस्नु महेस तिनो जन, रहे चरन लिपटाई ॥
बनि बनि आवैं दरस दिखावैं, अदभुत कला बनाई ।
जन बुल्ला ऐसी होरी खेले, रहे नाम लौ लाई ॥

अरिल

मुरगी यहु संसार चेंहु चेंहु करत है ।
आतम राम को नाम हृदे नहि धरत है ॥
बिना राम नहिं मुक्ति झूठ सब कहत है ।
बुल्ला हृदे बिचारि राम सँग रहत है ॥
झूठा यहु संसार झूठ सब कहत है ।
सत्त शब्द की रहनि कोऊ नहिं गहत है ॥
बिना सत्त नहिं गत्त कुगत्त में परत है ।
बुल्ला हृदे बिचारि सत्त सों रहत है ॥

बुल्लेशाह

बुल्लेशाह का जन्मस्थान बहुत से लोग रूम समझा करते थे। परंतु कुछ खोज के उपरांत यह निश्चय किया जा चुका है कि इनका जन्म लाहौर जिले के अंतर्गत पंडोल गाँव में हुआ था और इनका जन्म-संवत् १७३७ था। ये पहले किसी साधु दर्शनीनाथ के सत्संग में आये और फिर इन्होंने सूफ़ी इनायत शाह को अपना पीर स्वीकार कर लिया। ये कादरी शत्तारी संप्रदाय के सूफी समझे जाते रहे और इनकी साधना का मुख्य स्थान कुसूर नामक नगर था। ये 'कुरानशरीफ' तथा 'हदीस' की अनेक बातों की खरी आलोचना कर दिया करते थे जिस कारण इन पर मौलवी लोग क्रुद्ध रहते थे। ये आजीवन ब्रह्मचारी रहे और इनका आचरण एक शुद्ध और सतोगुणी व्यक्ति का था। इनका देहांत सं० १८१० में कसूर में ही हुआ था। इनके दोहरे, अठवारे, बारामासे, काफी और सीहर्फी का प्रकाशन हो चुका है। इनकी भाषा पंजाबी थी और ये बड़े स्पष्टवादी थे।

चितावनी

माटी खुदी करेंदी यार।
माटी जोड़ा माटी घोड़ा, माटी का असवार॥
माटी माटी नूँ मारन लागी, माटी दे हथियार।
जिस माटी पर बहुती माटी, तिस माटी हंकार॥
माटी बाग बगीचा माटी, माटी दी गुलजार।
माटी माटी नूँ देखन आई, माटी दी बाहार॥
हंस खेल फिर माटी होई, पौंदी पाँव पसार।
बुल्ले शाह बुझारत बूझी, लाह सिरो भों मार॥

यारी साहब

यारी साहब जाति के मुसलमान थे और अपने गुरु बीरू साहब की सेवा में दिल्ली में ही रहते थे। बहुत खोज करने पर भी इनके जीवन का कोई सुसंबद्ध वृत्तांत नहीं प्राप्त हो सका है। इनका जीवनकाल सं० १७२५ से १७८० तक अनुमान किया गया है। इनके गुरुमुख शिष्य बुल्ला साहब हुए जो कि गुलाल साहब के गुरु और भीखा साहब के दादा गुरु थे। यारी साहब की बानियों को प्राप्त करने में संतबानी के संपादकों को बड़ी खोज करनी पड़ी थी। बड़ी कठिनाइयों के बाद इनके कुछ पद्य ग़ाज़ीपुर तथा बलिया आदि स्थानों में मिल सके हैं। इनके जो कुछ भी पद्य मिले हैं उनके एक एक शब्द से इनकी अगाध भक्ति और उच्च गति टपकती है।

झूलना

गुरु के चरन की रज लै के, दोउ नैन के बिच अंजन दीया।
तिमिर मेटि उँजियार हुआ, निरंकार पिया को देख लिया॥
कोटि सुरज तहँ छिपे घने, तीनि लोक धनी धन पाय पिया।
सतगुरु ने जो करी किरपा, मरि के यारी जुग जुग जीया॥

अनहद शब्द

सुन्न के मुकाम में बेचून की निसानी है। जिकिर रूह सोई अनहद बानी है॥
अगम के गम्म नाहीं झलक पिसानी है। कहै यारी आपा चीन्हें सोई ब्रम्ह ज्ञानी है॥

झिलमिल झिलमिल बरखै नूरा। नूर जहूर सदा भरपूरा॥
रुनझुन रुनझुन अनहद बाजै। भँवर गुँजार गगन चढ़ि गाजै॥
रिमझिम रिमझिम बरखै मोती। भयो प्रकास निरंतर जोती॥
निरमल निरमल निरमल नामा। कह यारी तहँ लियो बिश्रामा॥

प्रेम

हौं तो खेलौं पिया सँग होरी ।
दरस परस पतिबरता पिय की, छबि निरखत भइ बौरी ॥
सोरह कला सँपूरन देखौं, रबि ससि भे इक ठौरी ।
जब तें दृष्टि परो अबिनासी, लागो रूप ठगौरी ॥
रसना रटत रहत निस बासर, नैन लगो यहि ठौरी ।
कह यारी भक्ती करु हरि की, कोई कहै सो कहो री ॥

बिरहिनी मंदिर दियना बार ॥
बिन बाती बिन तेल जुगति सों, बिन दीपक उँजियार ।
प्रान पिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज सँवार ॥
सुखमन सेज परम तत रहिया, पिय निर्गुन निरकार ।
गावहु री मिलि आनँद मंगल, यारी मिलि के यार ॥

भेद भूलना

दोउ मूँदि के नैन अंदर देखा, नहिं चाँद सुरज दिन राति है रे ।
रोसन समा बिनु तेल बाती, उस जोति सों सबै सिफाति है रे ॥
गोत मारि देखो आदम, कोउ अवर नाहिं संग साथि है रे ।
यारी कहै तहकीक कीया, तू मलकुल मौत की जाति है रे ॥

ज़मीं बरखै असमान भींजे, बिन बातिहिं तेल जलाइये जी ।
जहाँ नूर तजल्ली बीच है रे, बेरंगी रंग दिखाइये जी ॥
फूल बिना जदि फल होवै, तदि हीरा की लज्जत पाइये जी ।
यारी कहै यहि कौन बूझै, यह कासों बात जनाइये जी ॥

उपदेश

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे ।
बंदा करै सोइ बंदगी, खिदमत में आठो जाम है रे ॥
यारो मौला बिसारि कें, तू क्या लागा बेकाम है रे ।
कुछ जीते बंदगी करले, आखिर को गोर मुकाम है रे ॥

गहने के गढ़े तें कहीं सोनो भी जातु है।
सोनो बीच गहनो और गहनो बीच सोन है ॥
भीतर भी सोनो और और बाहर भी सोन दीसै।
सोनो तो अचल अंत गहनो को मीच है ॥
सोन को तो जानि लीजै गहनो बरबाद कीजै।
यारी एक सोनो तामें ऊँच कवन नीच है ॥

कवित्त

आँधरे को हाथी हरि हाथ जाको जैसो आयो,
बूझो जिन जैसो तिन तैसोई बतायो है।
टकाटोरी दिन रैन हिये हू के फूटे नैन,
आँधरे को आरसी में कहा दरसायो है।
मूल की खबरि नाहिं जासों यह भयो मुलुक,
वाको बिसारि भोंदू डारै अरुझायो है।
आपनो सरूप रूप, आपु माहिं देखै नाहिं,
कहै यारी आँधरे ने हाथी कैसो पायो है ॥

दूलनदास

अधिकांश संत-कवियों की भाँति दूलनदास का जीवन-वृत्तांत भी अप्राप्य-सा है। केवल इतना स्पष्ट है कि यह जगजीवन साहब के गुरु-मुख चेले थे और अठारहवीं शताब्दी के पिछले भाग से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वर्तमान थे।[1] यह जाति के सोमवंशीय क्षत्रिय थे और इनका जन्म लखनऊ ज़िले के समेसी नामक गाँव में एक ज़मींदार के घर हुआ था। आरंभ में बहुत दिन तक ये सरदहा में अपने गुरु जगजीवन से उपदेश ग्रहण करते रहे। इनकी स्फुट बानियों का एक संग्रह बेलवेडियर प्रेस से संपादित हुआ है।

भेद

देख आयों मैं तो साईं की सेजरिया, साईं की सेजरिया सतगुरु की डगरिया ॥
सबदहि ताला सबदहि कूँजी, सबद की लगी है जँजिरिया।
सबद ओढ़ना सबद बिछौना, सबद की चटक चुनरिया ॥
सबद सरूपी स्वामी आप बिराजैं, सीस चरन में धरिया।
दूलनदास भजु साईं जगजीवन, अगिन से अहँग उजरिया ॥

साईं तेरो गुप्त मर्म हम जानी, कस करि कहौं बखानी ॥
सतगुरु संत भेद मोहिं दीन्हा, जग से राखा छानी।
निज घर का कोउ खोज न कीन्हा, करम भरम अटकानी ॥
निज घर है वह अगम अपारा, जहाँ बिराजै स्वामी।
ताके पैर अलोक अनामी, जा का रूप न नामी ॥
ब्रह्म रूप धरि सृष्टि उपाई, आप रहा अलगानी।
बेद कितेब की रचन रचाई, दस औतार धरानी ॥
निज माता सीता सोइ राधा, जिन पितु राम सुवामी।
दोउ मिलि जीवन बंद छुड़ाया, निज पद में दिया ठामी ॥

---

[1] सत्तनामियों के अनुसार इनका जीवन-काल सं० १७१७ से सं० १८३५ तक है। प० च०

दूलनदास के साईं जगजीवन, निज सुत जक्त पठानी ।
मुक्ति द्वार की कूँजी दीन्हीं, तातें कुलुफ खुलानी ॥

दोहा

दूलन यह मत गुप्त है, प्रगट न करौ बखान ।
ऐसे राखु छिपाय मन, जस बिधवा औधान ॥

नाम महिमा

जब गज अरध नाम गुहरायो ।
जब लगि आवै दूसरा अच्छर, तब लगि आपुहि धायो ॥
पाँय पियादे भे करुनामय, गरुणासन बिसरायो ।
धाय गजंद गोद प्रभु लीन्हो, आपनि भक्ति दिढ़ायो ॥
मीरा को विष अमृत कीन्हो, बिमल सुजस जग छायो ।
नामदेव हित कारन प्रभु तुम, मिर्तक गाय जियायो ॥
भक्त हेत तुम जुग जुग जनमेउ, तुमहिं सदा यह भायो ।
बलि बलि दूलनदास नाम की, नामहिं तें चित लायो ॥

बाजत नाम नौबति आज ।
ह्वै सावधान सुचित्त सीतल, सुनहु गैब अवाज ॥
सुखकंद अनहद नाद सुनि दुख दुरित क्रम भ्रम भाज ।
सतलोक बरसो पानि, धुनि निर्बान यहि मन बाज ॥
तोइ चेत चित दै प्रेम मगन, अनंद आरति साज ।
घर राम आये जानि, भइनि सनाथ बहुरा राज ॥
जगजीवन सतगुरु कृपा पूरन, सुफल भें जन काज ।
धनि भाग दूलनदास तेरे, भक्ति तिलक विराज ॥

कोइ बिरला यहि बिधि नाम कहै ॥
मंत्र अमोल नाम दुइ अच्छर, बिनु रसना रट लागि रहै ।
होठ न डोलै जीभ न बोलै, सुरति धरनि दिढाइ गहै ॥
दिन औ राति रहै सुधि लागी, यहि माला यहि सुमिरन है ।
जन दूलन सतगुरन बतायो, ताको नाव पार निबहै ॥

मन वहि नाम को धुनि लाउ ।
रट्ठ निरंतर नाम केवल, अवर सब बिसराउ ॥
साधि सूरति आपनो, करि सुवा सिखर चढ़ाउ ।
पोखि प्रेम प्रतीत तें, कहि राम नाम पढ़ाउ ॥
नाम ही अनुराग निसु दिन, नाम के गुन गाउ ।
बनी तौ का अवहिं आगे, और बनी बनाउ ॥
जगजीवन सतगुरु बचन साचे, साच मन माँ लाउ ।
करु वास दूलनदास सत माँ, फिरि न यहि जग आउ ॥

उपदेश

बोल मनुआँ राम राम ॥
सत्त जपना और सुपना, जिकर लावो अष्ट जाम ।
समुझि बूझि बिचारि देखो, पिंड पिंजरा धूम धाम ॥
बालमीकि हवाल पूछो, जपत उलटा सिद्ध काम ।
दास दूलन आस प्रभु की, मुक्ति करता सत्तनाम ॥

प्रानी जपि ले तू सत्तनाम ।
मात पिता सुत कुटुँब कबीला, यह नहिं आवैं काम ।
सब अपने स्वारथ के संगी, संग न चलै छदाम ॥
देना लेना जो कुछ होवै, करि ले अपना काम ॥
आगे हाट बजार न पावै, कोइ नहिं पावै ग्राम ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह ने, आन बिछाया दाम ।
क्यों मतवारा भया बावरे, भजन करो निःकाम ॥
यह नर देही काम न आवै, चल तू अपने धाम ।
अब की चूक माफ नहिं होगी, दूलन अचल मुकाम ॥

चलो चढ़ो मन यार महल अपने ॥
चौक चाँदनी तारे झलकैं, बरनत बनत न जात गने ।
हीरा रतन जड़ाव जड़े जहँ मोतिन कोटि कितान बने ॥
सुखमन पलँगा सहज बिछौना, सुख सोवो को मेरे मने ।
दूलनदास के साईं जगजीवन को आवै जग जग सुपने ॥

जोगी चेत नगर में रहो रे ॥
प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे ।
अंतर लाओ नामहिं की धुनि, करम भरम सब धो रे ॥
सूरत साधि गहो सत मारग, भेद न प्रगट कहो रे ।
दूलनदास के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे ॥

बिनय

सांई तेरे कारन नैना भये बैरागी ।
तेरा सत दरसन चहौं, कछु और न माँगी ॥
निसु बासर तेरे नाम की, अंतर धुनि जागी ।
फेरत हौं माला मनौं, अँसुवन झरि लागी ॥
पलक तजी इत उक्ति तें, मन माया त्यागी ।
दृष्टि सदा सत सनमुखी, दरसन अनुरागी ॥
मदमाते राते मनौं, दाधे बिरह आगी ।
मिलि प्रभु दूलनदास के, करु परम सुभागी ॥

साईं हो गरीब निवाज ॥
देखि तुम्हें घिन लागत नाहीं, अपने सेवक कै साज ।
मोहिं अस निलज न यहि जग कोऊ, तुम ऐसे प्रभु लाज ॥
और कछू हम चाहत नाहीं, तुम्हरे नाम चरन तें काज ।
दूलनदास गरीब निवाजहु, साईं जगजीवन महराज ॥

सुनहु दयाल मोहिं अपनावहु ॥
जन मन लगन सुधारन साईँ मोरि बनै जो तुमहिं बनावहु ।
इत उत चित्त न जाइ हमारा, सूरत चरन कमल लपटावहु ॥
तब हूँ अब मैं दास तुम्हारा, अब जिनि बिसरौ जिनि बिसरावहु ।
दूलनदास के साईं जगजीवन, हमहूँ काँ भक्तन -माँ लावहु ॥

साईं भजन ना करि जाइ ।
पाँच तसकर संग लागे, मोहि हरकत धाइ ॥
चहत मन सतसंग करनो, अधर बैठि न पाइ ।

चढ़त उतरत रहत छिन छिन, नाहिं तहँ ठहराइ ।
कठिन फाँसी अहै जग की, लियो सबहिं बझाइ ।
पास मन मनि नैन निकटहिं, सत्य गयो भुलाइ ॥
जगजीवन सतगुरु करहु दाया, चरन मत लपटाइ ।
दास दूलन बास सत माँ, सुरत नहिं अलगाइ ॥

साईं सुनहु बिनती मोरि ॥
बुधि बल सकल उपाय हीन मैं, पाँयन परौं दोऊ कर जोरि ।
इत उत कतहूँ जाइ न मनुवाँ, लागि रहै चरनन माँ डोरि ॥
राखहु दासहिं पास आपने, कस को सकिहैं तोरि ।
आपन जानि कै मेटहु मेरे, औगुन सब क्रम भ्रम खोरि ॥
केवल एक हितू तुम मेरे, दुनियाँ भरी लाख करोरि ।
दुलनदास के साईं जगजीवन, माँगौं सत दरस निहोरि ॥
प्रभु तुम किहेउ कृपा बरियाईं ।
तुम कृपाल मैं कृपा अलायक, समुझि निवजतेहु साईं ॥
कूकुर धोये होइ न बाछा, तजै न नीच निचाई ।
बगुला होइ न मानस बासी, बसहिं जे विषै तलाई ॥
प्रभु सुभाउ अनुहार चाहिये, पाय चरन सेवकाई ।
गिरगिट पौरुष करै कहा लगि, दौरि कंडौरे जाई ॥
अब नहिं बनत बनाये मेरे, कहत अहौं गोहराई ।
दूलनदास के साईं जगजीवन, समरथ लेहु बनाई ॥

प्रेम

धनि मोरि आज सुहागिनि घड़िया ॥
आज मोरे अँगना संत चलि आए, कौन करो मिहमनिया ।
निहुरि निहुरि मैं अँगना बुहारौं, मातौ मैं प्रेम लहरिया ॥
भाव कै भात प्रेम कै फुलका, ज्ञान की दाल उतरिया ।
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन बलिहरिया ॥

अब तो अफ़सोस मिटा दिल का, दिलदार दीद में आया है ।
संतों की सुहबत में रह कर, हक़ हादी को सिर नाया है ॥

उपदेस उग्र गहि सत्त नाम, सोइ अष्ट जाम धुनि लाया है।
मुरशिद की मेहर हुई योंकर, मज़बूत जोश उपजाया है॥
हर वक्त तसौवर में सूरत, मूरत अंदर झलकाया है।
बू अली क़लंदर औ फ़रीद तबरेज वही मत गाया है॥
कर सिद्क़ सबूरी लामकान, अल्लाह अलख दरसाया है।
लखि जन दूलन जगजिवन पीर, महबूब मेरे मन भाया है॥
खाविन्द ख़ास ग़ैबी हजूर वह दिल अंदर में लाया है॥

हुआ है मस्त मंसूरा चढ़ा सूली न छोड़ा हक़।
पुकारा इश्क़बाज़ों को अहै मरना यही बरहक़॥
जो बोले आशिक़ाँ याराँ, हमारे दिल में है जी शक।
अहै यह काम सूरों का, लगाये पीर से अब तक॥
शम्सतबरेज़ की सीफ़त, जहाँ में ज़ाहिरा अब तक।
निज़ामुद्दीन सुल्ताना, सभी मेटे दुनी के धक॥
निरख रहे नूर अल्लाह का रहें जीते रहे जब तक।
हुआ हाफ़िज़ दिवाना भी भये ऐसे नहीं हर यक॥
सुना है इश्क़ मजनूँ का, लगी लैला की रहती झक।
जलाकर खाक़ तन कीन्हा, हुए वह भी उसी माफ़िक॥
दुलन जन को दिया मुरशिद, पियाला नाम का थक थक।
वही है शाह जगजीवन, चमकता देखिये लक़लक़॥

करुना

हमारे तो केवल नाम अधार।
पूरन नाम काम दुइ अच्छर, अंतर लागि रहै खुटकार॥
दासन पास बसै निसु बासर, सोवत जागत कबहुँ न न्यार।
अरध नाम टेरत प्रभु धाये, आय तुरत गज गाढ़ निवार॥
जन मन रंजन सब दुख भंजन, सदा सहाय परम हित प्यार।
नाम पुकारत चीर बढ़ायो, द्रुपदी लज्जा के रखवार॥
गौरि गनेस औ सेष रटत जेहिं, नारद सुक सनकादि पुकार।
चारहु मुख जेहिं रटत बिधाता, मंत्र राज सिव मन सिंगार॥

गरीबदास

यारी साहब की शिष्यपरंपरा से अलग परंतु इसी धारा में एक संत महात्मा ग़रीबदास जी हुए हैं। इनका जन्म वैशाख सुदी १५ सं० १७१४ में रोहतक (पंजाब) के छुड़ानी नामक एक गाँव में एक जाट के वंश में हुआ था। ये कबीर को अपना गुरु मानते थे। इन्होंने गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही केवल २२ वर्ष की अवस्था में एक बड़े ग्रंथ की रचना आरंभ की थी जिसमें सत्रह हज़ार चौपाई और साखी इनकी और सात हज़ार कबीर की हैं। इनका शरीर-पात ६१ वर्ष की अवस्था में भादों सुदी २ सं० १८३५ में हुआ। उपर्युक्त चौपाइयों और साखियों से चुनकर बेलवेडियर प्रेस से २०५ पृष्ठों का इनका संग्रह प्रकाशित हुआ है जिसमें इनके प्रायः ९५० पद्य हैं। कबीर को ये अपना गुरु तो मानते ही थे। अतः स्वभाव ही से इनकी रचना-शैली कबीर की रचना-शैली से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। भाव और विचार भी अधिकतर वैसे ही मिलते हैं। परमात्मा और संतों में वही अनन्य भक्ति और आस्था, ढोंग और पाखंड आदि की वही चुटीली आलोचना, तथा साधना और परोपकार आदि में वही अखंड विश्वास मिलता है। एक बात में विभिन्नता अवश्य पाई जाती है। इनके पदों में बहुत से पद पुराणों से लिए हुए जान पड़ते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन धर्म-ग्रंथों को ये श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते थे। कबीर की भाँति इनके पदों में वेद-पुराण की निंदा नहीं मिलती।

निम्नलिखित पद बेलवेडियर प्रेस के संग्रह से चुने गए हैं।

भक्ति का अंग

पारस हमरा नाम है लोहा हमरी जात।
जड़ सेती जड़ पलटिया तुम कूँ केतिक बात॥

बिना भगति क्या होत है ध्रू कूँ पूछे जाहि।
सवा सेर अन्न पावते अटल राज दिया ताहि॥

बिना भगति क्या होत है कासी करवत लेह।
मिटै नहीं मन बासना बहु बिधि भरम सँदेह॥
भगति बिना क्या होत है भरम रहा संसार।
रत्ती कंचन पाय नहिं रावन चलती बार॥
संग सुदामा संत थे दारिद का दरियाव।
कंचन महल बकस दिये तंदुल भेंट चढ़ाव॥

बिनती का अंग

साहब मेरी बीनती सुनो गरीब निवाज।
जल की बूँद महल रचा भला बनाया साज॥
साहब मेरी बीनती सुनिये अरस अवाज।
मादर पिदर करीम तू पुत्र पिता को लाज॥
साहब मेरी बीनती कर जोरैं करतार।
तन मन धन कुरबान है दीजै मोहि दीदार॥
पाँच तत्त के महल में नौ तत का इक और।
नौ तत से इक अगम है पारब्रह्म की पौर॥
सुरत निरत मन पवन कूँ करो एकत्तर यार।
द्वादस उलट समोय ले दिल अंदर दीदार॥
चार पदारथ महल में सुरत निरत मन पौन।
सिव द्वारा खुलि है जबै दरसै चौदह भौन॥
सील सँतोष बिबेक बुध दया धर्म इक तार।
अकल यकीन इमान रख गही बस्तु निज सार॥
साहब तेरी साहबी कैसे जानी जाय।
त्रिसरेनू से झीन है नैनों रहा समाय॥

लै का अंग

लै लागी जब जानिये जग सूँ रहै उदास।
नाम रटै निर्भय कला हर दर हीरा स्वांस॥
लै लागी तब जानिये जग सूँ रहै उदास।
नाम रटै निरदुंद होय अनहद पुर में बास॥

लै लागी तब जानिये हरदम नाम उचार।
एकै मन एकै दिसा साँई के दरबार ॥
लै लागी तब जानिये हर दम नाम उचार।
धीरे धीरे होयगा वह अल्लह दीदार ॥

रेखता

अजब महरम मिला ज्ञान अग है खुला, परख परतीत सूँ दुंद भागा।
सबद की संघ में फंद मनुवा गया, बिरह घनघोर में हंस जागा ॥
अष्ट दल कमल मध जाप अजपा चलै, मूल कूँ बँध बैराट छाया।
तिरकुटी तीर बहु नीर नदिया बहैं, सिंध सरवर भरे हंस न्हाया ॥
खेचरी भूचरी चाचरी उनमुनी, अकल अगोचरी नाद हेरा।
सुन्न सतलोक कूँ गमन संसा किया, अगम पुर धाम महबूब मेरा ॥
अच्छर की डोर घनघोर में मिल गई, भेद भेदा में करतार महली।
दास गरीब यह विषम बैराग है, समझ देखी नहीं बात सहली॥

बिरह की पीर जस गात गूदा नहीं, बोझ पिंजर गया अस्थि सूखा।
उनमुनी रेख धुन ध्यान निःचल भया, पाँच जहूद तन ठीक फूँका ॥
लगेगी दाह जब धाहै देता फिरै, बिरह के अंग में रोवता है।
पलक आंझू झरे ध्यान बिरहन धरै, प्रेम रस रीत तन धोवता है ॥
हाड तन चाम गूदा असत गलत है, उड़ैगा गात तन रुई रंगा।
पिंड तन पीन उदीत बैराग है, देत है मद्र ज्यूँ कूक बंगा ॥
हंस परमहंस सरबंग से जा मिला, बिरह बियोग यह जोग जोगी।
दास गरीब जहँ पास प्यासे फिरैं, पीवते सही रस भोग भोगी ॥

बेत

बंदे जान साहब सार वे।
पिदर मादर आप कादर नहीं बुल परिवार वे ॥
जल बूँद से जिन साज साजा लहम दरिया नूर वे।
है सकल सरबंग साहब देख निकट न दूर वे ॥
जिन्द अजूनी बेनमूनो जागता गुरु पीर है।
उलट पटन मेरु चढ़ना लहम दरिया तीर वे ॥

अजब साहब है सुभान खोज दम का कौन वे ।
तिर्कुटी के घाट चढ़कर ध्यान धर दुरबीन वे ॥
अजब दरिया है हिरंबर परम हंस पिछान वे ।
आब खाक न बाद आतिस ना जमीं असमान वे ॥
अलख आप अलाह साहब कुर्स कुंज जहूर वे ।
अर्स ऊपर महल मालिक दर झिलमिला दूर वे ॥
मौला करीम अदाय खूंबी धुन सोहंसी जाप वे ।
बांग रोज निमाज कलमा है सबद गरगाप वे ॥
निर्भय निहंगम नाद बाजै निरख कर टुक देख वे ।
अरसी अजूनी जिंद जोगी अलख आदि अलेख वे ॥
मढी महल न तासु ये आसन अचंभो ऐन वे ।
पाजी गुलाम गरीब तेरा देखता सुख चैन वे ॥

बंदे देख ले निज मूल वे ।
कला कोटि असंख धारा अधर निर्गुन फूल वे ॥
है अबंच असंग अवगत अधर आदि अनाद वे ।
कमल मोती जगमगै जहं सुरत निरत समाध वे ॥
भवन भारी रवन सोभा भजो राम रहीम वे ।
साहब धनीं कूँ याद कर जप अलह अलख करीम वे ॥
मादर पिदर है संग तेरे बिछुरता नहिँ पलक वे ।
कायम कला कुरबान जाँ खालिक बसे है खलक वे ॥
खालिक धनी है खलक में तूँ झलक पलक समीप वे ।
अरस आसन है बिहंगम अधर चसमें जोय वै ॥
बैराग में इक घाट है उस घाट में इक द्वार है ।
उस द्वार में इक देहरा जहं खूब है इक यार वे ॥
सूझ है दिलदार साहब देखना नहिं भूल वे ।
गरीब दास निवास नग पर भई सेजां सूल वे ॥

बंदे अधर बेड़ा चलत वे ।
साँच मान सुगंध साहब नहीं करिया लगत वे ॥

अधर पुहमी अधर छिः गिरवर अधर सरवर ताल वे ।
अधर नदियाँ बहत वे जहँ अधर हीरे लाल वे ॥
अधर नौका अधर खेवट अधर पानी पवन वे ।
अधर चंदा अधर सूरज अधर चौदह भुवन वे ॥
अधर बागं अधर बेजं अधर कूप तलाव वे ।
अधर माली कुहकता है अधर फूल खिलाव वे ॥
अधर बँगला अधर डेवढ़ी अधर साहब आप वे ।
अधर पुर गढ़ हूंट नगरी नाभि नासा माथ वे ॥
हूंठ हाथ हजूर हासिल अधर पर इक अधर वे ।
गरीबदासं अधर ध्यानी ओढ़ि एकै चदर वे ॥

राग कल्यान

कबहुँ न होवै मैला नाम धन कबहुँ न होवै मैला ॥
चेतन होकर जड़ कूं पूजै मूरख मूढर बैला ।
जिस दगड़े पंडित उठ चाले पीछे पड़ गया गैला ॥
औघट घाटी पंथ बिकट है जहां हमारी सैला ।
बिनय बंदगी म्हैसा कीजै बोक बनै के खैला ॥
कूकर सूकर खर कीजैगा छांड़ सकल बद फैला ।
घरही कोस पचास परत हैं ज्यूं तेली के बैला ॥
पीसत भाँग तमांखू पीवै मूरख मुख सूं मैला ।
सहस इकीसो छः से दम है निस बासर तूं लैला ॥
गरीब दास सुन पार उतर गये अनहद नाद बुरैला ।

घट ही में चंद चकोरा साध घट ही चंद चकोरा ॥
दामिनि दमकै घनहर गरजै बोलै दादुर मोरा ।
सतगुरु गस्ती गस्त फिरावै फिरता ज्ञान ढँढोरा ॥
अदली राज अदल बादसाही पाँच पचीसो चोरा ।
चीन्हो सबद सिंध घर कीजै होना गारत गोरा ॥
त्रिकुटी महल में आसन मोरो जहं न चलै जम जोरा ।
दास गरीब भक्त कों कीजै हुआ जात है भोरा ॥

नाम निरंजन नीका साधो नाम निरंजन नीका।
तीरथ बरत थोथरे लागैं जप तप संजम फीका ॥
भजन बंदगी पार उतारै समरथ जीवन जीका।
करम कांड ब्योहार करत है नाम अभय पद टीका ॥
कहा भयो छत्र की छांह चलैया राजपाट दिहली का।
नाम सहित बेवतन भला है दर दर माँगै भीखा ॥
आदि अनादि भक्ति है नौधा सुनो हमारी सीखा।
गरीबदास सतगुरु की सरनै गगन मँडल में दीखा ॥

राग परज

लेखा देना रे धनी का लेखा देना रे ॥
रागी राग उचारहीं गावत मुख बैना रे।
हस्ती घोड़े पालकी छाँड़ी सब सैना रे ॥
रोकड़ ढकी धरी रही सब जेवर गहना रे।
फूँक दिया मैदान में कुछ लेन न देना रे ॥
मुगदर मारै सीस में जम किंकर दहना रे।
उतर चला तागीर हो ज्यूं मरदक सहना रे ॥
फूला सो कुम्हलात है चुनिया सो ढहना रे।
चित्रगुप्त लेखा लिया जब कागद पहना रे ॥
चलिये अब दीवान में सतगुरु से कहना रे।
मुसकिल से आसान हो ज्यूं बहुर मरै ना रे ॥
बोया अपना सब लुनै पकरैं हम अहना रे।
चरन कमल के ध्यान से छूटै सब फैना रे ॥
परानन्दनी संग है जाके कमधैना रे।
गरीबदास फिर आवही जो अजर जरै ना रे ॥

भजन कर राम दुहाई रे ॥
जनम अमोला तुझ दिया नर देही पाई रे।
देही कूँ या ललचहीं सुर नर मुनि भाई रे ॥

सनकादिक नारद रटैं चहूँ वेदा गाई रे ।
भक्ति करै भवजल तरै सतगुरु सिरनाई रे ॥
मिरगा कठिन कठोर है कहो कहां डहकाई रे ।
कस्तूरी है नाभ में बाहर भरमाई रे ।
राजा बूड़े मान में पंडित चतुराई रे ॥
ज्ञान गली में बंक है तन धूर मिलाई रे ।
उस साहब कूं याद कर जिन सौज बनाई रे ॥
देखत ही हो जात है परबत से राई रे ॥
कंचन काया छार होय तन ठोंक जराई रे ।
मूरख भोंदू बावरे क्या मुकत कराई रे ॥
चमरा जुलहा तर गये और छीपा नाई रे ।
गनिका चढ़ी बिमान में सुर्गापुर जाई रे ॥
स्योरी भिलनी तर गई और सदन कसाई रे ।
नीच तरे तो सूँ कहूँ नर मूढ़ अन्याई रे ॥
सबद हमारा साँच है और ऊँट की बाई रे ।
धुएं कैसे धौलहर तिहुं लोक चलाई रे ॥
कलविष कसमल सब कटै तन कंचन काई रे ।
गरीबदास निज नाम है नित परबी न्हाई रे ॥

राग बँगला

बँगला खूब बना है जोर, जामें सूरज चंद कड़ोर ॥
या बँगला के द्वादस दर हैं मध्य पवन परवाना ।
नाम भजे तो जुग जुग तेरा नातर होत बिराना ॥
पाँच तत्त और तीन गुनन का बँगला अधिक बनाया ।
या बँगले में साहब बैठा सतगुरु भेद लखाया ॥
रोम रोम तारागन दमकै कली कली दर चंदा ।
सूरजमुखी सबत्तर साजै बाँधा परमानंदा ॥
बँगले में बैकुंठ बनाया सप्त पुरी सैलाना ।
भुवन चतुरदस लोक बिराजै कारीगर कुरबाना ॥

या बँगले में जाप होत है ररंकार धुन सेसा ।
सुर नर मुनि जन माला फेरैं ब्रह्मा बिस्नु महेसा ।।
गन गंधर्प गलतान ध्यान में तेंतिस कोट बिराजैं ।
सुर निरन्ती बीना सुनिये अनहद नादु बाजैं ।।
इला पिंगला पेंग परी है सुखमन झूल झुलंती ।
सुरत सनेही सबद सुनत है राग होत निरतन्ती ।।
पाँच पचीसो मगन भये हैं देखो परमानंदा ।
मन चंचल निहचल भया हंसा मिलै परम सुख सिंधा ।।
नभ की डोर गगन सूँ बाँधे तौ इहां रहने पावै ।
दसो दिसा सूँ पवन झकोरै काहे दोस लगावै ।।
आठो बखत अल्हैया बाजै होता सबद टंकोरा ।
गरीबदास यूं ध्यान लगावै जैसे चंद चकोरा ।।

राग आसावरी

मन तू चल रे सुख के सागर, जहाँ सब्द सिंध रतनागर ।।
कोट जनम जुग भरमत हो गये, कछू न हाथ लगा रे ।
कूकर सूकर खर भया बौरे, कौवा हंस बिगारे ।।
कोट जनम जुग राजा कीन्हा, मिटी न मन की आसा ।
भिच्छुक होकर दर दर हाँडा, मिला न निरगुन आसा ।।
इंद्र कुबेर ईस की पदवी, ब्रह्मा बरुन धर्मराया ।
बिश्वनाथ के पुर कूँ पहुँचा, बहुर अपूठा आया ।।
संख जनम जुग मरते हो गये, जीवत कू न मरै रे ।
द्वादस मद्ध महल मठ बौरे, बहुर न देह धरै रे ।।
दोजख भिस्त सबै तैं देखै, राज पाट के रसिया ।
तिरलोकी के तिरपत नाहीं, यह मन भोगी खसिया ।।
सतगुरु मिलै तो इच्छा मेटै, पद मिल पदहिं समाना ।
चल हंसा उस देस पठाऊँ, जहँ आद अमर अस्थाना ।।
चारि मुक्ति जहँ चंपी करिहैं, माया हो रहि दासी ।
दास गरीब अभय पद परसे, मिले राम अबिनासी ।।

संतो मन की माला फेरो, यह मन बाहर जात हेरो ॥
तीन लोक औ भुवन चतुरदस एक पलक फिर आवै।
बिनहीं पंखों उड़ै पखेरू याका खोज न पावै ॥
तत की तसबी सुरत सुमिरनी दृढ़ के धागे पोई।
हर दम नाम निरंजन साहब यह सुमिरन कर लोई ॥
किलयं ओअं हिरियं सिरियं सोहं सुरत लगावै।
पंच नाम गायत्री गैबी आतम तत्त जगावै ॥
ररंकार उच्चार अनाहद रोम रोम रस तालं।
कर की माला कौन काम जब आतम राम अबदालं ॥
सुरग पताल सृष्टि में डोलै सर्ब लोक सैलानी।
यह मन भैरौ भूत बितालं यह मन अलख बिनानी ॥
यह मन ब्रह्मा बिस्नु महेसं इंदर बरुन कुबेरं।
मन ही धर्मराय है भाई सकल दूत जम जेरं ॥

अवधू तेल न मन का लाहा चीन्हो ज्ञान अगाहा ॥
कासी गहन वहन भये प्रानी प्राग न्हात है माहा।
बिना नाम जोनी नहिं छूटै भरमै भूल भुलाना ॥
सहस मुखी गंगा नहिं न्हाते खोदैं ऊजड़ बाहा।
नारद ब्यास पूछ सुकदे कूं चारो बेद उगाहा ॥
पंथ पुरातन खोज लिया है चाले अवगत राहा।
सुकदे ज्ञान सुना संकर का मिटी न मन की दाहा ॥
दो तपिया गुन तप कूं लागै बंदे हूहू हाहा।
लगा सराप परे भौसागर कीन्हे गज अरु ग्राहा ॥
सिव संकर के तिलक किया है नारद सोधा साहा।
ब्रह्मादिक ने चौरी रचिया किया गौर का ब्याहा ॥
इक सौ आठ गये तन परलै बहुर किया निरबाहा।
सिव के संग गौरजा उधरी मिट गया काल उसाहा ॥
ज्यूं सरपा की पूँछ पकर करि अंदर उलटा जाहा।
नीर कबीर सिंध सुखसागर पद मिल गया जुलाहा ॥

हमरा ज्ञान ध्यान नहिं बूझा समझ न परी अगाहा।
दास गरीब पार कस उतरै भेंटा नहीं मलाहा ॥

राग बिलावल

रब राजिक तू महरमी करतार त्रिनानी।
अवगत अलख अलाह तू कादिर परवानी ॥
खालिक मालिक मेहरबां सरबंगी स्वामी।
निःचल अचल अगाध तू निरगुन निःकामी ॥
गंध पुहुप ज्यूं रम रहा फूला गुलजारा।
राम रहीम करीम तू कुदरत से न्यारा ॥
पूरन ब्रह्म परम गुरु अकाल अबिनासी।
सब्द अतीत बिहंगमा किस काल उदासी ॥
अनुरागी निहतंत कूं तन मन सब अरपूं।
सीस करूँ तिस वारने चित चंदन चरचूं ॥
उस साहब महबूब कूं कर हर दम मुजरा।
चित से नेक न बीसरूं दिल अंदर हुजरा ॥

मतवालों के महल की सूफी क्या पावै।
अरस खुरदनी खीर है सतगुरु बतलावै ॥
सुन्न दरीबे हाट है जहं अमृत चुवता।
ज्ञानी घाट न पावहीं खाली सब कबिता ॥
टाँक बिकै नहिं मोल कूं जो तुलै न तौला।
कूँची सब्द लगाय कर सतगुरु पट खोला ॥
फूल झरै भाठी सरै जहँ फिरैं पियाले।
नूर महल बेगमपुरा घूमैं मतवाले ॥
त्रिकुटी सिंध पिछान ले तिरबेनी धारा।
बेड़े बाट बिहंगमी उतरै भौ पारा ॥
अठसठ तीरथ ताल हैं उस तरवर माहीं।
अमर कंद फल नूर के कोइ साधू खाहीं ॥

चिंता मन कूं चेत रे मुक्ताहल पाया ।
सतगुर मिलिया जौहरी जिन्ह भेद बताया ॥
हीरामनि पारस परस लख लाल नरेसा ।
मोती जवाहर जोगिया वह दुर्लभ देसा ॥
कामधेनु कलवृच्छ हैं दरबान हमारे ।
अठसिधि नौनिधि आँगने नित कारज सारे ॥
राग छतीसौ रिधि सबै जहँ रास रवानी ।
ताल तँबूरे तूर हैं अवगत निरबानी ॥
सुन में बाजे डुगडुगी बरवै पद गावैं ।
चल हंसा उस देस कूं जो बहुर न आवै ॥
नूरमहल गुलजार है निज सब्द समाये ।
हंसा बहुरि न आवहीं सत लोक सिधाये ॥

मैं अमली निज नाम का मद खूब चुवाया ।
पिया पियाला प्रेम का सिर सांटे पाया ॥
गन गंधर्व जोधा बड़े कैसे ठहराया ।
सील खेत जन रंग में सतगुरु सर लाया ॥
पाँच सखी नित संग हैं कैसे हैं त्यागी ।
अमर लोक अनहद रते सोई अनुरागी ॥
परपंची पाकर लिया बिरहे का कंपा ।
जहँ संख पद्म उजियार हैं झलकत है चंपा ॥
कुंभ कलाली भर दिया महँगा मद नीका ।
और अमल नापाक है सब लागत फीका ॥
एक रती पावै नहीं बिन सीस चढ़ाये ।
वह साहब राजी नहीं नर मुंड मुड़ाये ॥

सजन सुराही हाथ है अमृत का प्याला ।
हम बिरहिनी बिरहैं रंगी कोई पूछै हाला ॥
चोखा फूल चुवाइया बिरहिन के ताईं ।
मतवाला महबूब है मेरो अलख गुसाईं ॥

प्रेम पियाला पीय कर मैं भई दिवानी।
कहा कहूँ उस देस की कुछ अकथ कहानी॥
बरवै राग सुनाय कर गल डारी फाँसी।
गाँठ घुली खूलै नहीं साजन अबिनासी॥
गुझ की बात किस कूँ कहूँ कोई महरम जानै।
अगली पिछली मत गई वेधी इक तानै॥

सुन्न सरोवर हंस मन मोती चुग आया।
अगर दीप सतलोक में ले अजर झराया॥
हंस हिरंबर हेत हैं हैरान निसानी।
सुख सागर मुक्ता भये मिल बारह बानी॥
पिंड अंड ब्रह्मंड से वह न्यारा नादू।
सुन्न समझिया बेग रे गये बाद बिवादू॥
सतगुर सार जु गाड्या धर कूँची ताला।
रंग महल में रोसनी घट भया उजाला॥
दीपक जोड़ा नूर का ले अस्थिर बाती।
बहुर न भोजन आवहीं निरगुन के नाती॥

ज्ञान तुरंगम पाड़िया ताजी दरियाई।
पासर घाली प्रेमी की चित चाबुक लाई॥
प्रेम धाम से ऊतरे हुक्मी सैलानी।
सबद सिंध मेला करैं हंसों के दानी॥
असंख जुग परलै गये जब के गुन गाऊँ।
ज्ञान गुरज है दस्त में ले हंस चिताऊँ॥
सील हमारा सेल है औ छिमा कटारी।
तत्त तीर तक मार हूँ कहूँ जात अनारी॥
बुधि हमारी बंदूक है दिल अंदर दारू।
प्रेम पियाला सारका चित चकमक झारू॥

दरदमंद दरवेस है वेदरद कसाई।
संत समागम कीजिये तज लोक बड़ाई॥

डिंभी डिंभ न छोड़हीं मरघट के पूता ।
घर घर द्वारे फिरत हैं कलजुग के कूता ॥
डिंभ करैं डुंगर चढ़ैं तप होम अँगीठी ।
पंच अगिन पाखंड है यह मुक्ति बसीठी ॥
पाती तोरैं क्या हुआ बहु पान झरोरैं ।
तुलसी बकरा खा गया ठाकुर क्या बोरैं ॥
पीतल ही का थाल है पीतल का लोटा ।
जड़ मूरत कूँ पूजते आवैगा टोटा ॥
नजर निहाल दयाल हैं मेरे अंतरजामी ।
सोलह कला सपूरना लख बारह बानी ॥
उलट मेरुडंड चढ़ गये देखो सो देखा ।
संख कोटि रबि झिलमिलें गिनती नहिं लेखा ॥
बरन बरन के तेज हैं पँचरंग परेवा ।
मूरत कोट असंख है जा मध इक देवा ॥
जाके ब्रह्मा झाड़ू देत हैं संकर करैं पंखा ।
सेस चरन चंपी लगैं अगमी गढ़ बंका ॥
धरत ऐनक दुरबीन कूँ धुन ध्यान लगावै ।
उलट कमल अरसा चढ़ै तब नजरों आवै ॥
सत्त कहन कूँ राम है दूजा नहिं देवा ॥
ब्रह्मा बिस्न महेस से जाकी करते सेवा ॥
जप तप तीरथ थोथरे जाकी क्या आसा ।
कोट जग्ग पन दान से जम कटै न फाँसा ॥
इहां देन उहां लेन हैं यह मिटै न झगरा ।
बिना पंथ की बाट है पावै को दगरा ॥
बिन ही इच्छा देन है सो दान कहावै ।
फल बंछै नहिं तासु का अमरापुर जावै ॥
सकल दीप नौ खंड के छत्री जिन जीते ।
सो तो पद में ना मिले विद्या गुन चीते ॥

राम कहे मेरे साध कूँ दुख मत दीजो कोय ।
साध दुखावै मैं दुखी मेरा आपा भी दुख होय ॥
हिरनाकुस उदर बिदारिया में ही मारा कंस ।
जो मेरे साध कूँ आय दुखावै जाका खोऊं वंस ॥
पहुँचूँगा छिन एक में जन अपने के हेत ।
तेंतीस कोट की बन्य छुटाई रावन मारा खेत ॥
कला बधाऊं संत की परगट करिहै मोय ।
गरीबदास जुलहा कहै मेरा साध न दहियो कोय ॥

करो निबेरा रे नरो, जम माँगे बाकी ।
कर जोड़े धर राय खड़े सतगुरु है साखी ॥
माटी का कलबूत है सतगुरु का साजा ।
उस नगरी डेरा करौ जहं सबद अवाजा ॥
नूर मिलैगा नूर में माटी में माटी ।
कोइक साधू चढ़ गये उस औघट घाटी ॥
रोम रोम में राम है अजपा जप लीजै ।
सुरत सुहंगम डोर गहि प्याला मधु पीजै ॥
जम की फरदी ना चढ़ै सोई जन सूरा ।
परसा दास गरीब है जोगेसर पूरा ॥

राग काफी

मन मगन भया जब क्या गावै ॥
ये गुन इंद्री दमन करैगा बस्तु अमोली सो पावै ॥
तिरलोकी की इच्छा छाँड़े जग में बिचरै निरदावै ॥
उलटी सुलटी निरति निरंतर बाहर से भीतर लावै ।
अधर सिंहासन अविचल आसन जहं उहां सूरती ठहरावै ॥
त्रिकुटी महल में सेज बिछी है द्वादस अंदर छिप जावै ।
अमर अजर निज मूरत सूरत ओअं सोहं दम ध्यावै ॥
सकल मनोरथ पूरन साहिब बहुर नहीं भौजल आवै ।
गरीबदास सतपुरुष विदेही साँचा सतगुरु दरसावै ॥

तारेंगे तहकीक सतगुरु तारेंगे ॥
घट ही में गंगा घट ही में जमुना घट ही में जगदीस ।
तुम्हरे ग्याना तुम्हरे ध्याना तुम्हरे तारन की परतीत ॥
मन कर धीरा बाँध ले बौरे छांड देय पिछलो की रीति ।
दास गरीब सतगुरु का चेला टारैं जम की रसीत ॥
जल थल साथी एक है रे, डुंगर डहर दयाल ।
दसों दिसा के दरसन, ना काहे जोरा काल ॥

काष्ठजिह्वा स्वामी

देवतीर्थ काष्ठजिह्वा स्वामी काशी के निवासी और संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे। पहले यह शैव थे पर बाद में अयोध्या के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त रामसखे जी के प्रभाव में आकर वैष्णव हो गए थे। उनका शिष्यत्व इन्होंने स्वीकार कर लिया था पर पहले दोनों में बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमें रामसखे जी को नीचा देखना पड़ा था। इससे विरक्त होकर देवतीर्थ जी ने अपनी जीभ छिदवा कर उस में लकड़ी की एक सलाई डाल दी थी। तभी से इनका नाम काष्ठजिह्वा स्वामी पड़ गया था। काशी विश्वनाथ के प्रसिद्ध मंदिर की एक सीढ़ी में इनका नाम खुदा हुआ है। इनकी रचनाओं से सीता-राम की बड़ी अनन्य भक्ति प्रगट होती है और इसी से ये "सीतारमैया" काष्ठजिह्वा स्वामी कहे जाते हैं।

इनके मुख्य ग्रंथ ये हैं—'विनयामृत', 'रामलगन', 'रामायण', 'परिचर्या', 'वैराग्यप्रदीप' और 'पदावली'। अंतिम ग्रंथ की रचना सं० १८९७ में हुई थी। यह काशी के भूतपूर्व महाराज ईश्वरी नारायण सिंह जी के गुरु थे और इन के पद अब भी काशी दर्बार में गाये जाते हैं।

प्रेम

चीखि चीखि चसकन से राम सुधा पीजिये।
रामचरित सागर में रोम रोम भींजिये॥
राग द्वेस जग बढ़ाइ काहे को छीजिये।
परदुक्खन देखत हीं आप सों पसीजिये॥
तोरि तारि खैंचि खाँचि स्रुति को नहिं गींजिये।
जामें रस बनो रहै वही अर्थ कीजिये॥
बहुत काल संतन के दोऊ चरन मींजिये।
देवदृष्टि पाइ बिमल जुग जुग लौं लीजिये॥

बसो यह सिय रघुबर को ध्यान ।
स्यामल गौर किसोर बयस दोउ, जे जानहुँ की जान ॥
लटकत लट लहरत स्रुति कुंडल गहनन की झमकान ।
आपुस में हँसि हँसि कै दोऊ, खात खियावत पान ॥
जहँ बसंत नित महमह महकत, लहरत लता बितान ।
बिहरत दोउ तेहि सुमन बाग में, अलि कोकिल कर गान ॥
ओहि रहस्य सुख रस को कैसे, जानि सकै अज्ञान ।
देवहु की जहँ मति पहुँचत नहिं, थकि गये वेद पुरान ॥

बिनय

मैं तो मन ही मन पछिताय रह्यौ ।
साज समाज सरस पायहु के, करसे रतन गँवाय रह्यौ ॥
यह नर तन यह काया उत्तम, बिन सतसंग नसाय रह्यौ ।
पढ़्यौ गुन्यौ सिखयौ औरन को आप विषय लपटाय रह्यौ ॥
चित्र विचित्र करम को धागा, जनम जनम अरुझाय रह्यौ ।
काहे को कबहूँ यह सुरझहि दिन दिन अधिक फँसाय रह्यौ ॥
सदा मुक्ति को ज्ञान अगम लखि, गले हार पहिराय रह्यौ ।
जिव को सूत सिवहिं से अरुझै, विनती देव सुनाय रह्यौ ॥

उपदेश

समुझ बूझ जिय में बंदे, क्या करना है क्या करता है ।
गुन का मालिक आपै बनता, अरु दोष राम पर धरता है ॥
अपना धरम छोड़ि औरों के, ओछे धरम पकरता है ।
अजब नसे की गफलत आई, साहिब को नहिं डरता है ॥
जिनके खातिर जान माल से, बहि बहि के तू मरता है ।
वे क्या तेरे काम पड़ेंगे, उनका लहना भरता है ॥
देव धरम चाहे सो करि ले, आवागमन न टरता है ।
प्यारे केवल राम नाम के, तेरा मतलब सरता है ॥

कोई सफा न देखा दिल का, साँचा बना झिलमिल का।
कोइ बिल्ली कोइ बगुला देखा, पहिरे फकीरी खिलका ॥
बाहर मुख से ज्ञान छाँटते, भीतर कोरा छिलका।
भजन करन में गजब आलसी, जैसे थका मँजिल का।
औरन के पीसन में सुरमा, जैसे बट्टा सिल का ॥
पढ़े लिखे कुछ ऐसेहि वैसे, बड़ा घमँड अकिल का।
जहरी बचन यों मुख से निकलें, साँप निकलता बिल का ॥
भजन बिना सब जपतप झूठा, झूठा तवक्का फजल का।
क्या कहिये गुरुदेव न पाया, महरम आँख के तिल का ॥

नामदेव

नामदेव का जन्म दामासेट दर्जी के घर गोनाबाई के गर्भ से पंढरपुर[1] में हुआ था। महाराष्ट्र देश में इनका जन्म-काल प्रायः ११९२ शाका अर्थात् सं० १३२७ माना जाता है। परंतु कुछ विद्वान इनका जन्म-काल इस के १०० वर्ष बाद अर्थात् सं० १४२७ में मानते हैं। इस का कारण वह यह बतलाते हैं कि चौदहवीं शताब्दी तक महाराष्ट्र प्रदेश में मुसलमानों का प्रवेश नहीं हो सका था और नामदेव की कविता मुसलमानों से विशेष रूप से प्रभावित है। इसलिए इनका जन्मकाल अंततः १०० वर्ष पीछे ही मानना ठीक जान पड़ा। जो हो, यह विपय अभी विवादग्रस्त है।

इनके गुरु एक कोई ज्ञानेश्वर महाराज कहे जाते हैं जो कि नाथपंथी (गुरु गोरखनाथ के अनुयायी) धारा के एक प्रसिद्ध जोगी गहनीनाथ (सं० १२८०—१३३०) के शिष्य निवृत्तिनाथ के छोटे भाई और शिष्य थे।

नामदेव जी शैशव से बड़े भक्त थे और गृहस्थ होते हुए भी संसार से एक प्रकार से तटस्थ होकर सदा संतसमागम में लीन रहा करते थे। इसी से इनका कपड़े सीने का पुश्तैनी व्यवसाय भी नष्ट हो गया और इन्हें घोर दरिद्रता का सामना करना पड़ा। पर ये कभी भी अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुए। इनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी पर बाद में इन्हे हिंदी से प्रेम हुआ और बहुत से पद इन्होंने हिंदी में भी रचे। पंढरपुर के आदिदेव बिठोबा को ही ये अपना इष्टदेव मानते थे। इनके बहुत से पद आदिग्रंथ में संगृहीत हैं। खोज में इनके चार ग्रंथ—'नामदेव जी का पद,' 'राग सोरठ का पद,' 'नामदेव जी की वाणी',

---

[1] नामदेव का जन्म सतारा ज़िले के अंतर्गत किसी नरसी वमनी गाँव में हुआ था। पंढरपुर में इनके पिता उस घटना के अनंतर किसी समय जाकर वसे थे। प० च०

और 'नामदेव जी की साखी' मिले हैं। इनकी भक्ति बड़ी गम्भीर थी और ये बड़े भारी गवैये भी कहे जाते हैं। बहुत से चमत्कार भी इनके संबंध में प्रसिद्ध हैं। कबीर और रैदास ने इन्हें आदर से स्मरण किया है। इस से स्पष्ट है कि संतों में इन का स्थान बहुत ऊँचा था।

भेद

एक अनेक वियापक पूरक, जित देखौं तित सोई।
माया चित्र बिचित्र बिमोहत, बिरला बूझै कोई॥
सब गोबिंद है सब गोबिंद है, गोबिंद बिन नहिं कोई।
सूत एक मनि सत्तसहस जस, ओत पोत प्रभु सोई॥
जल तरंग अरु फेन बुदबुदा, जल तें भिन्न न होई।
यह प्रपंच परब्रह्म की लीला, बिचरत आन न होई॥
मिथ्या भ्रम अरु स्वप्न मनोरथ, सत्य पदारथ जाना।
सुकिरत मनसा गुरु उपदेशी, जागत ही मन माना॥
कहत नामदेव हरि की रचना, देखो हृदय बिचारी।
घट घट अंतर सर्व निरंतर, केवल एक मुरारी॥

प्रेम

भाई रे इन नैनन हरि पेखो।
हरि की भक्ति साधु की संगति, सोई यह दिल लेखो॥
चरन सोई जो नचत प्रेम से, कर सोई जो पूजा।
सीस सोई जो नवै साधु के, रसना और न दूजा॥
यह संसार हाट को लेखा, सब को बनिजहिं आया।
जिन जस लादा तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया॥
आतम राम देंह धरि आयो, तामें हरि को देखो।
कहत नामदेव बलि बलि जैहौं, हरि भजि और न लेखो॥

नाम महिमा

तत्त गहन को नाम है, भजि लीजै सोई।
लीला सिंध अगाध है, गति लखै न कोई॥

कंचन मेरु सुमेरु, हय गज दीजै दाना।
कोटि गऊ जो दान दे, नहिं नाम समाना॥
जोग जग्य तें कहा सरै, तीरथ ब्रत दाना।
ओसै प्यास न भागिहै, भजिये भगवाना॥
पूजा करि साधूजनहिं, हरि को प्रन धारी।
उनतें गोबिंद पाइये, वे पर उपकारी॥
एकै मन एकै दसा, एकै ब्रत धरिये।
नामदेव नाम जहाज है, भवसागर तरिये॥

सदना जी

ये जाति के कसाई थे और इनका समय पंद्रहवीं शताब्दी का पिछला हिस्सा[1] कहा जाता है। ये जीवहत्या नहीं करते थे। उदाहरण के रूप में इनका केवल एक पद दिया जा सका।

विनय

नृप कन्या के कारने, एक भयो भेष धारी।
कामारथी सुवारथी, वा की पैज सँवारी॥
तव गुन कहा जगत-गुरा, जो कर्म न नासै।
सिंह सरन कत जाइये, जो जंबुक ग्रासै॥
एक बूंद जल कारने, चातक दुख पावै।
प्रान गये सागर मिलै, पुनि काम न आवै॥
प्रान जो थाके थिर नहीं, कैसे बिरमावो।
बूड़ि मुए नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो॥
मैं नाहीं कछु हौं नहीं, कछु आहि न मोरा।
औसर लज्जा राख लेहु, सदना जन तोरा॥

---

[1] संत सधना वा सदना संत नामदेव के कुछ पूर्ववर्ती वा समकालीन थे क्योंकि इनके नामका उल्लेख उनकी रचनाओं में पाया जाता है। प० च०

धर्मदास

इनका भी समय पंद्रहवीं शताब्दी का पिछला हिस्सा[1] था। कबीर के बाद उनकी गद्दी इन्हीं का मिली। यह कबीर के प्रधान शिष्यों में से थे और इनका जन्म-स्थान बांधोगढ़ रीवाँ, और सत्संग-स्थान काशी था।

शब्द

गुरु मिले अगम के बासी ॥
उनके चरन कमल चित दीजे, सतगुरु मिले अबिनासी।
उनकी सीत प्रसादी लीजे, छूटि जाय चौरासी ॥
अम्रत बुंद झरै घट भीतर, साध संत जन लासी।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सार सब्द मन बासी ॥

गुरु मोहिं खूब निहाल कियो।
बूड़त जात रहे भव सागर, पकरि के बाँहि लियो ॥
चौदह लोक बसें जम चौदह, उनहुँ से छोरि लियो।
तिनुका तोरि दियो परवाना, माथे हाथ दियो ॥
नाम सुना दियो कंठी माला, माथे तिलक दियो।
धरमदास बिनवै कर जोरी, पूरा लोक दियो ॥

नैन दरस बिन मरत पियासा ॥
तुमहीं छांड़ि भजूँ नहिं औरे, नाहिं दूसरी आसा।
आठो पहर रहूँ कर जोरी, करि लेहु आपन दासा ॥
निसु बासर रहूँ लव लीना, बिनु देखे नहिं बिस्वासा।
धरमदास बिनवै करजोरी, देहु निज लोक निवासा ॥

---

[1] यह कथन भी संदिग्ध है। धर्मदास का समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ वा अधिक से अधिक उसकी सोलहवीं के अंत से पहले जाता नहीं जान पड़ता। प० च०

साहेब चितवो हमरी ओर ॥
हम चितवैं तुम चितवो नाहीं, तुम्हरो हृदय कठोर ।
औरन को तो और भरोसा, हमें भरोसो तोर ॥
सुखमनि सेज बिछाओं गगन में, नित उठि करौं निहोर ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, साहेब कबीर बंदी छोर ॥

मैं हेरि रहूं नैना सो नेह लगाई ॥
राह चलत मोहिं मिलि गये सतगुरु, सो सुख बरनि न जाई ।
देइ के दरस मोहिं बौराये, लै गये चित्त चुराई ॥
छबि सत दरस कहाँ लगि बरनौं, चाँद सुरज छिप जाई ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, पुनि पुनि दरस दिखाई ॥

मोरा पिया बसै कौने देस हो ।
अपने पिया को ढुँढन हम निकसीं, कोइ न कहत सनेस हो ॥
पिया कारन हम भई हैं बावरी, धरो जोगिनिया के भेस हो ।
ब्रह्मा बिस्नु महेस न जानै, का जानै सारद सेस हो ॥
धनि जो अगम अगोचर पइलन, हम सब सहत कलेस हो ।
उहाँ के हाल कबीर गुरु जानैं, आवत जात हमेस हो ॥

सजन से प्रीति मोहिं लागी । दरस को भयो अनुरागी ॥
नहीं बैराग मोहिं आवै । साहेब के गुन नितै गावै ॥
अभरन भूषन तनै साजूँ । पिया को देखि हँस हुलासूँ ॥
भया है गैब का डंका । चलो जहं देस है बंका ॥
बिना ऋतु फूल एक फूला । भँवर रँग देखि के भूला ॥
तकत छबि टरै ना टारी । होय तिस बरन बलिहारी ॥
कहै धरमदास कर जोरी । साहेब से अरज है मोरी ॥

पिया बिन मोहिं नींद न आवे ॥
खन गरजै खन बिजुली चमकै, ऊपर से मोहि झाँकि दिखावै ।
सासु ननद घर दारुनि आहैं, नित मोहिं बिरह सतावै ॥
जोगिन ह्वै कै मैं बन बन ढूंढूँ, कोऊ न सुधि बतलावै ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, कोइ नेरे कोइ दूर बतावै ॥

पिया बिन मोहिं नीक न लागै गाँव ।
चलत चलत मोरे चरन दुखित भे, आँखिन परिगै धूर ॥
आगे चलूँ पंथ नहिं सूझै, पाछे परै न पाँव ।
सासुरे जाऊँ पिया नहिं चीन्हैं, नैहर जात लजाउँ ॥
इहां मोर गाँव उहां मोर पाही, बीचे अमरपुर धाम ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, तहाँ गाँव न ठाँव ॥

साहेब दीनबंधु हितकारी ।
कोटिन ऐगुन बालक करई, मात पिता चित एक न धारी ॥
तुम गुरु मात पिता जीवन के, मैं अति दीन दुखारी ।
प्रनतपाल करुनानिधान प्रभु, हमरी ओर निहारी ॥
जुगन जुगन से तुम चलि आये, जीवन के हितकारी ।
सदा भरोसे रहूँ तुम्हारे, तुम प्रतिपाल हमारी ॥
मोरे तुमहीं सत्त सुकृत हौ, अंतर और न धारी ।
जानत ही जन के तन मन की, अब कस मोहिं बिसारी ॥
को कहि सकै तुम्हारी महिमा, केहिं न दिह्यो पद भारी ।
धरमदास पर दाया कीन्ही, सेवक अहौं तुम्हारी ॥

साहेब मेटो चूक हमारी ।
बार बार मोहिं डंड भयो है, चूक भई अति भारी ॥
अब हम आये निकट तुम्हारे, अब मो तनहि निहारो ।
करुनामय तुम नाम धराये, तुम समरथ अब मेरो ॥
ऐसी बिपति भई मोहिं ऊपर, कोइ न हीत हमारो ।
तरसत जीव रहै निस बासर, जानि जनहिं तुम दोरौ ॥
अब की चूक छिमा कर साहेब, अब सनमुख ह्वै हेरो ।
तुम सतगुरू सकल सुख दाता, सब्द पान दे तारो ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, करौं बंदगी तेरो ॥

साहेब बूड़त नाव अब मोरी ॥
काम क्रोध की लहर उठतु है, मोह पवन झकझोरी ।

लोभ मोरे हिरदे घुमरतु है, सागर वार न पारी ।
कपट की भँवर परतु है बहुतै, वामें बेडा अटको ।
काल फाँस लिये है द्वारे, आया सरन तुम्हारी ।
धरमदास पर दाया कीन्ही, काटि फंद जिव तारी ।
कहै कबीर सुनो हो धर्मन, सतगुरु सरन उबारी ॥

साहेब मोरी ओर निहारो ।
परजा पुत्र अहौं मैं साहेब, बहुत बात मैं टारो ॥
हौं मैं कोटि जनम को पापी, मन बच करम असारो ।
एकौ कर्म छुटे ना कबहूँ, बहु बिधि बात बिगारो ॥
हौं अपराधी बहुत जुगन को, नइया मोर उबारो ।
बंदी छोर सकल सुखदाता, करुनामय करत पुकारो ॥
सीस चढाइ पाप की मोटरी, आयो तुम्हरे द्वारो ।
को अस हमरे भार उतारे, तुमही हेतु हमारो ॥
धरमदास यह बिनती बिनवै, सतगुरु मोको तारो ।
साहेब कबीर हंस के राजा, अमर लोक पहुँचावो ॥

साहेब कौन कमी घर तेरो ॥
भूखे अन्न पियासे पानी, कपड़ा से तन घेरो ।
जो कुछ न्यामत सबै महल में, खरच खजाना ढेरो ॥
खाक से पाक कियो पल माहीं, है समरथ बल तेरो ।
भव से काढ़ि कियो तरनी पर, खेइ लगावो सबेरो ॥
रहे न घाम छाँह दुनिया में, रहे न जम को चेरो ।
राव से रंक रंक से राजा, छिन में बाजत तूरो ॥
मानो सत्त झूठ जनि जानो, सत्त बचन है पूरो ।
धरमदास चरनन पर बिनवै, तुम गति सब भरे पूरो ॥

अब मोहिं दरसन देहु कबीर ॥
तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर ।
अमृत भोजन हंसा पावै, सब्द धुनन की खीर ॥

जहँ देखौं जहँ पाट पटंबर, ओढ़न अंबर चीर।
धरमदास की अरज गोसाईं, हंस लगावो तीर॥

साहेब कौन देस मोहिं डारा।
वह तो देस अमर हंसन को येहि जग काल पसारा॥
देवहु सब्द अजर हंसन को, बहुरि न ह्वैहै अवतारा।
निरगुन सरगुन दुंद पसारा, परि गये काल की धारा॥
जहाँ देस है सत्त पुरुष का, अजर अमी का अहारा।
धरमदास बिनवै कर जोरी, अबकी अरज हमारा॥

साहेब लेइ चलो देस अपाना।
जग की त्रास सही ना जाई, केहि बिधि धरों मैं ध्याना॥
माया मोह भरम की मोटरी, यह सब काल कलपना।
माया मोह भरम सब काटी, दीजै पद निरवाना॥
अमर लोक वह देस सुहेला, हंसा कीन्ह पयाना।
धरमदास बिनवै कर जोरी, आवागवन नसाना॥

तुम सतगुरु हम सेवक तुम्हरे॥
कोई मारे औ गरियावै, दाद फिरियाद करब तुमहीं से।
सोवत जागत के रछपाला, तुमहीं छांडि भजों नहिं औरे॥
तुम धरनीधर सब्द अनाहद, अमृत भाव करों प्रभु सगरे।
तुम्हरी बिनय कहां लगि बरनों, धरमदास पद गहे हैं तुम्हरे॥

चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो।
अगम महल चढ़ि चलो, जहाँ पिय से मिलो॥
मिलि चलो आपन देस, जहाँ छबि छाजई।
सेत सब्द जहँ खिले, हंस होइ आवही॥
अग्र वस्तु मिलि जाय, सब्द टकसार हो।
चहुँ दिसि लागो झलरिया, तो लोक असंख हो॥
अंबु दीप एक देस, पुरुष जहँ रहहि हो।
कहै कबीर धर्मदास, बिछुरन नहि होइ हो॥

धनुष बान लिये ठाढ़, जोगिनि एक माया हो ।
छिनहिं में करत बिगार, तनिक नहिं दाया हो ॥
झिर झिर बहै बयार, प्रेम रस डोलै हो ।
चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो ॥
पिया पिया करत पुकार, पिया नहिं आया हो ।
पिया बिनु सून मँदिलवा, बोलन लागे कागा हो ॥
कागा हो तुम कारे, कियो बटबारा हो ।
पिया मिलने की आस, बहुरि ना छूटहि हो ॥
कहैं कबीर धर्मदास, गुरू सँग चेला हो ।
हिलमिलि करो सतसंग उतरि चलो पारा हो ॥

चलो सखि देखन चलिये, दुलह कबीर हैं ।
उनसों जुरल सनेह, जठर सों राखि हैं ॥
पाँच तत्त को आसा, त्यागो बेगि कै ।
छाँडो झिलिमिलि नेह, पुरुष गम राखि कै ॥
लाँघो औघट घाट, पंथ निज ताकि कै ।
गहो सुकृति जिन डोर, अगभ गम राखि कै ॥
चार कोस आकास, तहाँ चढ़ि देखिये ।
आगे मारग झीनि, तो सूरत विबेकिये ॥
मुकुट एक अनूप, छत्रसिर साजिहै ।
ढुरत अग्र को चौंर, सब्द धुनि गाजिहै ॥
सेत धुजा फहराय, भँवर तहँ गुंजहीं ।
नितहिं उठै झनकार, गगन घनघोरहीं ॥
कहैं कबीर धर्मदास सों, मूल उचारिये ।
आगम गम्म बताइ कै, हंस उबारिये ॥

बधावा संत सजाऊं हो ।
जा विधि सतगुरु मेहर करैं, सोई बिधि बतलाऊँ हो ॥
रतन पटोरा डारि पाँवड़े, सन्मुख जाऊँ हो ।
सब सखियाँ मिलि बाँटत बधाई, मंगल गाऊँ हो ॥

जोबन जोर नैन सर मारत, ठहर सकै को कोरी।
मदन प्रचंड उठै चमकारी, काया करी चित चोरी॥
निरगुन रूप अमान अखंडित, जामें गुन बिसरो री।
माया सक्ति अनंद कियो है, सबहि मैं अगर भरोरी॥
कारन सूछम स्थूल देह धरि, भक्ति हेत तृन तोरी।
फर्मनि बिना दरस गुरु मूरत, कस भव पार भयो री॥

गुरु बिन कौन हरै मोरी पीरा॥
रहत अलीन मलीन जुगन जुग, राई बिनत पाये एक हीरा।
पाये हीरा रहे नहिं धीरा, लेइ के चले वोहि पारख तीरा॥
सो हीरा साधू सब परखे, तब से भरो मन धीरा।
धरमदास बिनवै कर जोरी, अजर अमर गुरु पाये कबीरा॥

आये दीन दयाल दया कीन्हा॥
दीन जानि गुरु समरथ आये, बिमल रूप दरसन दीन्हा।
चरन धोइ चरनामृत लीन्हा, सिंहासन बैठक दीन्हा॥
करूँ आरती प्रेम निछावर, तन मन धन अरपन कीन्हा।
धरमदास पर दाया कीन्हा, सार सब्द सुमिरन दीन्हा॥

बरनौं मैं साहेब तुम्हरे चरना।
संतन सुख लायक दायक प्रभु दुख हरना॥
सतजुग नाम अचिंत कहाये, खोडस हंस को दई सरना।
त्रेता नाम मुनिंद कहाये, मधुकर बिप्र को दई सरना॥
द्वापर करुनामय कहलाये, इंद्रमती के दुख हरना।
कलजुग नाम कबीर कहाये, धर्मदास अस्तुति बरना॥

सत नामै जपु जग लड़ने दे॥
यह संसार काँट की बारी, अरुझि सरुझि के मरने दे।
हाथी चाल चलै मोर साहेब, कुतिया भुँके तो भुँकने दे॥
यह संसार भादों की नदिया, डूबि मरै तेहि मरने दे।
धरमदास के साहेब कबीरा, पथर पूजै तो पुजने दे॥

नैनन आगे ख्याल घनेरा ॥
जेहि कारन जग डोलत भरमे, सो साहेब घट लीन्ह बसेरा ।
का संझा का प्रात सबेरा, जहँ देखू जहँ साहेब मेरा ॥
अर्ध उर्ध बिच लगन लगो है, साहेब घट में कीन्हा डेरा ।
साहेब कबीर एक माला दीन्हा, धरमदास घट ही बिच फेरा ॥

सतगुरु कहत नाम गुन न्यारा ॥
कोइ निर्गुन कोइ सर्गुन गावै, कोइ किरतिम कोइ करता ।
लख चौरासी जीव जंतु में, सब घट एकै रमिता ॥
सुनो साधु निरगुन की महिमा, बूझै बिरला कोई ।
सरगुन फंदे सबै चलत हैं, सुर नर मुनि सब कोई ॥
निर्गुन नाम निअच्छर कहिये, रहै सबन से न्यारा ।
निर्गुन सर्गुन जम कै फंदा, वोहि के सकल पसारा ॥
साहेब कबीर के चरन मनावो, साधुन के सिर ताजा ।
धरमदास पर दाया कीन्हा, बाँह गहे की लाजा ॥

मेरे मन बसि गये साहेब कबीर ॥
हिंदू के तुम गुरू कहावो, मुसलमान के पीर ।
दोऊ दीन ने झगड़ा माडेव, पायो नहीं सरीर ॥
सील संतोष दया के सागर, प्रेम प्रतीत मति धीर ।
बेद कितेब मते के आगर, दोउ दीनन के पीर ॥
बड़े बड़े संतन हितकारी, अजरा अमर सरीर ।
धरमदास की बिनय गुसाईं, नाव लगावो तीर ॥